Visit **Dwarkadheeshvastu.com** For
FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers
****
All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name
****
We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK.**
Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

।। श्रीहरि: ।।

श्री रामचरितमानस

श्लोकार्थ सहित

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीरामचरितमानसकी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- नवाह्नपारायणके विश्राम-स्थान	१३
२- मासपारायणके विश्राम-स्थान	१३
३- पारायण-विधि	१४
बालकाण्ड	
४- मङ्गलाचरण	१
५- गुरु-वन्दना	३
६- ब्राह्मण-संत-वन्दना	४
७- खल-वन्दना	६
८- संत-असंत-वन्दना	८
९- रामरूपसे जीवमात्रकी वन्दना	१०
१०- तुलसीदासजीकी दीनता और रामभक्तिमयी कविताकी महिमा	११
११- कवि-वन्दना	१६
१२- वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, देवता, शिव, पार्वती आदिकी वन्दना	१९
१३- श्रीसीताराम-धाम-परिकर-वन्दना	२०
१४- श्रीनाम-वन्दना और नाम-महिमा	२३
१५- श्रीरामगुण और श्रीरामचरितकी महिमा	३०
१६- मानसनिर्माणकी तिथि	३८
१७- मानसका रूप और माहात्म्य	३९
१८- याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद तथा प्रयाग-माहात्म्य	४७
१९- सतीका भ्रम, श्रीरामजीका ऐश्वर्य और सतीका खेद	५०
२०- शिवजीद्वारा सतीका त्याग, शिवजीकी समाधि	५७
२१- सतीका दक्ष-यज्ञमें जाना	६१
२२- पतिके अपमानसे दुःखी होकर सतीका योगाग्निसे जल जाना, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस	६२
२३- पार्वतीका जन्म और तपस्या	६३
२४- श्रीरामजीका शिवजीसे विवाहके लिये अनुरोध	७१
२५- सप्तर्षियोंकी परीक्षामें पार्वतीजीका महत्त्व	७२
२६- कामदेवका देवकार्यके लिये जाना और भस्म होना	७७
२७- रतिको वरदान	८१
२८- देवताओंका शिवजीसे ब्याहके लिये प्रार्थना करना, सप्तर्षियोंका पार्वतीके पास जाना	८१
२९- शिवजीकी विचित्र बारात और विवाहकी तैयारी	८४
३०- शिवजीका विवाह	८६
३१- शिव-पार्वती-संवाद	१०९
३२- अवतारके हेतु	११०
३३- नारदका अभिमान और मायाका प्रभाव	११४
३४- विश्वमोहिनीका स्वयंवर, शिवगणोंको तथा भगवान्‌को शाप और नारदका मोह-भंग	११७

विषय	पृष्ठ-संख्या
३५- मनु-शतरूपा-तप एवं वरदान	१२६
३६- प्रतापभानुकी कथा	१३४
३७- रावणादिका जन्म, तपस्या और उनका ऐश्वर्य तथा अत्याचार	१५१
३८- पृथ्वी और देवतादिकी करुण पुकार	१५८
३९- भगवान्‌का वरदान	१६१
४०- राजा दशरथका पुत्रेष्टि यज्ञ, रानियोंका गर्भवती होना	१६३
४१- श्रीभगवान्‌का प्राकट्य और बाललीलाका आनन्द	१६५
४२- विश्वामित्रका राजा दशरथसे राम-लक्ष्मणको माँगना	१७७
४३- विश्वामित्र-यज्ञकी रक्षा	१८०
४४- अहल्या-उद्धार	१८१
४५- श्रीराम-लक्ष्मणसहित विश्वामित्रका जनकपुरमें प्रवेश	१८२
४६- श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर जनकजीकी प्रेम-मुग्धता	१८४
४७- श्रीराम-लक्ष्मणका जनकपुर-निरीक्षण	१८७
४८- पुष्पवाटिका-निरीक्षण, सीताजीका प्रथम दर्शन, श्रीसीतारामजीका परस्पर दर्शन	१९४
४९- श्रीसीताजीका पार्वती-पूजन एवं वरदानप्राप्ति तथा राम-लक्ष्मण-संवाद	१९९
५०- श्रीराम-लक्ष्मणसहित विश्वामित्रका यज्ञशालामें प्रवेश	२०४
५१- श्रीसीताजीका यज्ञशालामें प्रवेश	२१२

विषय	पृष्ठ-संख्या
५२- बन्दीजनोंद्वारा जनकप्रतिज्ञाकी घोषणा	२१३
५३- राजाओंसे धनुष न उठना, जनककी निराशाजनक वाणी	२१४
५४- श्रीलक्ष्मणजीका क्रोध	२१५
५५- धनुषभंग	२२२
५६- जयमाल पहनाना	२२४
५७- श्रीराम-लक्ष्मण और परशुराम-संवाद	२२९
५८- दशरथजीके पास जनकजीका दूत भेजना, अयोध्यासे बारातका प्रस्थान	२४१
५९- बारातका जनकपुरमें आना और स्वागतादि	२५५
६०- श्रीसीता-राम-विवाह	२७०
६१- बारातका अयोध्या लौटना और अयोध्यामें आनन्द	२९२
६२- श्रीरामचरित सुनने-गानेकी महिमा	३०६
अयोध्याकाण्ड	
६३- मङ्गलाचरण	३०७
६४- रामराज्याभिषेककी तैयारी, देवताओंकी व्याकुलता तथा सरस्वतीजीसे उनकी प्रार्थना	३१०
६५- सरस्वतीका मन्थराकी बुद्धि फेरना, कैकेयी-मन्थरा-संवाद	३१७
६६- कैकेयीका कोपभवनमें जाना	३२४
६७- दशरथ-कैकेयी-संवाद और दशरथ-शोक, सुमन्त्रका महलमें जाना और वहाँसे लौटकर श्रीरामजीको महलमें भेजना	३२६

विषय	पृष्ठ-संख्या
६८- श्रीराम-कैकेयी-संवाद	३३८
६९- श्रीराम-दशरथ-संवाद, अवध-वासियोंका विषाद, कैकेयीको समझाना	३४२
७०- श्रीराम-कौसल्या-संवाद	३४८
७१- श्रीसीता-राम-संवाद	३५५
७२- श्रीराम-कौसल्या-सीता-संवाद	३६०
७३- श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद	३६२
७४- श्रीलक्ष्मण-सुमित्रा-संवाद	३६४
७५- श्रीरामजी, लक्ष्मणजी, सीताजीका महाराज दशरथके पास विदा माँगने जाना, दशरथजीका सीताजीको समझाना	३६६
७६- श्रीराम-सीता-लक्ष्मणका वनगमन और नगर-निवासियोंको सोये छोड़कर आगे बढ़ना	३६९
७७- श्रीरामका शृङ्गवेरपुर पहुँचना, निषादके द्वारा सेवा	३७५
७८- लक्ष्मण-निषाद-संवाद, श्रीराम-सीतासे सुमन्त्रका संवाद, सुमन्त्रका लौटना	३७९
७९- केवटका प्रेम और गङ्गा-पार जाना	३८५
८०- प्रयाग पहुँचना, श्रीराम-भरद्वाज-संवाद, यमुनातीरनिवासियोंका प्रेम	३८९
८१- तापस-प्रकरण	३९३
८२- यमुनाको प्रणाम, वनवासियोंका प्रेम	३९५
८३- श्रीराम-वाल्मीकि-संवाद	४०५
८४- चित्रकूटमें निवास, कोल-भीलोंके द्वारा सेवा	४११

विषय	पृष्ठ-संख्या
८५- सुमन्त्रका अयोध्याको लौटना और सर्वत्र शोक देखना	४१९
८६- दशरथ-सुमन्त्र-संवाद, दशरथ-मरण	४२४
८७- मुनि वसिष्ठका भरतजीको बुलानेके लिये दूत भेजना	४३०
८८- श्रीभरत-शत्रुघ्नका आगमन और शोक	४३१
८९- भरत-कौसल्या-संवाद और दशरथजीकी अन्त्येष्टि क्रिया	४३५
९०- वसिष्ठ-भरत-संवाद, श्रीरामजीको लानेके लिये चित्रकूट जानेकी तैयारी	४४१
९१- अयोध्यावासियोंसहित श्रीभरत-शत्रुघ्न आदिका वनगमन	४५२
९२-निषादकी शङ्का और सावधानी	४५५
९३- भरत-निषाद-मिलन और संवाद एवं भरतजीका तथा नगरवासियोंका प्रेम	४५८
९४- भरतजीका प्रयाग जाना और भरत-भरद्वाज-संवाद	४६६
९५- भरद्वाजद्वारा भरतका सत्कार	४७३
९६- इन्द्र-बृहस्पति-संवाद	४७८
९७- भरतजी चित्रकूटके मार्गमें	४८१
९८- श्रीसीताजीका स्वप्न, श्रीरामजीको कोल-किरातोंद्वारा भरतजीके आगमनकी सूचना, रामजीका शोक, लक्ष्मणजीका क्रोध	४८४
९९- श्रीरामजीका लक्ष्मणजीको समझाना एवं भरतजीकी महिमा कहना	४८९

विषय	पृष्ठ-संख्या
१००- भरतजीका मन्दाकिनी-स्नान, चित्रकूटमें पहुँचना, भरतादि सबका परस्पर मिलाप, पिताका शोक और श्राद्ध	४९०
१०१- वनवासियोंद्वारा भरतजीकी मण्डलीका सत्कार, कैकेयीका पश्चात्ताप	५०४
१०२- श्रीवसिष्ठजीका भाषण	५०७
१०३- श्रीराम-भरतादिका संवाद	५१२
१०४- जनकजीका पहुँचना, कोल-किरातादिकी भेंट, सबका परस्पर मिलाप	५२३
१०५- कौसल्या-सुनयना-संवाद, श्रीसीताजीका शील	५२८
१०६- जनक-सुनयना-संवाद, भरतजीकी महिमा	५३३
१०७- जनक-वसिष्ठादि-संवाद, इन्द्रकी चिन्ता, सरस्वतीका इन्द्रको समझाना	५३६
१०८- श्रीराम-भरत-संवाद	५४१
१०९- भरतजीका तीर्थ-जल-स्थापन तथा चित्रकूटभ्रमण	५५१
११०- श्रीराम-भरत-संवाद, पादुका-प्रदान, भरतजीकी विदाई	५५४
१११- भरतजीका अयोध्या लौटना, भरतजीद्वारा पादुकाकी स्थापना, नन्दिग्राममें निवास और श्रीभरतजीके चरित्र-श्रवणकी महिमा	५५७

अरण्यकाण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या
११२- मङ्गलाचरण	५६७
११३- जयन्तकी कुटिलता और फलप्राप्ति	५६८
११४- अत्रि-मिलन एवं स्तुति	५७०
११५- श्रीसीता-अनसूया-मिलन और श्रीसीताजीको अनसूयाजीका पातिव्रतधर्म कहना	५७२
११६- श्रीरामजीका आगे प्रस्थान, विराध-वध और शरभङ्ग-प्रसङ्ग	५७५
११७- राक्षस-वधकी प्रतिज्ञा करना	५७७
११८- सुतीक्ष्णजीका प्रेम, अगस्त्य-मिलन, अगस्त्य-संवाद, रामका दण्डक-वन-प्रवेश और जटायु-मिलन	५७८
११९- पञ्चवटी-निवास और श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद	५८५
१२०- शूर्पणखाकी कथा, शूर्पणखाका खर-दूषणके पास जाना और खर-दूषणादिका वध	५८८
१२१- शूर्पणखाका रावणके निकट जाना, श्रीसीताजीका अग्नि-प्रवेश और माया-सीता	५९५
१२२- मारीचप्रसंग और स्वर्ण-मृगरूपमें मारीचका मारा जाना	५९८
१२३- श्रीसीताहरण और श्रीसीता-विलाप	६०३
१२४- जटायु-रावण-युद्ध	६०४

विषय	पृष्ठ-संख्या
१२५- श्रीरामजीका विलाप, जटायुका प्रसंग	६०६
१२६- कबन्ध-उद्धार	६१०
१२७- शबरीपर कृपा, नवधा भक्ति-उपदेश और पम्पासरकी ओर प्रस्थान	६१०
१२८- नारद-राम-संवाद	६१८
१२९- संतोंके लक्षण और सत्सङ्ग-भजनके लिये प्रेरणा	६२१
किष्किन्धाकाण्ड	
१३०- मङ्गलाचरण	६२५
१३१- श्रीरामजीसे हनुमान्‌जीका मिलना और श्रीराम-सुग्रीवकी मित्रता	६२६
१३२- सुग्रीवका दुःख सुनाना, बालिवधकी प्रतिज्ञा, श्रीरामजीका मित्र-लक्षण-वर्णन	६३०
१३३- सुग्रीवका वैराग्य	६३२
१३४- बालि-सुग्रीव-युद्ध, बालि-उद्धार	६३४
१३५- ताराका विलाप, ताराको श्रीरामजीद्वारा उपदेश और सुग्रीवका राज्याभिषेक तथा अङ्गदको युवराजपद	६३६
१३६- वर्षा-ऋतु-वर्णन	६३९
१३७- शरद्-ऋतु-वर्णन	६४१
१३८- श्रीरामकी सुग्रीवपर नाराजी, लक्ष्मणजीका कोप	६४३
१३९- सुग्रीव-राम-संवाद और सीताजीकी खोजके लिये बंदरोंका प्रस्थान	६४५

विषय	पृष्ठ-संख्या
१४०- गुफामें तपस्विनीके दर्शन	६४८
१४१- वानरोंका समुद्रतटपर आना, सम्पातीसे भेंट और बातचीत	६५०
१४२- समुद्र लाँघनेका परामर्श, जाम्बवन्तका हनुमान्‌जीको बल याद दिलाकर उत्साहित करना	६५२
१४३- श्रीरामगुणका माहात्म्य	६५४
सुन्दरकाण्ड	
१४४- मङ्गलाचरण	६५७
१४५- हनुमान्‌जीका लङ्काको प्रस्थान, सुरसासे भेंट, छाया पकड़नेवाली राक्षसीका वध	६५८
१४६- लङ्कावर्णन, लङ्किनीपर प्रहार, लङ्कामें प्रवेश	६६०
१४७- हनुमान्-विभीषण-संवाद	६६३
१४८- हनुमान्‌जीका अशोक-वाटिकामें सीताको देखकर दुःखी होना और रावणका सीताजीको भय दिखलाना	६६४
१४९- श्रीसीता-त्रिजटा-संवाद	६६७
१५०- श्रीसीता-हनुमान्-संवाद	६६८
१५१- हनुमान्‌जीद्वारा अशोक-वाटिका-विध्वंस, अक्षय-कुमार-वध और मेघनादका हनुमान्‌जीको नागपाशमें बाँधकर सभामें ले जाना	६७२
१५२- हनुमान्-रावण-संवाद	६७४
१५३- लङ्का-दहन	६७८

विषय	पृष्ठ-संख्या
१५४- लङ्का जलानेके बाद हनुमान्‌जीका सीताजीसे विदा माँगना और चूड़ामणि पाना	६७९
१५५- समुद्रके इस पार आना, सबका लौटना, मधुवन-प्रवेश, सुग्रीव-मिलन, श्रीराम-हनुमान्-संवाद	६८०
१५६- श्रीरामजीका वानरोंकी सेनाके साथ चलकर समुद्रतटपर पहुँचना	६८५
१५७- मन्दोदरी-रावण-संवाद	६८७
१५८- रावणको विभीषणका समझाना और विभीषणका अपमान	६८९
१५९- विभीषणका भगवान् श्रीरामजीकी शरणके लिये प्रस्थान और शरणप्राप्ति	६९१
१६०- समुद्र पार करनेके लिये विचार, रावणदूत शुकका आना और लक्ष्मणजीके पत्रको लेकर लौटना	६९८
१६१- दूतका रावणको समझाना और लक्ष्मणजीका पत्र देना	७००
१६२- समुद्रपर श्रीरामजीका क्रोध और समुद्रकी विनती	७०४
१६३- श्रीराम-गुणगानकी महिमा	७०६
लङ्काकाण्ड	
१६४-मङ्गलाचरण	७०७
१६५- नल-नीलद्वारा पुल बाँधना, श्रीरामजीद्वारा श्रीरामेश्वरकी स्थापना	७०९
१६६- श्रीरामजीका सेनासहित समुद्र-पार उतरना, सुबेल पर्वतपर निवास, रावणकी व्याकुलता	७११
१६७- रावणको मन्दोदरीका समझाना, रावण-प्रहस्त-संवाद	७१२
१६८- सुबेलपर श्रीरामजीकी झाँकी और चन्द्रोदयवर्णन	७१६
१६९- श्रीरामजीके बाणसे रावणके मुकुट-छत्रादिका गिरना	७१८
१७०- मन्दोदरीका फिर रावणको समझाना और श्रीरामकी महिमा कहना	७१९
१७१- अङ्गदजीका लंका जाना और रावणकी सभामें अङ्गद-रावण-संवाद	७२२
१७२- रावणको पुनः मन्दोदरीका समझाना	७३९
१७३- अङ्गद-राम-संवाद	७४१
१७४- युद्धारम्भ	७४२
१७५- माल्यवान्‌का रावणको समझाना	७४९
१७६- लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध, लक्ष्मणजीको शक्ति लगना	७५१
१७७- हनुमान्‌जीका सुषेण वैद्यको लाना एवं संजीवनीके लिये जाना, कालनेमि-रावण-संवाद, मकरी-उद्धार, कालनेमि-उद्धार	७५५
१७८- भरतजीके बाणसे हनुमान्‌का मूर्च्छित होना, भरत-हनुमान्-संवाद	७५७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१७९- श्रीरामजीकी प्रलापलीला, हनुमान्‌जीका लौटना, लक्ष्मणजीका उठ बैठना	७५९
१८०- रावणका कुम्भकर्णको जगाना, कुम्भकर्णका रावणको उपदेश और विभीषण-कुम्भकर्ण-संवाद	७६१
१८१- कुम्भकर्ण-युद्ध और उसकी परमगति	७६३
१८२- मेघनादका युद्ध, रामजीका लीलासे नागपाशमें बँधना	७७०
१८३- मेघनाद-यज्ञ-विध्वंस, युद्ध और मेघनाद-उद्धार	७७३
१८४- रावणका युद्धके लिये प्रस्थान और श्रीरामजीका विजयरथ तथा वानर-राक्षसोंका युद्ध	७७७
१८५- लक्ष्मण-रावण-युद्ध	७८२
१८६- रावण-मूर्च्छा, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम-रावण-युद्ध	७८३
१८७- इन्द्रका श्रीरामजीके लिये रथ भेजना, राम-रावण-युद्ध	७८९
१८८- रावणका विभीषणपर शक्ति छोड़ना, रामजीका शक्तिको अपने ऊपर लेना, विभीषण-रावण-युद्ध	७९४
१८९- रावण-हनुमान्-युद्ध, रावणका माया रचना, रामजीद्वारा माया-नाश	७९५
१९०- घोर युद्ध, रावणकी मूर्च्छा	७९८
१९१- त्रिजटा-सीता-संवाद	८००

विषय	पृष्ठ-संख्या
१९२- राम-रावण-युद्ध, रावण-वध, सर्वत्र जयध्वनि	८०२
१९३- मन्दोदरी-विलाप, रावणकी अन्त्येष्टि-क्रिया	८०७
१९४- विभीषणका राज्याभिषेक	८०९
१९५- हनुमान्‌जीका सीताजीको कुशल सुनाना, सीताजीका आगमन और अग्नि-परीक्षा	८१०
१९६- देवताओंकी स्तुति, इन्द्रकी अमृत-वर्षा	८१४
१९७- विभीषणकी प्रार्थना, श्रीरामजीके द्वारा भरतजीके प्रेमदशाका वर्णन, शीघ्र अयोध्या पहुँचनेका अनुरोध	८२१
१९८- विभीषणका वस्त्राभूषण बरसाना और वानर-भालुओंका उन्हें पहनना	८२३
१९९- पुष्पकविमानपर चढ़कर श्रीसीता-रामजीका अवधके लिये प्रस्थान	८२४
२००- श्रीरामचरितकी महिमा	८२८
उत्तरकाण्ड	
२०१- मङ्गलाचरण	८२९
२०२- भरत-विरह तथा भरत-हनुमान्-मिलन, अयोध्यामें आनन्द	८३०
२०३- श्रीरामजीका स्वागत, भरत-मिलाप, सबका मिलनानन्द	८३५
२०४- राम-राज्याभिषेक, वेदस्तुति, शिवस्तुति	८४२

विषय	पृष्ठ-संख्या
२०५- वानरोंकी और निषादकी विदाई	८५०
२०६- रामराज्यका वर्णन	८५३
२०७- पुत्रोत्पत्ति, अयोध्याजीकी रमणीयता, सनकादिका आगमन और संवाद	८५८
२०८- हनुमान्‌जीके द्वारा भरतजीका प्रश्न और श्रीरामजीका उपदेश	८६७
२०९- श्रीरामजीका प्रजाको उपदेश (श्रीरामगीता), पुरवासियोंकी कृतज्ञता	८७३
२१०- श्रीराम-वसिष्ठ-संवाद, श्रीरामजीका भाइयोंसहित अमराईमें जाना.................	८७६
२११- नारदजीका आना और स्तुति करके ब्रह्मलोकको लौट जाना ...	८७९
२१२- शिव-पार्वती-संवाद, गरुड़-मोह, गरुड़जीका काकभुशुण्डिसे रामकथा और राम-महिमा सुनना .	८८०
२१३- काकभुशुण्डिका अपनी पूर्वजन्मकथा और कलिमहिमा कहना............................	९११

विषय	पृष्ठ-संख्या
२१४- गुरुजीका अपमान एवं शिवजीके शापकी बात सुनना ...	९२९
२१५- रुद्राष्टक	९३१
२१६- गुरुजीका शिवजीसे अपराध-क्षमापन, शापानुग्रह और काकभुशुण्डिकी आगेकी कथा	९३२
२१७- काकभुशुण्डिजीका लोमशजीके पास जाना और शाप तथा अनुग्रह पाना	९३६
२१८- ज्ञान-भक्ति-निरूपण, ज्ञानदीपक और भक्तिकी महान् महिमा	९४३
२१९- गरुड़जीके सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डिके उत्तर	९५१
२२०- भजन-महिमा	९५४
२२१- रामायण-माहात्म्य, तुलसी-विनय और फलश्रुति	९५७
२२२- रामायणजीकी आरती.........	९६६
२२३-गोस्वामी तुलसीदासजीकी संक्षिप्त जीवनी................	९६७
२२४-श्रीरामशलाका-प्रश्नावली	९७२

नवाह्नपारायणके विश्राम-स्थान

	पृष्ठ-संख्या
पहला विश्राम	१०९
दूसरा ,,	२०४
तीसरा ,,	३०३
चौथा ,,	३९८
पाँचवाँ ,,	४९३
छठा ,,	६०५
सातवाँ ,,	७१८
आठवाँ ,,	८४१
नवाँ ,,	९६५

मासपारायणके विश्राम-स्थान

	पृष्ठ-संख्या
पहला विश्राम	२९
दूसरा ,,	५६
तीसरा ,,	८२
चौथा ,,	१०९
पाँचवाँ ,,	१३४
छठा ,,	१५८
सातवाँ ,,	१८२
आठवाँ ,,	२०४
नवाँ ,,	२२९
दसवाँ ,,	२५५
ग्यारहवाँ ,,	२७८
बारहवाँ ,,	३०६
तेरहवाँ ,,	३२९
चौदहवाँ ,,	३५५
पंद्रहवाँ ,,	३८०
सोलहवाँ विश्राम	३९८
सत्रहवाँ ,,	४१२
अठारहवाँ ,,	४४५
उन्नीसवाँ ,,	४७६
बीसवाँ ,,	४९३
इक्कीसवाँ ,,	५६५
बाईसवाँ ,,	६२३
तेईसवाँ ,,	६५५
चौबीसवाँ ,,	७०६
पच्चीसवाँ ,,	७५०
छब्बीसवाँ ,,	८००
सत्ताईसवाँ ,,	८२८
अट्ठाईसवाँ ,,	८८९
उनतीसवाँ ,,	९४२
तीसवाँ ,,	९६५

॥ श्रीहरिः ॥

पारायण-विधि

श्रीरामचरितमानसका विधिपूर्वक पाठ करनेवाले महानुभावोंको पाठारम्भके पूर्व श्रीतुलसीदासजी, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीशिवजी तथा श्रीहनुमान्‌जीका आवाहन, पूजन करनेके पश्चात् तीनों भाइयोंसहित श्रीसीतारामजीका आवाहन, षोडशोपचार पूजन और ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर पाठका आरम्भ करना चाहिये। सबके आवाहन, पूजन और ध्यानके मन्त्र क्रमशः नीचे लिखे जाते हैं—

अथ आवाहनमन्त्रः

तुलसीक नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुचिव्रत।
नैर्ऋत्य उपविश्येदं पूजनं प्रतिगृह्यताम्॥ १॥

ॐ तुलसीदासाय नमः।

श्रीवाल्मीक नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभप्रद।
उत्तरपूर्वयोर्मध्ये तिष्ठ गृह्णीष्व मेऽर्चनम्॥ २॥

ॐ वाल्मीकाय नमः।

गौरीपते नमस्तुभ्यमिहागच्छ महेश्वर।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये तिष्ठ पूजां गृहाण मे॥ ३॥

ॐ गौरीपतये नमः।

श्रीलक्ष्मण नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः।
याम्यभागे समातिष्ठ पूजनं संगृहाण मे॥ ४॥

ॐ श्रीसपत्नीकाय लक्ष्मणाय नमः।

श्रीशत्रुघ्न नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः।
पीठस्य पश्चिमे भागे पूजनं स्वीकुरुष्व मे॥ ५॥

ॐ श्रीसपत्नीकाय शत्रुघ्नाय नमः।

श्रीभरत नमस्तुभ्यमिहागच्छ सहप्रियः।
पीठकस्योत्तरे भागे तिष्ठ पूजां गृहाण मे॥ ६॥

ॐ श्रीसपत्नीकाय भरताय नमः।

श्रीहनुमन्नमस्तुभ्यमिहागच्छ कृपानिधे।
पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु प्रभो॥ ७॥

ॐ हनुमते नमः।

अथ प्रधानपूजा च कर्तव्या विधिपूर्वकम्।
पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा तु ध्यानं कुर्यात्परस्य च॥ ८ ॥
रक्ताम्भोजदलाभिरामनयनं पीताम्बरालङ्कृतं
श्यामाङ्गं द्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया शोभितम्।
कारुण्यामृतसागरं प्रियगणैर्भ्रात्रादिभिर्भावितं
वन्दे विष्णुशिवादिसेव्यमनिशं भक्तेष्टसिद्धिप्रदम्॥ ९ ॥
आगच्छ जानकीनाथ जानक्या सह राघव।
गृहाण मम पूजां च वायुपुत्रादिभिर्युतः॥ १०॥

इत्यावाहनम्

सुवर्णरचितं राम दिव्यास्तरणशोभितम्।
आसनं हि मया दत्तं गृहाण मणिचित्रितम्॥ ११ ॥

इति षोडशोपचारैः पूजयेत्

ॐ अस्य श्रीमन्मानसरामायणश्रीरामचरितस्य श्रीशिवकाकभुशुण्डियाज्ञवल्क्य-गोस्वामितुलसीदासा ऋषयः श्रीसीतारामो देवता श्रीरामनाम बीजं भवरोगहरी भक्तिः शक्तिः मम नियन्त्रिताशेषविघ्नतया श्रीसीतारामप्रीतिपूर्वकसकलमनोरथसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

अथ आचमनम्

श्रीसीतारामाभ्यां नमः। श्रीरामचन्द्राय नमः।
श्रीरामभद्राय नमः।

इति मन्त्रत्रितयेन आचमनं कुर्यात् । श्रीयुगलबीजमन्त्रेण प्राणायामं कुर्यात्॥

अथ करन्यासः

जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पापपुंज समुहाहीं॥
तर्जनीभ्यां नमः।
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
मध्यमाभ्यां नमः।
उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
अनामिकाभ्यां नमः।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥
करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इति करन्यास:

अथ हृदयादिन्यास:

जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
हृदयाय नमः।
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पापपुंज समुहाहीं॥
शिरसे स्वाहा।
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
शिखायै वषट्।
उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
कवचाय हुम्।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
नेत्राभ्यां वौषट्।
मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥
अस्त्राय फट्।

इति हृदयादिन्यास:

अथ ध्यानम्

मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥
जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक॥
भुजबल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित॥
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥
सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥
कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥
इति ध्यानम्

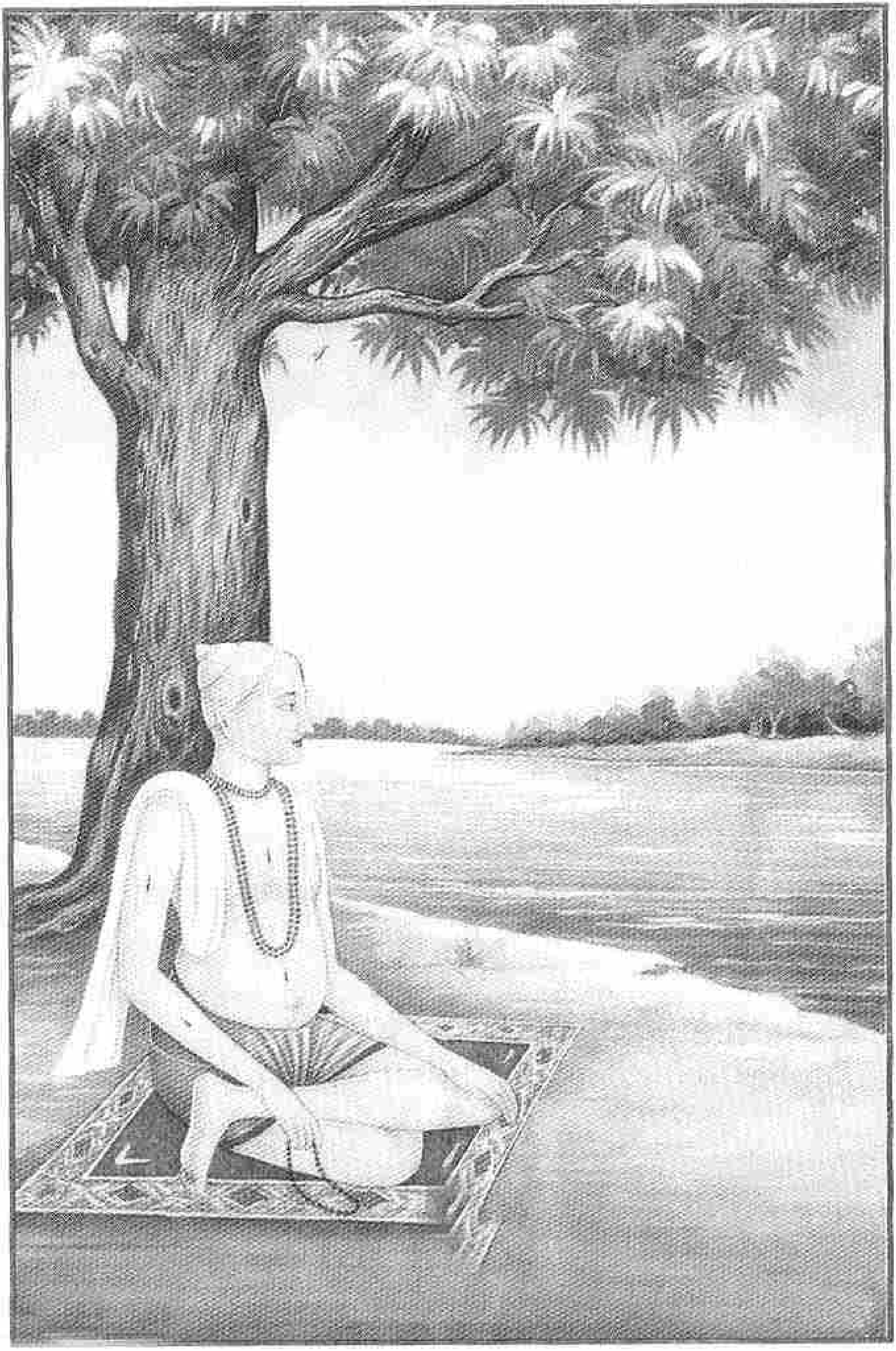

हनुमान्‌जीकी प्रार्थना Hanumān Requesting

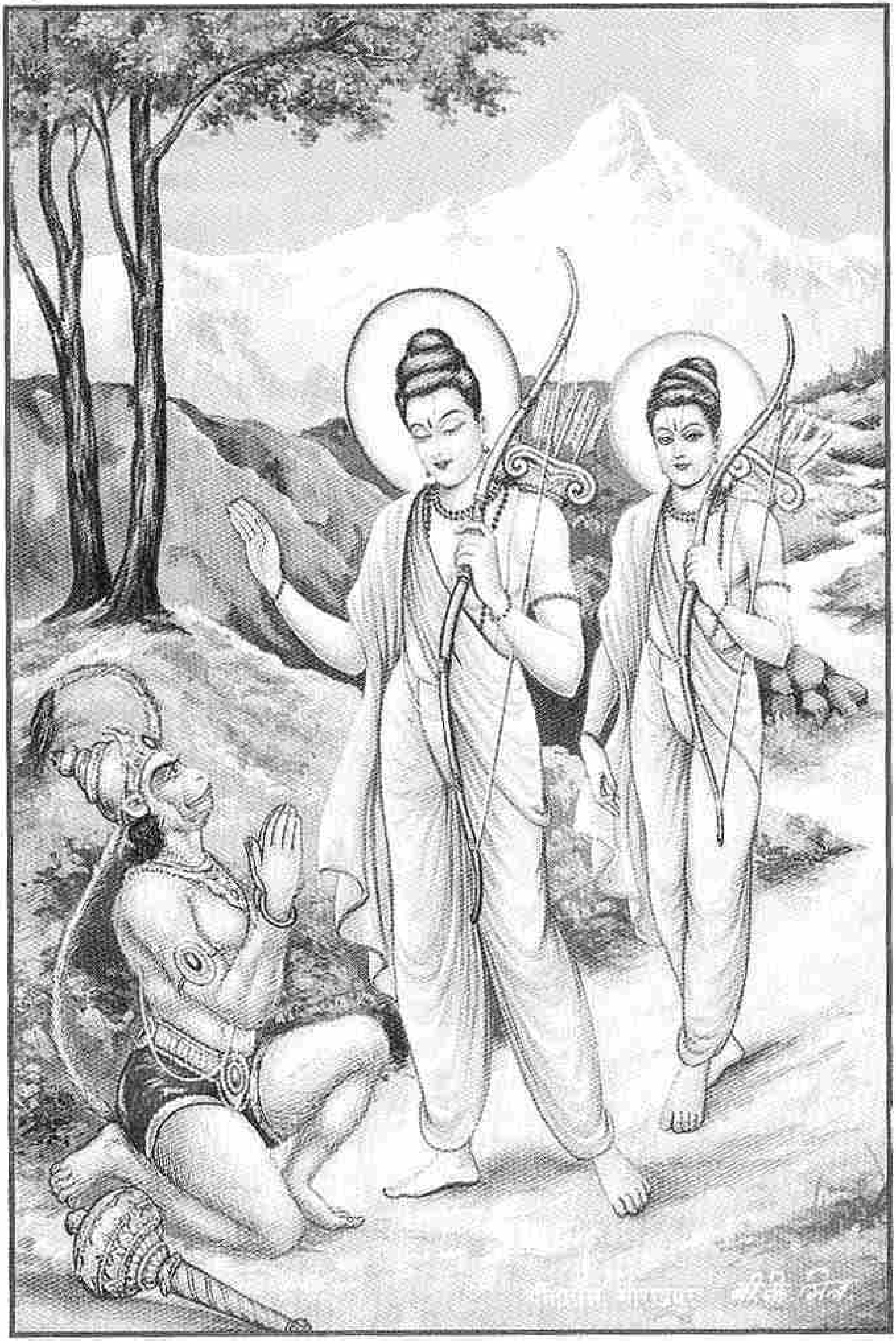

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

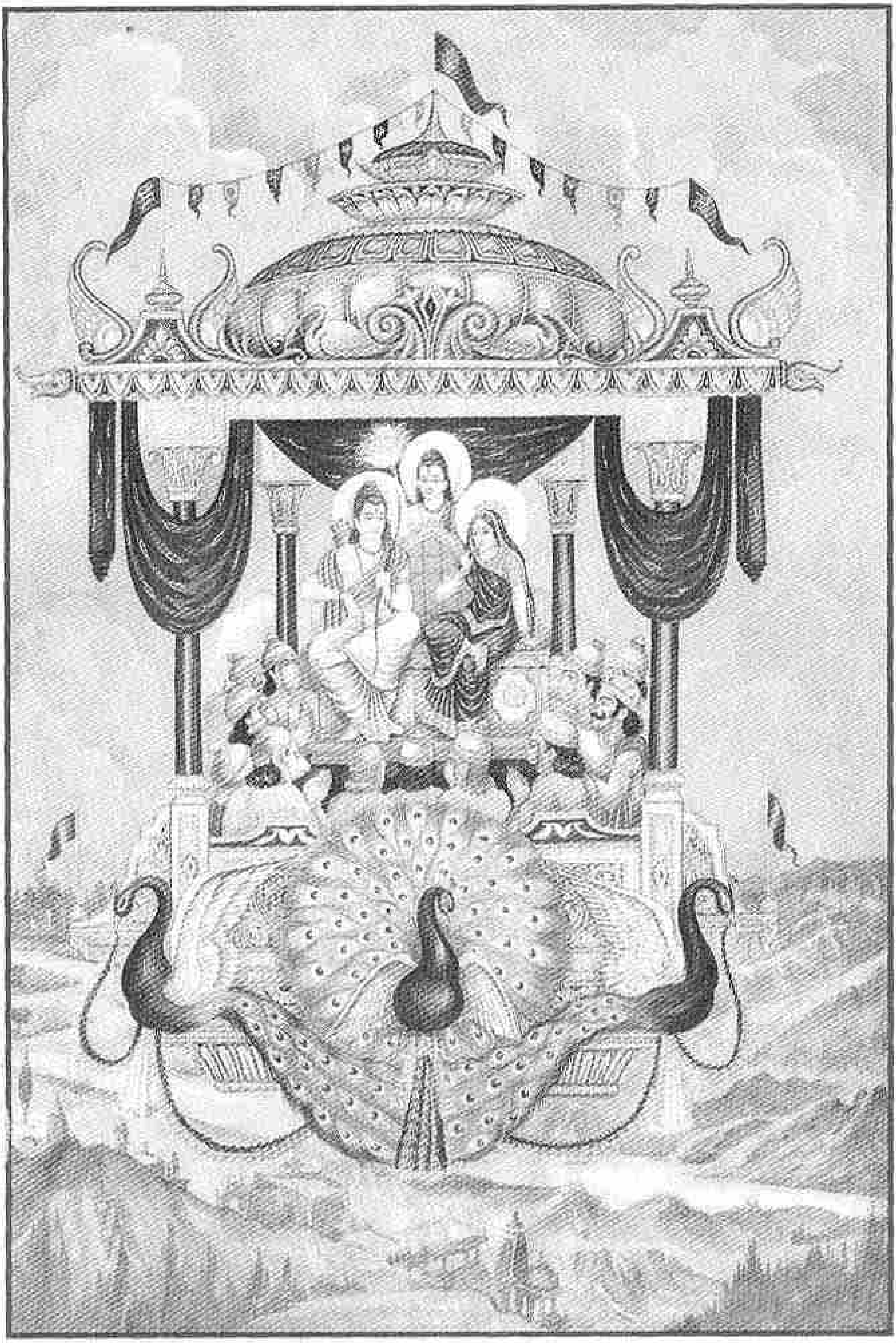

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥

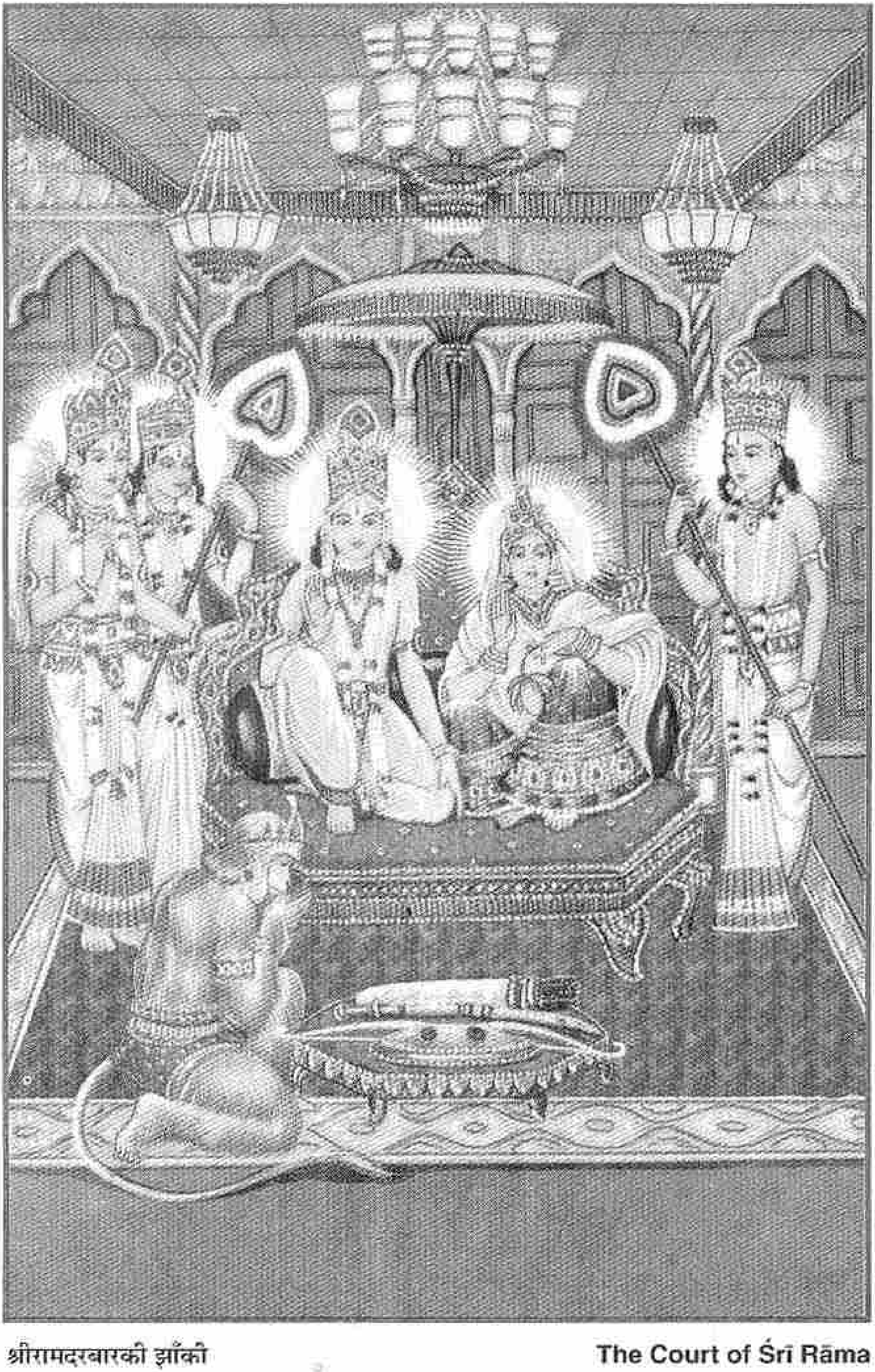

श्रीरामदरबारकी झाँकी

The Court of Śrī Rāma

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

प्रथम सोपान

बालकाण्ड

श्लोक

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥ १॥

अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मङ्गलोंकी करनेवाली सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥ २॥

श्रद्धा और विश्वासके स्वरूप श्रीपार्वतीजी और श्रीशङ्करजीकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरणमें स्थित ईश्वरको नहीं देख सकते॥ २॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥ ३॥

ज्ञानमय, नित्य, शङ्कररूपी गुरुकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होनेसे ही टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है॥ ३॥

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥ ४॥

श्रीसीतारामजीके गुणसमूहरूपी पवित्र वनमें विहार करनेवाले, विशुद्ध विज्ञानसम्पन्न कवीश्वर श्रीवाल्मीकिजी और कपीश्वर श्रीहनुमान्‌जीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ४॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ ५॥

उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करनेवाली, क्लेशोंकी हरनेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याणोंकी करनेवाली श्रीरामचन्द्रजीकी प्रियतमा श्रीसीताजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५॥

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥ ६॥

जिनकी मायाके वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्तासे रस्सीमें सर्पके भ्रमकी भाँति यह सारा दृश्य-जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागरसे तरनेकी इच्छावालोंके लिये एकमात्र नौका हैं, उन समस्त कारणोंसे पर (सब कारणोंके कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहानेवाले भगवान् हरिकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ६॥

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥ ७॥

अनेक पुराण, वेद और [तन्त्र] शास्त्रसे सम्मत तथा जो रामायणमें वर्णित है और कुछ अन्यत्रसे भी उपलब्ध श्रीरघुनाथजीकी कथाको तुलसीदास अपने अन्तःकरणके सुखके लिये अत्यन्त मनोहर भाषारचनामें विस्तृत करता है॥ ७॥

सो०— जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥ १॥

जिन्हें स्मरण करनेसे सब कार्य सिद्ध होते हैं, जो गणोंके स्वामी और सुन्दर हाथीके मुखवाले हैं, वे ही बुद्धिके राशि और शुभ गुणोंके धाम (श्रीगणेशजी) मुझपर कृपा करें॥ १॥

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥ २॥

जिनकी कृपासे गूँगा बहुत सुन्दर बोलनेवाला हो जाता है और लँगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़पर चढ़ जाता है, वे कलियुगके सब पापोंको जला डालनेवाले दयालु (भगवान्) मुझपर द्रवित हों (दया करें),॥ २॥

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन॥ ३॥

जो नील कमलके समान श्यामवर्ण हैं, पूर्ण खिले हुए लाल कमलके समान जिनके नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागरमें शयन करते हैं, वे भगवान् (नारायण) मेरे हृदयमें निवास करें॥ ३॥

कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन॥ ४॥

जिनका कुन्दके पुष्प और चन्द्रमाके समान (गौर) शरीर है, जो पार्वतीजीके प्रियतम और दयाके धाम हैं और जिनका दीनोंपर स्नेह है, वे कामदेवका मर्दन करनेवाले (शङ्करजी) मुझपर कृपा करें॥ ४॥

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥ ५॥

मैं उन गुरु महाराजके चरणकमलकी वन्दना करता हूँ, जो कृपाके समुद्र और नररूपमें श्रीहरि ही हैं और जिनके वचन महामोहरूपी घने अन्धकारके नाश करनेके लिये सूर्य-किरणोंके समूह हैं॥ ५॥

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

मैं गुरु महाराजके चरणकमलोंकी रजकी वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि (सुन्दर स्वाद), सुगन्ध तथा अनुरागरूपी रससे पूर्ण है। वह अमर मूल (सञ्जीवनी जड़ी)का सुन्दर चूर्ण है, जो सम्पूर्ण भवरोगोंके परिवारको नाश करनेवाला है॥ १॥

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥

वह रज सुकृती (पुण्यवान् पुरुष) रूपी शिवजीके शरीरपर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुन्दर कल्याण और आनन्दकी जननी है, भक्तके मनरूपी सुन्दर दर्पणके मैलको दूर करनेवाली और तिलक करनेसे गुणोंके समूहको वशमें करनेवाली है॥ २॥

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥

श्रीगुरु महाराजके चरण-नखोंकी ज्योति मणियोंके प्रकाशके समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदयमें दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है; वह जिसके हृदयमें आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं॥ ३॥

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

उसके हृदयमें आते ही हृदयके निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रात्रिके दोष-दुःख मिट जाते हैं एवं श्रीरामचरित्ररूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खानमें है, सब दिखायी पड़ने लगते हैं— ॥ ४॥

दो०— जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥ १॥

जैसे सिद्धाञ्जनको नेत्रोंमें लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वीके अंदर कौतुकसे ही बहुत-सी खानें देखते हैं॥ १॥

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन॥

श्रीगुरु महाराजके चरणोंकी रज कोमल और सुन्दर नयनामृत-अञ्जन है, जो नेत्रोंके दोषोंका नाश करनेवाला है। उस अञ्जनसे विवेकरूपी नेत्रोंको निर्मल करके मैं संसाररूपी बन्धनसे छुड़ानेवाले श्रीरामचरित्रका वर्णन करता हूँ॥ १॥

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥

पहले पृथ्वीके देवता ब्राह्मणोंके चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जो अज्ञानसे उत्पन्न सब संदेहोंको हरनेवाले हैं। फिर सब गुणोंकी खान संत-समाजको प्रेमसहित सुन्दर वाणीसे प्रणाम करता हूँ॥ २॥

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥

संतोंका चरित्र कपासके चरित्र (जीवन)-के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपासकी डोडी नीरस होती है, संत-चरित्रमें भी विषयासक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है; कपास उज्ज्वल होता है, संतका हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकारसे रहित होता है, इसलिये वह विशद है, और कपासमें गुण (तन्तु) होते हैं, इसी प्रकार संतका चरित्र भी सद्गुणोंका भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है।) [जैसे कपासका धागा सूईके किये हुए छेदको अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढ़े जाने, काते जाने और बुने जानेका कष्ट सहकर भी वस्त्रके रूपमें परिणत होकर दूसरोंके गोपनीय स्थानोंको ढकता है, उसी प्रकार] संत स्वयं दुःख सहकर दूसरोंके छिद्रों (दोषों)-को ढकता है, जिसके कारण उसने जगत्‌में वन्दनीय यश प्राप्त किया है॥ ३॥

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥

संतोंका समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो जगत्‌में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। जहाँ (उस संतसमाजरूपी प्रयागराजमें) रामभक्तिरूपी गङ्गाजीकी धारा है और ब्रह्मविचारका प्रचार सरस्वतीजी हैं॥ ४॥

बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी॥
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

विधि और निषेध (यह करो और यह न करो) रूपी कर्मोंकी कथा कलियुगके पापोंको हरनेवाली सूर्यतनया यमुनाजी हैं और भगवान् विष्णु और शङ्करजीकी कथाएँ त्रिवेणीरूपसे सुशोभित हैं, जो सुनते ही सब आनन्द और कल्याणोंकी देनेवाली हैं॥ ५॥

बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥

[उस संतसमाजरूपी प्रयागमें] अपने धर्ममें जो अटल विश्वास है वह अक्षयवट है, और शुभकर्म ही उस तीर्थराजका समाज (परिकर) है। वह (संतसमाजरूपी प्रयागराज) सब देशोंमें, सब समय सभीको सहजहीमें प्राप्त हो सकता है और आदरपूर्वक सेवन करनेसे क्लेशोंको नष्ट करनेवाला है॥ ६॥

अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

वह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है, एवं तत्काल फल देनेवाला है; उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है॥ ७॥

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥ २॥

जो मनुष्य इस संत-समाजरूपी तीर्थराजका प्रभाव प्रसन्न मनसे सुनते और समझते हैं और फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीरके रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फल पा जाते हैं॥ २॥

मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥

इस तीर्थराजमें स्नानका फल तत्काल ऐसा देखनेमें आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संगकी महिमा छिपी नहीं है॥ १॥

बालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥

वाल्मीकिजी, नारदजी और अगस्त्यजीने अपने-अपने मुखोंसे अपनी होनी (जीवनका वृत्तान्त) कही है। जलमें रहनेवाले, जमीनपर चलनेवाले और आकाशमें विचरनेवाले नाना प्रकारके जड़-चेतन जितने जीव इस जगत्में हैं,॥ २॥

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

उनमेंसे जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्नसे बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पायी है, सो सब सत्संगका ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदोंमें और लोकमें इनकी प्राप्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ ३॥

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

सत्संगके बिना विवेक नहीं होता और श्रीरामजीकी कृपाके बिना वह सत्संग सहजमें मिलता नहीं। सत्संगति आनन्द और कल्याणकी जड़ है। सत्संगकी सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है और सब साधन तो फूल हैं॥ ४॥

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥

दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा सुहावना हो जाता है (सुन्दर सोना बन जाता है)। किन्तु दैवयोगसे यदि कभी सज्जन कुसंगतिमें पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँपकी मणिके समान अपने गुणोंका ही अनुसरण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार साँपका संसर्ग पाकर भी मणि उसके विषको ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाशको नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टोंके संगमें रहकर भी दूसरोंको प्रकाश ही देते हैं, दुष्टोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता)॥ ५॥

बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और पण्डितोंकी वाणी भी संत-महिमाका वर्णन करनेमें सकुचाती है; वह मुझसे किस प्रकार नहीं कही जाती, जैसे साग-तरकारी बेचनेवालेसे मणियोंके गुणसमूह नहीं कहे जा सकते॥ ६॥

दो०— बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥ ३ (क)॥

मैं संतोंको प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्तमें समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु! जैसे अञ्जलिमें रखे हुए सुन्दर फूल [जिस हाथने फूलोंको तोड़ा और जिसने उनको रखा उन] दोनों ही हाथोंको समानरूपसे सुगन्धित करते हैं [वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनोंका ही समानरूपसे कल्याण करते हैं]॥ ३(क)॥

संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥ ३ (ख)॥

संत सरलहृदय और जगत्‌के हितकारी होते हैं, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेहको जानकर मैं विनय करता हूँ, मेरी इस बाल-विनयको सुनकर कृपा करके श्रीरामजीके चरणोंमें मुझे प्रीति दें॥ ३ (ख)॥

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥

अब मैं सच्चे भावसे दुष्टोंको प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करनेवालेके भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरोंके हितकी हानि ही जिनकी दृष्टिमें लाभ है, जिनको दूसरोंके उजड़नेमें हर्ष और बसनेमें विषाद होता है॥ १॥

हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥

जो हरि और हरके यशरूपी पूर्णिमाके चन्द्रमाके लिये राहुके समान हैं (अर्थात्

जहाँ कहीं भगवान् विष्णु या शङ्करके यशका वर्णन होता है, उसीमें वे बाधा देते हैं। और दूसरोंकी बुराई करनेमें सहस्रबाहुके समान वीर हैं। जो दूसरोंके दोषोंको हजार आँखोंसे देखते हैं और दूसरोंके हितरूपी घीके लिये जिनका मन मक्खीके समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घीमें गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरोंके बने-बनाये कामको अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं) ॥ २ ॥

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥

जो तेज (दूसरोंको जलानेवाले ताप) में अग्नि और क्रोधमें यमराजके समान हैं, पाप और अवगुणरूपी धनमें कुबेरके समान धनी हैं, जिनकी बढ़ती सभीके हितका नाश करनेके लिये केतु (पुच्छल तारे) के समान है, और जिनके कुम्भकर्णकी तरह सोते रहनेमें ही भलाई है॥ ३ ॥

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥

जैसे ओले खेतीका नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे दूसरोंका काम बिगाड़नेके लिये अपना शरीरतक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टोंको [हजार मुखवाले] शेषजीके समान समझकर प्रणाम करता हूँ, जो पराये दोषोंका हजार मुखोंसे बड़े रोषके साथ वर्णन करते हैं॥ ४ ॥

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥

पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान्‌का यश सुननेके लिये दस हजार कान माँगे थे) के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानोंसे दूसरोंके पापोंको सुनते हैं। फिर इन्द्रके समान मानकर उनकी विनय करता हूँ, जिनको सुरा (मदिरा) नीकी और हितकारी मालूम देती है [इन्द्रके लिये भी सुरानीक अर्थात् देवताओंकी सेना हितकारी है] ॥ ५ ॥

बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥

जिनको कठोर वचनरूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखोंसे दूसरोंके दोषोंको देखते हैं॥ ६ ॥

दो०— उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति॥ ४॥

दुष्टोंकी यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु अथवा मित्र, किसीका भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है॥ ४ ॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥

मैंने अपनी ओरसे विनती की है, परन्तु वे अपनी ओरसे कभी नहीं चूकेंगे। कौओंको बड़े प्रेमसे पालिये, परन्तु वे क्या कभी मांसके त्यागी हो सकते हैं?॥ १॥

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥

अब मैं संत और असंत दोनोंके चरणोंकी वन्दना करता हूँ; दोनों ही दुःख देनेवाले हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अन्तर यह है कि एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिलते हैं तब दारुण दुःख देते हैं। (अर्थात् संतोंका बिछुड़ना मरनेके समान दुःखदायी होता है और असंतोंका मिलना)॥ २॥

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥

दोनों (संत और असंत) जगत्‌में एक साथ पैदा होते हैं; पर [एक साथ पैदा होनेवाले] कमल और जोंककी तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्शसे सुख देता है, किन्तु जोंक शरीरका स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृतके समान (मृत्युरूपी संसारसे उबारनेवाला) और असाधु मदिराके समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करनेवाला) है, दोनोंको उत्पन्न करनेवाला जगत्‌रूपी अगाध समुद्र एक ही है। [शास्त्रोंमें समुद्रमन्थनसे ही अमृत और मदिरा दोनोंकी उत्पत्ति बतायी गयी है]॥ ३॥

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भले और बुरे अपनी-अपनी करनीके अनुसार सुन्दर यश और अपयशकी सम्पत्ति पाते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गङ्गाजी और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुगके पापोंकी नदी अर्थात् कर्मनाशा और हिंसा करनेवाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं; किन्तु जिसे जो भाता है, उसे वही अच्छा लगता है॥ ४-५॥

दो०— भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥ ५॥

भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचताको ही ग्रहण किये रहता है। अमृतकी सराहना अमर करनेमें होती है और विषकी मारनेमें॥ ५॥

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

दुष्टोंके पापों और अवगुणोंकी और साधुओंके गुणोंकी कथाएँ—दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। इसीसे कुछ गुण और दोषोंका वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पहचाने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता॥ १॥

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥

भले, बुरे सभी ब्रह्माके पैदा किये हुए हैं, पर गुण और दोषोंको विचारकर वेदोंने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्माकी यह सृष्टि गुण-अवगुणोंसे सनी हुई है॥ २॥

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥

दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देवता, ऊँच-नीच, अमृत-विष, सुजीवन (सुन्दर जीवन)-मृत्यु, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रंक-राजा, काशी-मगध, गङ्गा-कर्मनाशा, मारवाड़-मालवा, ब्राह्मण-कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य,[ये सभी पदार्थ ब्रह्माकी सृष्टिमें हैं।] वेद-शास्त्रोंने उनके गुण-दोषोंका विभाग कर दिया है॥ ३—५॥

दो०— जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ ६॥

विधाताने इस जड-चेतन विश्वको गुण-दोषमय रचा है; किन्तु संतरूपी हंस दोषरूपी जलको छोड़कर गुणरूपी दूधको ही ग्रहण करते हैं॥ ६॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं॥

विधाता जब इस प्रकारका (हंसका-सा) विवेक देते हैं, तब दोषोंको छोड़कर मन गुणोंमें अनुरक्त होता है। काल-स्वभाव और कर्मकी प्रबलतासे भले लोग (साधु) भी मायाके वशमें होकर कभी-कभी भलाईसे चूक जाते हैं॥ १॥

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥

भगवान्‌के भक्त जैसे उस चूकको सुधार लेते हैं और दुःख-दोषोंको मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही दुष्ट भी कभी-कभी उत्तम सङ्ग पाकर भलाई करते हैं; परन्तु उनका कभी भंग न होनेवाला मलिन स्वभाव नहीं मिटता॥ २॥

लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

जो [वेषधारी] ठग हैं, उन्हें भी अच्छा (साधुका-सा) वेष बनाये देखकर वेषके प्रतापसे जगत् पूजता है; परन्तु एक-न-एक दिन वे चौड़े आ ही जाते हैं, अन्ततक उनका कपट नहीं निभता, जैसे कालनेमि, रावण और राहुका हाल हुआ॥ ३॥

किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥

बुरा वेष बना लेनेपर भी साधुका सम्मान ही होता है, जैसे जगत्‌में जाम्बवान् और हनुमान्‌जीका हुआ। बुरे संगसे हानि और अच्छे संगसे लाभ होता है, यह बात लोक और वेदमें है और सभी लोग इसको जानते हैं॥ ४॥

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥

पवनके संगसे धूल आकाशपर चढ़ जाती है और वही नीच (नीचेकी ओर बहनेवाले) जलके संगसे कीचड़में मिल जाती है। साधुके घरके तोता-मैना राम-राम सुमिरते हैं और असाधुके घरके तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं॥ ५॥

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

कुसंगके कारण धुआँ कालिख कहलाता है, वही धुआँ [सुसंगसे] सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखनेके काममें आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवनके संगसे बादल होकर जगत्‌को जीवन देनेवाला बन जाता है॥ ६॥

दो०— ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥ ७ (क)॥

ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र—ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसारमें बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस बातको जान पाते हैं॥ ७ (क)॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥ ७ (ख)॥

महीनेके दोनों पखवाड़ोंमें उजियाला और अँधेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाताने इनके नाममें भेद कर दिया है (एकका नाम शुक्ल और दूसरेका नाम कृष्ण रख दिया)। एकको चन्द्रमाका बढ़ानेवाला और दूसरेको उसका घटानेवाला समझकर जगत्‌ने एकको सुयश और दूसरेको अपयश दे दिया॥ ७ (ख)॥

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥ ७ (ग)॥

जगत्‌में जितने जड़ और चेतन जीव हैं, सबको राममय जानकर मैं उन सबके चरणकमलोंकी सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ॥ ७ (ग)॥

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥ ७ (घ)॥

देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और निशाचर सबको मैं प्रणाम करता हूँ। अब सब मुझपर कृपा कीजिये॥ ७ (घ)॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

चौरासी लाख योनियोंमें चार प्रकारके (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायुज) जीव जल, पृथ्वी और आकाशमें रहते हैं, उन सबसे भरे हुए इस सारे जगत्‌को श्रीसीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ॥ १॥

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू॥
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥

मुझको अपना दास जानकर कृपाकी खान आप सब लोग मिलकर छल छोड़कर कृपा कीजिये। मुझे अपने बुद्धि-बलका भरोसा नहीं है, इसीलिये मैं सबसे विनती करता हूँ॥ २॥

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥

मैं श्रीरघुनाथजीके गुणोंका वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्रीरामजीका चरित्र अथाह है। इसके लिये मुझे उपायका एक भी अंग अर्थात् कुछ (लेशमात्र) भी उपाय नहीं सूझता। मेरे मन और बुद्धि कंगाल हैं, किन्तु मनोरथ राजा है॥ ३॥

मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥

मेरी बुद्धि तो अत्यन्त नीची है और चाह बड़ी ऊँची है; चाह तो अमृत पानेकी है, पर जगत्‌में जुड़ती छाछ भी नहीं। सज्जन मेरी ढिठाईको क्षमा करेंगे और मेरे बालवचनोंको मन लगाकर (प्रेमपूर्वक) सुनेंगे॥ ४॥

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषनधारी॥

जैसे बालक जब तोतले वचन बोलता है तो उसके माता-पिता उन्हें प्रसन्न मनसे सुनते हैं। किन्तु क्रूर, कुटिल और बुरे विचारवाले लोग जो दूसरोंके दोषोंको ही भूषणरूपसे धारण किये रहते हैं (अर्थात् जिन्हें पराये दोष ही प्यारे लगते हैं), हँसेंगे॥ ५॥

निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥

रसीली हो या अत्यन्त फीकी, अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती? किन्तु जो दूसरेकी रचनाको सुनकर हर्षित होते हैं, ऐसे उत्तम पुरुष जगत्‌में बहुत नहीं हैं, ॥ ६ ॥

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

हे भाई! जगत्‌में तालाबों और नदियोंके समान मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ़से बढ़ते हैं (अर्थात् अपनी ही उन्नतिसे प्रसन्न होते हैं)। समुद्र-सा तो कोई एक विरला ही सज्जन होता है जो चन्द्रमाको पूर्ण देखकर (दूसरोंका उत्कर्ष देखकर) उमड़ पड़ता है ॥ ७ ॥

दो०— भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥ ८॥

मेरा भाग्य छोटा है और इच्छा बहुत बड़ी है, परन्तु मुझे एक विश्वास है कि इसे सुनकर सज्जन सभी सुख पावेंगे और दुष्ट हँसी उड़ावेंगे ॥ ८ ॥

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हंसहिं बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही॥

किन्तु दुष्टोंके हँसनेसे मेरा हित ही होगा। मधुर कण्ठवाली कोयलको कौए तो कठोर ही कहा करते हैं। जैसे बगुले हंसको और मेढक पपीहेको हँसते हैं, वैसे ही मलिन मनवाले दुष्ट निर्मल वाणीको हँसते हैं ॥ १ ॥

कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी॥

जो न तो कविताके रसिक हैं और न जिनका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम है, उनके लिये भी यह कविता सुखद हास्यरसका काम देगी। प्रथम तो यह भाषाकी रचना है, दूसरे मेरी बुद्धि भोली है; इससे यह हँसनेके योग्य ही है, हँसनेमें उन्हें कोई दोष नहीं ॥ २ ॥

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की॥

जिन्हें न तो प्रभुके चरणोंमें प्रेम है और न अच्छी समझ ही है, उनको यह कथा सुननेमें फीकी लगेगी। जिनकी श्रीहरि (भगवान् विष्णु) और श्रीहर (भगवान् शिव) के चरणोंमें प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नहीं है [जो श्रीहरि-हरमें भेदकी या ऊँच-नीचकी कल्पना नहीं करते], उन्हें श्रीरघुनाथजीकी यह कथा मीठी लगेगी ॥ ३ ॥

राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥

सज्जनगण इस कथाको अपने जीमें श्रीरामजीकी भक्तिसे भूषित जानकर सुन्दर वाणीसे सराहना करते हुए सुनेंगे। मैं न तो कवि हूँ, न वाक्यरचनामें ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाओं तथा सब विद्याओंसे रहित हूँ॥ ४॥

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥

नाना प्रकारके अक्षर, अर्थ और अलङ्कार, अनेक प्रकारकी छन्दरचना, भावों और रसोंके अपार भेद और कविताके भाँति-भाँतिके गुण-दोष होते हैं॥ ५॥

कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

इनमेंसे काव्यसम्बन्धी एक भी बातका ज्ञान मुझमें नहीं है, यह मैं कोरे कागजपर लिखकर [शपथपूर्वक] सत्य-सत्य कहता हूँ॥ ६॥

दो०— **भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।**
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक॥ ९॥

मेरी रचना सब गुणोंसे रहित है; इसमें बस, जगत्प्रसिद्ध एक गुण है। उसे विचारकर अच्छी बुद्धिवाले पुरुष, जिनके निर्मल ज्ञान है, इसको सुनेंगे॥ ९॥

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

इसमें श्रीरघुनाथजीका उदार नाम है, जो अत्यन्त पवित्र है, वेद-पुराणोंका सार है, कल्याणका भवन है और अमङ्गलोंको हरनेवाला है, जिसे पार्वतीजीसहित भगवान् शिवजी सदा जपा करते हैं॥ १॥

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

जो अच्छे कविके द्वारा रची हुई बड़ी अनूठी कविता है, वह भी रामनामके बिना शोभा नहीं पाती। जैसे चन्द्रमाके समान मुखवाली सुन्दर स्त्री सब प्रकारसे सुसज्जित होनेपर भी वस्त्रके बिना शोभा नहीं देती॥ २॥

सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥

इसके विपरीत, कुकविकी रची हुई सब गुणोंसे रहित कविताको भी, रामके नाम एवं यशसे अंकित जानकर, बुद्धिमान् लोग आदरपूर्वक कहते और सुनते हैं, क्योंकि संतजन भौंरेकी भाँति गुणहीको ग्रहण करनेवाले होते हैं॥ ३॥

जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा। केहिं न सुसंग बड़प्पनु पावा॥

यद्यपि मेरी इस रचनामें कविताका एक भी रस नहीं है, तथापि इसमें श्रीरामजीका

प्रताप प्रकट है। मेरे मनमें यही एक भरोसा है। भले संगसे भला, किसने बड़प्पन नहीं पाया ?॥ ४॥

धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी॥

धुआँ भी अगरके संगसे सुगन्धित होकर अपने स्वाभाविक कड़ुवेपनको छोड़ देता है। मेरी कविता अवश्य भद्दी है, परन्तु इसमें जगत्‌का कल्याण करनेवाली रामकथारूपी उत्तम वस्तुका वर्णन किया गया है। [इससे यह भी अच्छी ही समझी जायगी] ॥ ५॥

छं०— मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी कथा कल्याण करनेवाली और कलियुगके पापोंको हरनेवाली है। मेरी इस भद्दी कवितारूपी नदीकी चाल पवित्र जलवाली नदी (गङ्गाजी) की चालकी भाँति टेढ़ी है। प्रभु श्रीरघुनाथजीके सुन्दर यशके संगसे यह कविता सुन्दर तथा सज्जनोंके मनको भानेवाली हो जायगी। श्मशानकी अपवित्र राख भी श्रीमहादेवजीके अंगके संगसे सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करनेवाली होती है।

दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥ १० (क)॥

श्रीरामजीके यशके संगसे मेरी कविता सभीको अत्यन्त प्रिय लगेगी, जैसे मलय पर्वतके संगसे काष्ठमात्र [चन्दन बनकर] वन्दनीय हो जाता है, फिर क्या कोई काठ [की तुच्छता] का विचार करता है ?॥ १० (क)॥

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥ १० (ख)॥

श्यामा गौ काली होनेपर भी उसका दूध उज्ज्वल और बहुत गुणकारी होता है। यही समझकर सब लोग उसे पीते हैं। इसी तरह गँवारू भाषामें होनेपर भी श्रीसीता-रामजीके यशको बुद्धिमान् लोग बड़े चावसे गाते और सुनते हैं॥ १० (ख)॥

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥

मणि, माणिक और मोतीकी जैसी सुन्दर छबि है, वह साँप, पर्वत और हाथीके मस्तकपर वैसी शोभा नहीं पाती। राजाके मुकुट और नवयुवती स्त्रीके शरीरको पाकर ही ये सब अधिक शोभाको प्राप्त होते हैं॥ १॥

तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥

इसी तरह, बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि सुकविकी कविता भी उत्पन्न और कहीं होती है और शोभा अन्यत्र कहीं पाती है (अर्थात् कविकी वाणीसे उत्पन्न हुई कविता वहाँ शोभा पाती है जहाँ उसका विचार, प्रचार तथा उसमें कथित आदर्शका ग्रहण और अनुसरण होता है)। कविके स्मरण करते ही उसकी भक्तिके कारण सरस्वतीजी ब्रह्मलोकको छोड़कर दौड़ी आती हैं॥ २॥

राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥

सरस्वतीजीकी दौड़ी आनेकी वह थकावट रामचरितरूपी सरोवरमें उन्हें नहलाये बिना दूसरे करोड़ों उपायोंसे भी दूर नहीं होती। कवि और पण्डित अपने हृदयमें ऐसा विचारकर कलियुगके पापोंको हरनेवाले श्रीहरिके यशका ही गान करते हैं॥ ३॥

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥

संसारी मनुष्योंका गुणगान करनेसे सरस्वतीजी सिर धुनकर पछताने लगती हैं [कि मैं क्यों इसके बुलानेपर आयी]। बुद्धिमान् लोग हृदयको समुद्र, बुद्धिको सीप और सरस्वतीको स्वाति नक्षत्रके समान कहते हैं॥ ४॥

जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू॥

इसमें यदि श्रेष्ठ विचाररूपी जल बरसता है तो मुक्तामणिके समान सुन्दर कविता होती है॥ ५॥

दो०— जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥ ११॥

उन कवितारूपी मुक्तामणियोंको युक्तिसे बेधकर फिर रामचरित्ररूपी सुन्दर तागेमें पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदयमें धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुरागरूपी शोभा होती है (वे आत्यन्तिक प्रेमको प्राप्त होते हैं)॥ ११॥

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलि मल भाँड़े॥

जो कराल कलियुगमें जन्मे हैं, जिनकी करनी कौएके समान है और वेष हंसका-सा है, जो वेदमार्गको छोड़कर कुमार्गपर चलते हैं, जो कपटकी मूर्ति और कलियुगके पापोंके भाँड़े हैं॥ १॥

बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी॥

जो श्रीरामजीके भक्त कहलाकर लोगोंको ठगते हैं, जो धन (लोभ), क्रोध और

कामके गुलाम हैं और जो धींगाधींगी करनेवाले, धर्मध्वजी (धर्मकी झूठी ध्वजा फहरानेवाले—दम्भी) और कपटके धन्धोंका बोझ ढोनेवाले हैं, संसारके ऐसे लोगोंमें सबसे पहले मेरी गिनती है॥ २॥

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥

यदि मैं अपने सब अवगुणोंको कहने लगूँ तो कथा बहुत बढ़ जायगी और मैं पार नहीं पाऊँगा। इससे मैंने बहुत कम अवगुणोंका वर्णन किया है। बुद्धिमान् लोग थोड़ेहीमें समझ लेंगे॥ ३॥

समुझि बिबिधि बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका॥

मेरी अनेकों प्रकारकी विनतीको समझकर, कोई भी इस कथाको सुनकर दोष नहीं देगा। इतनेपर भी जो शंका करेंगे, वे तो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धिके कंगाल हैं॥ ४॥

कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥

मैं न तो कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ; अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीरामजीके गुण गाता हूँ। कहाँ तो श्रीरघुनाथजीके अपार चरित्र, कहाँ संसारमें आसक्त मेरी बुद्धि!॥ ५॥

जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

जिस हवासे सुमेरु-जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, कहिये तो, उसके सामने रूई किस गिनतीमें श्रीरामजीकी असीम प्रभुताको समझकर कथा रचनेमें मेरा मन बहुत हिचकता है—॥ ६॥

दो०— सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥ १२॥

सरस्वतीजी, शेषजी, शिवजी, ब्रह्माजी, शास्त्र, वेद और पुराण—ये सब 'नेति नेति' कहकर (पार नहीं पाकर 'ऐसा नहीं', 'ऐसा नहीं' कहते हुए) सदा जिनका गुणगान किया करते हैं॥ १२॥

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥

यद्यपि प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी प्रभुताको सब ऐसी (अकथनीय) ही जानते हैं तथापि कहे बिना कोई नहीं रहा। इसमें वेदने ऐसा कारण बताया है कि भजनका प्रभाव बहुत तरहसे कहा गया है। (अर्थात् भगवान्‌की महिमाका पूरा वर्णन तो कोई कर नहीं सकता; परन्तु जिससे जितना बन पड़े उतना भगवान्‌का गुणगान करना चाहिये। क्योंकि भगवान्‌के गुणगानरूपी भजनका प्रभाव बहुत ही अनोखा है, उसका ना॥

प्रकारसे शास्त्रोंमें वर्णन है। थोड़ा-सा भी भगवान्‌का भजन मनुष्यको सहज ही भवसागरसे तार देता है) ॥ १ ॥

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

जो परमेश्वर एक हैं, जिनके कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम हैं और जो सबमें व्यापक एवं विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान्‌ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारकी लीला की है ॥ २ ॥

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥

वह लीला केवल भक्तोंके हितके लिये ही है; क्योंकि भगवान् परम कृपालु हैं और शरणागतके बड़े प्रेमी हैं। जिनकी भक्तोंपर बड़ी ममता और कृपा है, जिन्होंने एक बार जिसपर कृपा कर दी, उसपर फिर कभी क्रोध नहीं किया ॥ ३ ॥

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥

वे प्रभु श्रीरघुनाथजी गयी हुई वस्तुको फिर प्राप्त करानेवाले, गरीबनिवाज (दीनबन्धु), सरलस्वभाव, सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं। यही समझकर बुद्धिमान् लोग उन श्रीहरिका यश वर्णन करके अपनी वाणीको पवित्र और उत्तम फल (मोक्ष और दुर्लभ भगवत्प्रेम) देनेवाली बनाते हैं ॥ ४ ॥

तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

उसी बलसे (महिमाका यथार्थ वर्णन नहीं, परन्तु महान् फल देनेवाला भजन समझकर भगवत्कृपाके बलपर ही) मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाकर श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथा कहूँगा। इसी विचारसे [वाल्मीकि, व्यास आदि] मुनियोंने पहले हरिकी कीर्ति गायी है। भाई! उसी मार्गपर चलना मेरे लिये सुगम होगा ॥ ५ ॥

दो०— अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥ १३॥

जो अत्यन्त बड़ी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि राजा उनपर पुल बँधा देता है तो अत्यन्त छोटी चींटियाँ भी उनपर चढ़कर बिना ही परिश्रमके पार चली जाती हैं [इसी प्रकार मुनियोंके वर्णनके सहारे मैं भी श्रीरामचरित्रका वर्णन सहज ही कर सकूँगा] ॥ १३ ॥

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥

इस प्रकार मनको बल दिखलाकर मैं श्रीरघुनाथजीकी सुहावनी कथाकी रचना

करूँगा। व्यास आदि जो अनेकों श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, जिन्होंने बड़े आदरसे श्रीहरिका सुयश वर्णन किया है॥ १॥

चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥

मैं उन सब (श्रेष्ठ कवियों) के चरणकमलोंमें प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथोंको पूरा करें। कलियुगके भी उन कवियोंको मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका वर्णन किया है॥ २॥

जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें॥

जो बड़े बुद्धिमान् प्राकृत कवि हैं, जिन्होंने भाषामें हरिचरित्रोंका वर्णन किया है, जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो आगे होंगे, उन सबको मैं सारा कपट त्यागकर प्रणाम करता हूँ॥ ३॥

होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं॥

आप सब प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये कि साधु-समाजमें मेरी कविताका सम्मान हो; क्योंकि बुद्धिमान् लोग जिस कविताका आदर नहीं करते, मूर्ख कवि ही उसकी रचनाका व्यर्थ परिश्रम करते हैं॥ ४॥

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥

कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गङ्गाजीकी तरह सबका हित करनेवाली हो। श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्ति तो बड़ी सुन्दर (सबका अनन्त कल्याण करनेवाली ही) है, परन्तु मेरी कविता भद्दी है। यह असामञ्जस्य है (अर्थात् इन दोनोंका मेल नहीं मिलता), इसीकी मुझे चिन्ता है॥ ५॥

तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥

परन्तु हे कवियो! आपकी कृपासे यह बात भी मेरे लिये सुलभ हो सकती है। रेशमकी सिलाई टाटपर भी सुहावनी लगती है॥ ६॥

दो०— सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥ १४ (क)॥

चतुर पुरुष उसी कविताका आदर करते हैं, जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्रका वर्णन हो तथा जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक वैरको भूलकर सराहना करने लगें॥ १४ (क)॥

सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर॥ १४ (ख)॥

ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धिके होती नहीं और मेरे बुद्धिका बल बहुत ही थोड़ा है। इसलिये बार-बार निहोरा करता हूँ कि हे कवियो! आप कृपा करें, जिससे मैं हरियशका वर्णन कर सकूँ॥ १४ (ख)॥

कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल॥ १४ (ग)॥

कवि और पण्डितगण! आप जो रामचरित्ररूपी मानसरोवरके सुन्दर हंस हैं, मुझ बालककी विनती सुनकर और सुन्दर रुचि देखकर मुझपर कृपा करें॥ १४ (ग)॥

सो०—बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥ १४ (घ)॥

मैं उन वाल्मीकि मुनिके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायणकी रचना की है, जो खर (राक्षस) सहित होनेपर भी खर (कठोर) से विपरीत बड़ी कोमल और सुन्दर है तथा जो दूषण (राक्षस) सहित होनेपर भी दूषण अर्थात् दोषसे रहित है॥ १४ (घ)॥

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु॥ १४ (ङ)॥

मैं चारों वेदोंकी वन्दना करता हूँ, जो संसारसमुद्रके पार होनेके लिये जहाजके समान हैं तथा जिन्हें श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन करते स्वप्नमें भी खेद (थकावट) नहीं होता॥ १४ (ङ)॥

बंदउँ बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी॥ १४ (च)॥

मैं ब्रह्माजीके चरण-रजकी वन्दना करता हूँ, जिन्होंने भवसागर बनाया है, जहाँसे एक ओर संतरूपी अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु निकले और दूसरी ओर दुष्ट मनुष्यरूपी विष और मदिरा उत्पन्न हुए॥ १४ (च)॥

दो०—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि॥ १४ (छ)॥

देवता, ब्राह्मण, पण्डित, ग्रह—इन सबके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप प्रसन्न होकर मेरे सारे सुन्दर मनोरथोंको पूरा करें॥ १४ (छ)॥

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥

फिर मैं सरस्वतीजी और देवनदी गङ्गाजीकी वन्दना करता हूँ। दोनों पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं। एक (गङ्गाजी) स्नान करने और जल पीनेसे पापोंको हरती हैं और दूसरी (सरस्वतीजी) गुण और यश कहने और सुननेसे अज्ञानका नाश कर देती हैं॥ १॥

गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के॥

श्रीमहेश और पार्वतीको मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता-पिता हैं, जो दीनबन्धु और नित्य दान करनेवाले हैं, जो सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके सेवक, स्वामी और सखा हैं तथा मुझ तुलसीदासका सब प्रकारसे कपटरहित (सच्चा) हित करनेवाले हैं॥ २॥

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥

जिन शिव-पार्वतीने कलियुगको देखकर, जगत्‌के हितके लिये, शाबर मन्त्रसमूहकी रचना की, जिन मन्त्रोंके अक्षर बेमेल हैं, जिनका न कोई ठीक अर्थ होता है और न जप ही होता है, तथापि श्रीशिवजीके प्रतापसे जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष है॥ ३॥

सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥

वे उमापति शिवजी मुझपर प्रसन्न होकर [श्रीरामजीकी] इस कथाको आनन्द और मङ्गलकी मूल (उत्पन्न करनेवाली) बनायेंगे। इस प्रकार पार्वतीजी और शिवजी दोनोंका स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चावभरे चित्तसे श्रीरामचरित्रका वर्णन करता हूँ॥ ४॥

भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥

मेरी कविता श्रीशिवजीकी कृपासे ऐसी सुशोभित होगी, जैसी तारागणोंके सहित चन्द्रमाके साथ रात्रि शोभित होती है। जो इस कथाको प्रेमसहित एवं सावधानीके साथ समझ-बूझकर कहें-सुनेंगे, वे कलियुगके पापोंसे रहित और सुन्दर कल्याणके भागी होकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके प्रेमी बन जायँगे॥ ५-६॥

दो०— **सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।**
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥ १५॥

यदि मुझपर श्रीशिवजी और पार्वतीजीकी स्वप्नमें भी सचमुच प्रसन्नता हो, तो मैंने इस भाषा, कविताका जो प्रभाव कहा है, वह सब सच हो॥ १५॥

बंदउँ अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि॥
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी॥

मैं अति पवित्र श्रीअयोध्यापुरी और कलियुगके पापोंका नाश करनेवाली श्रीसरयू नदीकी वन्दना करता हूँ। फिर अवधपुरीके उन नर-नारियोंको प्रणाम करता हूँ जिनपर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी ममता थोड़ी नहीं है (अर्थात् बहुत है) ॥ १ ॥

सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए॥
बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥

उन्होंने [अपनी पुरीमें रहनेवाले] सीताजीकी निन्दा करनेवाले (धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों) के पापसमूहको नाश कर उनको शोकरहित बनाकर अपने लोक (धाम) में बसा दिया। मैं कौसल्यारूपी पूर्व दिशाकी वन्दना करता हूँ, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही है ॥ २ ॥

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी॥
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥

जहाँ (कौसल्यारूपी पूर्व दिशा) से विश्वको सुख देनेवाले और दुष्टरूपी कमलोंके लिये पालेके समान श्रीरामचन्द्रजीरूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए। सब रानियोंसहित राजा दशरथजीको पुण्य और सुन्दर कल्याणकी मूर्ति मानकर मैं मन, वचन और कर्मसे प्रणाम करता हूँ। अपने पुत्रका सेवक जानकर वे मुझपर कृपा करें, जिनको रचकर ब्रह्माजीने भी बड़ाई पायी तथा जो श्रीरामजीके माता और पिता होनेके कारण महिमाकी सीमा हैं ॥ ३-४ ॥

सो०— बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥ १६ ॥

मैं अवधके राजा श्रीदशरथजीकी वन्दना करता हूँ, जिनका श्रीरामजीके चरणोंमें सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनदयालु प्रभुके बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीरको मामूली तिनकेकी तरह त्याग दिया ॥ १६ ॥

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

मैं परिवारसहित राजा जनकजीको प्रणाम करता हूँ, जिनका श्रीरामजीके चरणोंमें गूढ़ प्रेम था, जिसको उन्होंने योग और भोगमें छिपा रखा था, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीको देखते ही वह प्रकट हो गया ॥ १ ॥

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

[भाइयोंमें] सबसे पहले मैं श्रीभरतजीके चरणोंको प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नहीं किया जा सकता तथा जिनका मन श्रीरामजीके चरणकमलोंमें

भौंरेकी तरह लुभाया हुआ है, कभी उनका पास नहीं छोड़ता॥ २॥

बंदउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥

मैं श्रीलक्ष्मणजीके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तोंको सुख देनेवाले हैं। श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिरूपी विमल पताकामें जिनका (लक्ष्मणजीका) यश [पताकाको ऊँचा करके फहरानेवाले] दंडके समान हुआ॥ ३॥

सेष सहस्त्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥

जो हजार सिरवाले और जगत्‌के कारण (हजार सिरोंपर जगत्‌को धारण कर रखनेवाले) शेषजी हैं, जिन्होंने पृथ्वीका भय दूर करनेके लिये अवतार लिया, वे गुणोंकी खानि कृपासिन्धु सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजी मुझपर सदा प्रसन्न रहें॥ ४॥

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥

मैं श्रीशत्रुघ्नजीके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ, जो बड़े वीर, सुशील और श्रीभरतजीके पीछे चलनेवाले हैं। मैं महावीर श्रीहनुमान्‌जीकी विनती करता हूँ, जिनके यशका श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं (अपने श्रीमुखसे) वर्णन किया है॥ ५॥

सो०—प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥ १७॥

मैं पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीको प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टरूपी वनको भस्म करनेके लिये अग्निरूप हैं, जो ज्ञानकी घनमूर्ति हैं और जिनके हृदयरूपी भवनमें धनुष-बाण धारण किये श्रीरामजी निवास करते हैं॥ १७॥

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
बंदउँ सब के चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥

वानरोंके राजा सुग्रीवजी, रीछोंके राजा जाम्बवान्‌जी, राक्षसोंके राजा विभीषणजी और अंगदजी आदि जितना वानरोंका समाज है, सबके सुन्दर चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ, जिन्होंने अधम (पशु और राक्षस आदि) शरीरमें भी श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त कर लिया॥ १॥

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य, असुरसमेत जितने श्रीरामजीके चरणोंके उपासक हैं, मैं उन सबके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो श्रीरामजीके निष्काम सेवक हैं॥ २॥

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥

शुकदेवजी, सनकादि, नारदमुनि आदि जितने भक्त और परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं धरतीपर सिर टेककर उन सबको प्रणाम करता हूँ; हे मुनीश्वरो! आप सब मुझको अपना दास जानकर कृपा कीजिये॥ ३॥

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

राजा जनककी पुत्री, जगत्‌की माता और करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी प्रियतमा श्रीजानकीजीके दोनों चरणकमलोंको मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपासे निर्मल बुद्धि पाऊँ॥ ४॥

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक॥
राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥

फिर मैं मन, वचन और कर्मसे कमलनयन, धनुष-बाणधारी, भक्तोंकी विपत्तिका नाश करने और उन्हें सुख देनेवाले भगवान् श्रीरघुनाथजीके सर्वसमर्थ चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ॥ ५॥

दो०— गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥ १८॥

जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जलकी लहरके समान कहनेमें अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तवमें अभिन्न (एक) हैं, उन श्रीसीतारामजीके चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुत ही प्रिय हैं॥ १८॥

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

मैं श्रीरघुनाथजीके नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् 'र' 'आ' और 'म' रूपसे बीज है। वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है। वह वेदोंका प्राण है; निर्गुण, उपमारहित और गुणोंका भण्डार है॥ १॥

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

जो महामन्त्र है, जिसे महेश्वर श्रीशिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है, तथा जिसकी महिमाको गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नामके प्रभावसे ही सबसे पहले पूजे जाते हैं॥ २॥

जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी रामनामके प्रतापको जानते हैं, जो उलटा नाम ('मरा',

'मरा') जपकर पवित्र हो गये। श्रीशिवजीके इस वचनको सुनकर कि एक राम-नाम सहस्र नामके समान है, पार्वतीजी सदा अपने पति (श्रीशिवजी) के साथ रामनामका जप करती रहती हैं॥ ३॥

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

नामके प्रति पार्वतीजीके हृदयकी ऐसी प्रीति देखकर श्रीशिवजी हर्षित हो गये और उन्होंने स्त्रियोंमें भूषणरूप (पतिव्रताओंमें शिरोमणि) पार्वतीजीको अपना भूषण बना लिया (अर्थात् उन्हें अपने अङ्गमें धारण करके अर्धाङ्गिनी बना लिया)। नामके प्रभावको श्रीशिवजी भलीभाँति जानते हैं, जिस (प्रभाव) के कारण कालकूट जहरने उनको अमृतका फल दिया॥ ४॥

दो०— बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥ १९॥

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति वर्षा-ऋतु है, तुलसीदासजी कहते हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं और 'राम' नामके दो सुन्दर अक्षर सावन-भादोंके महीने हैं॥ १९॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥

दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं, जो वर्णमालारूपी शरीरके नेत्र हैं, भक्तोंके जीवन हैं तथा स्मरण करनेमें सबके लिये सुलभ और सुख देनेवाले हैं, और जो इस लोकमें लाभ और परलोकमें निर्वाह करते हैं (अर्थात् भगवान्‌के दिव्य धाममें दिव्य देहसे सदा भगवत्सेवामें नियुक्त रखते हैं)॥ १॥

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥

ये कहने, सुनने और स्मरण करनेमें बहुत ही अच्छे (सुन्दर और मधुर) हैं; तुलसीदासको तो श्रीराम-लक्ष्मणके समान प्यारे हैं। इनका ('र' और 'म' का) अलग-अलग वर्णन करनेमें प्रीति बिलगाती है (अर्थात् बीजमन्त्रकी दृष्टिसे इनके उच्चारण, अर्थ और फलमें भिन्नता दीख पड़ती है) परन्तु हैं ये जीव और ब्रह्मके समान स्वभावसे ही साथ रहनेवाले (सदा एकरूप और एकरस)॥ २॥

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥

ये दोनों अक्षर नर-नारायणके समान सुन्दर भाई हैं, ये जगत्‌का पालन और विशेषरूपसे भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं। ये भक्तिरूपिणी सुन्दर स्त्रीके कानोंके सुन्दर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत्‌के हितके लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं॥ ३॥

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥

ये सुन्दर गति (मोक्ष) रूपी अमृतके स्वाद और तृप्तिके समान हैं, कच्छप और शेषजीके समान पृथ्वीके धारण करनेवाले हैं, भक्तोंके मनरूपी सुन्दर कमलमें विहार करनेवाले भौंरेके समान हैं और जीभरूपी यशोदाजीके लिये श्रीकृष्ण और बलरामजीके समान (आनन्द देनेवाले) हैं॥ ४॥

दो०— एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥ २०॥

तुलसीदासजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजीके नामके दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमेंसे एक (रकार) छत्ररूप (रेफ र्) से और दूसरा (मकार) मुकुटमणि (अनुस्वार ं) रूपसे सब अक्षरोंके ऊपर हैं॥ २०॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥

समझनेमें नाम और नामी दोनों एक-से हैं, किन्तु दोनोंमें परस्पर स्वामी और सेवकके समान प्रीति है (अर्थात् नाम और नामीमें पूर्ण एकता होनेपर भी जैसे स्वामीके पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नामके पीछे नामी चलते हैं। प्रभु श्रीरामजी अपने 'राम' नामका ही अनुगमन करते हैं, नाम लेते ही वहाँ आ जाते हैं)। नाम और रूप दोनों ईश्वरकी उपाधि हैं; ये (भगवान्‌के नाम और रूप) दोनों अनिर्वचनीय हैं, अनादि हैं और सुन्दर (शुद्ध भक्तियुक्त) बुद्धिसे ही इनका [दिव्य अविनाशी] स्वरूप जाननेमें आता है॥ १॥

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

इन (नाम और रूप) में कौन बड़ा है, कौन छोटा, यह कहना तो अपराध है। इनके गुणोंका तारतम्य (कमी-बेशी) सुनकर साधु पुरुष स्वयं ही समझ लेंगे। रूप नामके अधीन देखे जाते हैं, नामके बिना रूपका ज्ञान नहीं हो सकता॥ २॥

रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

कोई-सा विशेष रूप बिना उसका नाम जाने हथेलीपर रखा हुआ भी पहचाना नहीं जा सकता और रूपके बिना देखे भी नामका स्मरण किया जाय तो विशेष प्रेमके साथ वह रूप हृदयमें आ जाता है॥ ३॥

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

नाम और रूपकी गतिकी कहानी (विशेषताकी कथा) अकथनीय है। वह

समझनेमें सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुणके बीचमें नाम सुन्दर साक्षी है और दोनोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाला चतुर दुभाषिया है॥ ४॥

दो०— राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥ २१॥

तुलसीदासजी कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है तो मुखरूपी द्वारकी जीभरूपी देहलीपर रामनामरूपी मणि-दीपकको रख॥ २१॥

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

ब्रह्माके बनाये हुए इस प्रपञ्च (दृश्य जगत्) से भलीभाँति छूटे हुए वैराग्यवान् मुक्त योगी पुरुष इस नामको ही जीभसे जपते हुए [तत्त्वज्ञानरूपी दिनमें] जागते हैं और नाम तथा रूपसे रहित अनुपम, अनिर्वचनीय, अनामय ब्रह्मसुखका अनुभव करते हैं॥ १॥

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

जो परमात्माके गूढ़ रहस्यको (यथार्थ महिमाको) जानना चाहते हैं, वे (जिज्ञासु) भी नामको जीभसे जपकर उसे जान लेते हैं। [लौकिक सिद्धियोंके चाहनेवाले अर्थार्थी] साधक लौ लगाकर नामका जप करते हैं और अणिमादि [आठों] सिद्धियोंको पाकर सिद्ध हो जाते हैं॥ २॥

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

[संकटसे घबराये हुए] आर्त भक्त नामजप करते हैं तो उनके बड़े भारी बुरे-बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। जगत्‌में चार प्रकारके (१-अर्थार्थी—धनादिकी चाहसे भजनेवाले, २-आर्त—संकटकी निवृत्तिके लिये भजनेवाले, ३-जिज्ञासु—भगवान्‌को जाननेकी इच्छासे भजनेवाले, ४-ज्ञानी—भगवान्‌को तत्त्वसे जानकर स्वाभाविक ही प्रेमसे भजनेवाले) रामभक्त हैं और चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं॥ ३॥

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

चारों ही चतुर भक्तोंको नामका ही आधार है; इनमें ज्ञानी भक्त प्रभुको विशेषरूपसे प्रिय है। यों तो चारों युगोंमें और चारों ही वेदोंमें नामका प्रभाव है, परन्तु कलियुगमें विशेषरूपसे है। इसमें तो [नामको छोड़कर] दूसरा कोई उपाय ही नहीं है॥ ४॥

दो०— सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥ २२॥

जो सब प्रकारकी (भोग और मोक्षकी भी) कामनाओंसे रहित और श्रीरामभक्तिके रसमें लीन हैं, उन्होंने भी नामके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतके सरोवरमें अपने मनको मछली बना रखा है (अर्थात् वे नामरूपी सुधाका निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं, क्षणभर भी उससे अलग होना नहीं चाहते) ॥ २२ ॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥

निर्गुण और सगुण—ब्रह्मके दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मतिमें नाम इन दोनोंसे बड़ा है, जिसने अपने बलसे दोनोंको अपने वशमें कर रखा है ॥ १ ॥

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥

सज्जनगण इस बातको मुझ दासकी ढिठाई या केवल काव्योक्ति न समझें। मैं अपने मनके विश्वास, प्रेम और रुचिकी बात कहता हूँ। [निर्गुण और सगुण] दोनों प्रकारके ब्रह्मका ज्ञान अग्निके समान है। निर्गुण उस अप्रकट अग्निके समान है जो काठके अंदर है, परन्तु दीखती नहीं; और सगुण उस प्रकट अग्निके समान है जो प्रत्यक्ष दीखती है। [तत्त्वत: दोनों एक ही हैं; केवल प्रकट-अप्रकटके भेदसे भिन्न मालूम होती हैं। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्त्वत: एक ही हैं। इतना होनेपर भी] दोनों ही जाननेमें बड़े कठिन हैं, परन्तु नामसे दोनों सुगम हो जाते हैं। इसीसे मैंने नामको [निर्गुण] ब्रह्मसे और [सगुण] रामसे बड़ा कहा है, ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है; सत्ता, चैतन्य और आनन्दकी घनराशि है ॥ २-३ ॥

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

ऐसे विकाररहित प्रभुके हृदयमें रहते भी जगत्‌के सब जीव दीन और दु:खी हैं। नामका निरूपण करके (नामके यथार्थ स्वरूप, महिमा, रहस्य और प्रभावको जानकर) नामका जतन करनेसे (श्रद्धापूर्वक नामजपरूपी साधन करनेसे) वही ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे रत्नके जाननेसे उसका मूल्य ॥ ४ ॥

दो०— निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ २३ ॥

इस प्रकार निर्गुणसे नामका प्रभाव अत्यन्त बड़ा है। अब अपने विचारके अनुसार कहता हूँ कि नाम [सगुण] रामसे भी बड़ा है ॥ २३ ॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥

श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके हितके लिये मनुष्य-शरीर धारण करके स्वयं कष्ट सहकर साधुओंको सुखी किया; परन्तु भक्तगण प्रेमके साथ नामका जप करते हुए सहजहीमें आनन्द और कल्याणके घर हो जाते हैं॥ १॥

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

श्रीरामजीने एक तपस्वीकी स्त्री (अहल्या) को ही तारा, परन्तु नामने करोड़ों दुष्टोंकी बिगड़ी बुद्धिको सुधार दिया। श्रीरामजीने ऋषि विश्वामित्रके हितके लिये एक सुकेतु यक्षकी कन्या ताड़काकी सेना और पुत्र (सुबाहु) सहित समाप्ति की; परन्तु नाम अपने भक्तोंके दोष, दुःख और दुराशाओंका इस तरह नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रिका। श्रीरामजीने तो स्वयं शिवजीके धनुषको तोड़ा, परन्तु नामका प्रताप ही संसारके सब भयोंका नाश करनेवाला है॥ २-३॥

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

प्रभु श्रीरामजीने [भयानक] दण्डक वनको सुहावना बनाया, परन्तु नामने असंख्य मनुष्योंके मनोंको पवित्र कर दिया। श्रीरघुनाथजीने राक्षसोंके समूहको मारा, परन्तु नाम तो कलियुगके सारे पापोंकी जड़ उखाड़नेवाला है॥ ४॥

दो०— सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥ २४॥

श्रीरघुनाथजीने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकोंको ही मुक्ति दी; परन्तु नामने अगनित दुष्टोंका उद्धार किया। नामके गुणोंकी कथा वेदोंमें प्रसिद्ध है॥ २४॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥

श्रीरामजीने सुग्रीव और विभीषण दोको ही अपने शरणमें रखा, यह सब कोई जानते हैं; परंतु नामने अनेक गरीबोंपर कृपा की है। नामका यह सुन्दर विरद लोक और वेदमें विशेषरूपसे प्रकाशित है॥ १॥

राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥

श्रीरामजीने तो भालू और बन्दरोंकी सेना बटोरी और समुद्रपर पुल बाँधनेके लिये

थोड़ा परिश्रम नहीं किया; परंतु नाम लेते ही संसार-समुद्र सूख जाता है। सज्जनगण! मनमें विचार कीजिये [कि दोनोंमें कौन बड़ा है] ॥ २ ॥

राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥

श्रीरामचन्द्रजीने कुटुम्बसहित रावणको युद्धमें मारा, तब सीतासहित उन्होंने अपने नगर (अयोध्या) में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई, देवता और मुनि सुन्दर वाणीसे जिनके गुण गाते हैं। परंतु सेवक (भक्त) प्रेमपूर्वक नामके स्मरणमात्रसे बिना परिश्रम मोहकी प्रबल सेनाको जीतकर प्रेममें मग्न हुए अपने ही सुखमें विचरते हैं, नामके प्रसादसे उन्हें सपनेमें भी कोई चिन्ता नहीं सताती ॥ ३-४ ॥

दो०— ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥ २५ ॥

इस प्रकार नाम [निर्गुण] ब्रह्म और [सगुण] राम दोनोंसे बड़ा है। यह वरदान देनेवालोंको भी वर देनेवाला है। श्रीशिवजीने अपने हृदयमें यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्रमेंसे इस 'राम' नामको [साररूपसे चुनकर] ग्रहण किया है ॥ २५ ॥

मासपारायण, पहला विश्राम

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥

नामहीके प्रसादसे शिवजी अविनाशी हैं और अमङ्गल वेषवाले होनेपर भी मङ्गलकी राशि हैं। शुकदेवजी और सनकादि सिद्ध, मुनि, योगीगण नामके ही प्रसादसे ब्रह्मानन्दको भोगते हैं ॥ १ ॥

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥

नारदजीने नामके प्रतापको जाना है। हरि सारे संसारको प्यारे हैं, [हरिको हर प्यारे हैं] और आप (श्रीनारदजी) हरि और हर दोनोंको प्रिय हैं। नामके जपनेसे प्रभुने कृपा की, जिससे प्रह्लाद भक्तशिरोमणि हो गये ॥ २ ॥

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

ध्रुवजीने ग्लानिसे (विमाताके वचनोंसे दुःखी होकर सकामभावसे) हरिनामको जपा और उसके प्रतापसे अचल अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया। हनुमान्‌जीने पवित्र नामका स्मरण करके श्रीरामजीको अपने वशमें कर रखा है ॥ ३ ॥

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

नीच अजामिल, गज और गणिका (वेश्या) भी श्रीहरिके नामके प्रभावसे मुक्त हो गये। मैं नामकी बड़ाई कहाँतक कहूँ, राम भी नामके गुणोंको नहीं गा सकते॥ ४॥

दो०— नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥ २६॥

कलियुगमें रामका नाम कल्पतरु (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) और कल्याणका निवास (मुक्तिका घर) है, जिसको स्मरण करनेसे भाँग-सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसीके समान (पवित्र) हो गया॥ २६॥

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

[केवल कलियुगकी ही बात नहीं है,] चारों युगोंमें, तीनों कालोंमें और तीनों लोकोंमें नामको जपकर जीव शोकरहित हुए हैं। वेद, पुराण और संतोंका मत यही है कि समस्त पुण्योंका फल श्रीरामजीमें [या रामनाममें] प्रेम होना है॥ १॥

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

पहले (सत्य) युगमें ध्यानसे, दूसरे (त्रेता) युगमें यज्ञसे और द्वापरमें पूजनसे भगवान् प्रसन्न होते हैं; परंतु कलियुग केवल पापकी जड़ और मलिन है, इसमें मनुष्योंका मन पापरूपी समुद्रमें मछली बना हुआ है (अर्थात् पापसे कभी अलग होना ही नहीं चाहता; इससे ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं बन सकते)॥ २॥

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

ऐसे कराल (कलियुगके) कालमें तो नाम ही कल्पवृक्ष है, जो स्मरण करते ही संसारके सब जंजालोंको नाश कर देनेवाला है। कलियुगमें यह रामनाम मनोवाञ्छित फल देनेवाला है, परलोकका परम हितैषी और इस लोकका माता-पिता है (अर्थात् परलोकमें भगवान्का परमधाम देता है और इस लोकमें माता-पिताके समान सब प्रकारसे पालन और रक्षण करता है)॥ ३॥

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

कलियुगमें न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है; रामनाम ही एक आधार है। कपटकी खान कलियुगरूपी कालनेमिके [मारनेके] लिये रामनाम ही बुद्धिमान् और समर्थ श्रीहनुमान्जी हैं॥ ४॥

दो०— **राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।**
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥ २७॥

रामनाम श्रीनृसिंह भगवान् है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करनेवाले जन प्रह्लादके समान हैं; यह रामनाम देवताओंके शत्रु (कलियुगरूपी दैत्य) को मारकर जप करनेवालोंकी रक्षा करेगा॥ २७॥

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥

अच्छे भाव (प्रेम) से, बुरे भाव (वैर) से, क्रोधसे या आलस्यसे, किसी तरहसे भी नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें कल्याण होता है। उसी (परम कल्याणकारी) रामनामका स्मरण करके और श्रीरघुनाथजीको मस्तक नवाकर मैं रामजीके गुणोंका वर्णन करता हूँ॥ १॥

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥

वे (श्रीरामजी) मेरी [बिगड़ी] सब तरहसे सुधार लेंगे; जिनकी कृपा कृपा करनेसे नहीं अघाती। राम-से उत्तम स्वामी और मुझ-सरीखा बुरा सेवक! इतनेपर भी उन दयानिधिने अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया है॥ २॥

लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर॥

लोक और वेदमें भी अच्छे स्वामीकी यही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय सुनते ही प्रेमको पहचान लेता है। अमीर-गरीब, गँवार-नगरनिवासी, पण्डित-मूर्ख, बदनाम-यशस्वी॥ ३॥

सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला॥

सुकवि-कुकवि, सभी नर-नारी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार राजाकी सराहना करते हैं। और साधु, बुद्धिमान्, सुशील, ईश्वरके अंशसे उत्पन्न कृपालु राजा— ॥ ४॥

सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ॥

सबकी सुनकर और उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चालको पहचानकर सुन्दर (मीठी) वाणीसे सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं। यह स्वभाव तो संसारी राजाओंका है, कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजी तो चतुरशिरोमणि हैं॥ ५॥

रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मंद मलिनमति मोतें॥

श्रीरामजी तो विशुद्ध प्रेमसे ही रीझते हैं, पर जगत्‌में मुझसे बढ़कर मूर्ख और मलिनबुद्धि और कौन होगा?॥ ६॥

दो०—सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥ २८ (क)॥

तथापि कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुझ दुष्ट सेवककी प्रीति और रुचिको अवश्य रखेंगे, जिन्होंने पत्थरोंको जहाज और बन्दर-भालुओंको बुद्धिमान् मन्त्री बना लिया॥ २८ (क)॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास॥ २८ (ख)॥

सब लोग मुझे श्रीरामजीका सेवक कहते हैं और मैं भी [बिना लज्जा-संकोचके] कहलाता हूँ (कहनेवालोंका विरोध नहीं करता); कृपालु श्रीरामजी इस निन्दाको सहते हैं कि श्रीसीतानाथजी-जैसे स्वामीका तुलसीदास-सा सेवक है॥ २८ (ख)॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें॥

यह मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, मेरे पापको सुनकर नरकने भी नाक सिकोड़ ली है (अर्थात् नरकमें भी मेरे लिये ठौर नहीं है)। यह समझकर मुझे अपने ही कल्पित डरसे डर हो रहा है, किंतु भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने तो स्वप्नमें भी इसपर (मेरी इस ढिठाई और दोषपर) ध्यान नहीं दिया॥ १॥

सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥

वरं मेरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने तो इस बातको सुनकर, देखकर और अपने सुचित्तरूपी चक्षुसे निरीक्षण कर मेरी भक्ति और बुद्धिकी [उलटे] सराहना की। क्योंकि कहनेमें चाहे बिगड़ जाय (अर्थात् मैं चाहे अपनेको भगवान्‌का सेवक कहता-कहलाता रहूँ), परंतु हृदयमें अच्छापन होना चाहिये। (हृदयमें तो अपनेको उनका सेवक बनने योग्य नहीं मानकर पापी और दीन ही मानता हूँ, यह अच्छापन है।) श्रीरामचन्द्रजी भी दासके हृदयकी [अच्छी] स्थिति जानकर रीझ जाते हैं॥ २॥

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥

प्रभुके चित्तमें अपने भक्तोंकी की हुई भूल-चूक याद नहीं रहती (वे उसे भूल जाते हैं) और उनके हृदय [की अच्छाई—नीकी] को सौ-सौ बार याद करते रहते हैं। जिस पापके कारण उन्होंने बालिको व्याधकी तरह मारा था, वैसी ही कुचाल फिर सुग्रीवने चली॥ ३॥

सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राजसभाँ रघुबीर बखाने॥

वही करनी विभीषणकी थी, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने स्वप्नमें भी उसका मनमें विचार नहीं किया। उलटे भरतजीसे मिलनेके समय श्रीरघुनाथजीने उनका सम्मान किया और राजसभामें भी उनके गुणोंका बखान किया॥ ४॥

दो०—प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥ २९ (क)॥

प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) तो वृक्षके नीचे और बंदर डालीपर (अर्थात् कहाँ मर्यादापुरुषोत्तम सच्चिदानन्दघन परमात्मा श्रीरामजी और कहाँ पेड़ोंकी शाखाओंपर कूदनेवाले बंदर)। परन्तु ऐसे बंदरोंको भी उन्होंने अपने समान बना लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी-सरीखे शीलनिधान स्वामी कहीं भी नहीं हैं॥ २९ (क)॥

राम निकाईं रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक॥ २९ (ख)॥

हे श्रीरामजी! आपकी अच्छाईसे सभीका भला है (अर्थात् आपका कल्याणमय स्वभाव सभीका कल्याण करनेवाला है)। यदि यह बात सच है तो तुलसीदासका भी सदा कल्याण ही होगा॥ २९ (ख)॥

एहि बिधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ॥ २९ (ग)॥

इस प्रकार अपने गुण-दोषोंको कहकर और सबको फिर सिर नवाकर मैं श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन करता हूँ जिसके सुननेसे कलियुगके पाप नष्ट हो जाते हैं॥ २९ (ग)॥

जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी॥

मुनि याज्ञवल्क्यजीने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीको सुनायी थी, उसी संवादको मैं बखानकर कहूँगा; सब सज्जन सुखका अनुभव करते हुए उसे सुनें॥ १॥

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥

शिवजीने पहले इस सुहावने चरित्रको रचा, फिर कृपा करके पार्वतीजीको सुनाया। वही चरित्र शिवजीने काकभुशुण्डिजीको रामभक्त और अधिकारी पहचानकर दिया॥ २॥

तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरिलीला॥

उन काकभुशुण्डिजीसे फिर याज्ञवल्क्यजीने पाया और उन्होंने फिर उसे भरद्वाजजीको गाकर सुनाया। वे दोनों वक्ता और श्रोता (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज) समान शीलवाले और समदर्शी हैं और श्रीहरिकी लीलाको जानते हैं॥ ३॥

जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना॥
औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥

वे अपने ज्ञानसे तीनों कालोंकी बातोंको हथेलीपर रखे हुए आँवलेके समान (प्रत्यक्ष) जानते हैं। और भी जो सुजान (भगवान्‌की लीलाओंका रहस्य जाननेवाले) हरिभक्त हैं, वे इस चरित्रको नाना प्रकारसे कहते, सुनते और समझते हैं॥ ४॥

दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥ ३० (क)॥

फिर वही कथा मैंने वाराह-क्षेत्रमें अपने गुरुजीसे सुनी; परन्तु उस समय मैं लड़कपनके कारण बहुत बेसमझ था, इससे उसको उस प्रकार (अच्छी तरह) समझा नहीं॥ ३० (क)॥

श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥ ३० (ख)॥

श्रीरामजीकी गूढ़ कथाके वक्ता (कहनेवाले) और श्रोता (सुननेवाले) दोनों ज्ञानके खजाने (पूरे ज्ञानी) होते हैं। मैं कलियुगके पापोंसे ग्रसा हुआ महामूढ़ जड़ जीव भला उसको कैसे समझ सकता था?॥ ३० (ख)॥

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

तो भी गुरुजीने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धिके अनुसार कुछ समझमें आयी। वही अब मेरेद्वारा भाषामें रची जायगी, जिससे मेरे मनको सन्तोष हो॥ १॥

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

जैसा कुछ मुझमें बुद्धि और विवेकका बल है, मैं हृदयमें हरिकी प्रेरणासे उसीके अनुसार कहूँगा। मैं अपने सन्देह, अज्ञान और भ्रमको हरनेवाली कथा रचता हूँ, जो संसाररूपी नदीके पार करनेके लिये नाव है॥ २॥

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥

रामकथा पण्डितोंको विश्राम देनेवाली, सब मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाली और कलियुगके पापोंका नाश करनेवाली है। रामकथा कलियुगरूपी साँपके लिये मोरनी है और विवेकरूपी अग्निके प्रकट करनेके लिये अरणि (मन्थन की जानेवाली लकड़ी) है, (अर्थात् इस कथासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है)॥ ३॥

रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि॥

रामकथा कलियुगमें सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु गौ है और सज्जनोंके लिये सुन्दर सञ्जीवनी जड़ी है। पृथ्वीपर यही अमृतकी नदी है, जन्म-मरणरूपी भयका नाश करनेवाली और भ्रमरूपी मेढकोंको खानेके लिये सर्पिणी है ॥ ४ ॥

असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी॥

यह रामकथा असुरोंकी सेनाके समान नरकोंका नाश करनेवाली और साधुरूप देवताओंके कुलका हित करनेवाली पार्वती (दुर्गा) है। यह संत-समाजरूपी क्षीरसमुद्रके लिये लक्ष्मीजीके समान है और सम्पूर्ण विश्वका भार उठानेमें अचल पृथ्वीके समान है ॥ ५ ॥

जम गन मुहँ मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी॥

यमदूतोंके मुखपर कालिख लगानेके लिये यह जगत्‌में यमुनाजीके समान है और जीवोंको मुक्ति देनेके लिये मानो काशी ही है। यह श्रीरामजीको पवित्र तुलसीके समान प्रिय है और तुलसीदासके लिये हुलसी (तुलसीदासजीकी माता) के समान हृदयसे हित करनेवाली है ॥ ६ ॥

सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥

यह रामकथा शिवजीको नर्मदाजीके समान प्यारी है, यह सब सिद्धियोंकी तथा सुख-सम्पत्तिकी राशि है। सद्‌गुणरूपी देवताओंके उत्पन्न और पालन-पोषण करनेके लिये माता अदितिके समान है। श्रीरघुनाथजीकी भक्ति और प्रेमकी परम सीमा-सी है ॥ ७ ॥

दो०— रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥ ३१॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामकथा मन्दाकिनी नदी है, सुन्दर (निर्मल) चित्त चित्रकूट है, और सुन्दर स्नेह ही वन है, जिसमें श्रीसीतारामजी विहार करते हैं॥ ३१ ॥

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुन्दर चिन्तामणि है और संतोंकी सुबुद्धिरूपी स्त्रीका सुन्दर शृङ्गार है। श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूह जगत्‌का कल्याण करनेवाले और मुक्ति, धन, धर्म और परमधामके देनेवाले हैं॥ १ ॥

सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥

ज्ञान, वैराग्य और योगके लिये सद्‌गुरु हैं और संसाररूपी भयंकर रोगका नाश करनेके लिये देवताओंके वैद्य (अश्विनीकुमार) के समान हैं। ये श्रीसीतारामजीके प्रेमके

उत्पन्न करनेके लिये माता-पिता हैं और सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमोंके बीज हैं॥ २॥

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥

पाप, सन्ताप और शोकका नाश करनेवाले तथा इस लोक और परलोकके प्रिय पालन करनेवाले हैं। विचार (ज्ञान) रूपी राजाके शूरवीर मन्त्री और लोभरूपी अपार समुद्रके सोखनेके लिये अगस्त्य मुनि हैं॥ ३॥

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

भक्तोंके मनरूपी वनमें बसनेवाले काम, क्रोध और कलियुगके पापरूपी हाथियोंके मारनेके लिये सिंहके बच्चे हैं। शिवजीके पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं और दरिद्रतारूपी दावानलके बुझानेके लिये कामना पूर्ण करनेवाले मेघ हैं॥ ४॥

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥

विषयरूपी साँपका जहर उतारनेके लिये मन्त्र और महामणि हैं। ये ललाटपर लिखे हुए कठिनतासे मिटनेवाले बुरे लेखों (मन्द प्रारब्ध) को मिटा देनेवाले हैं। अज्ञानरूपी अन्धकारके हरण करनेके लिये सूर्यकिरणोंके समान और सेवकरूपी धानके पालन करनेमें मेघके समान हैं॥ ५॥

अभिमत दानि देवतरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से॥
सुकबि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से॥

मनोवाञ्छित वस्तु देनेमें श्रेष्ठ कल्पवृक्षके समान हैं और सेवा करनेमें हरि-हरके समान सुलभ और सुख देनेवाले हैं। सुकविरूपी शरद्-ऋतुके मनरूपी आकाशको सुशोभित करनेके लिये तारागणके समान और श्रीरामजीके भक्तोंके तो जीवनधन ही हैं॥ ६॥

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से॥

सम्पूर्ण पुण्योंके फल महान् भोगोंके समान हैं। जगत्का छलरहित (यथार्थ) हित करनेमें साधु-संतोंके समान हैं। सेवकोंके मनरूपी मानसरोवरके लिये हंसके समान और पवित्र करनेमें गङ्गाजीकी तरंगमालाओंके समान हैं॥ ७॥

दो०— कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥ ३२ (क)॥

श्रीरामजीके गुणोंके समूह कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल और कलियुगके कपट, दम्भ और पाखण्डके जलानेके लिये वैसे ही हैं जैसे ईंधनके लिये प्रचण्ड अग्नि॥ ३२ (क)॥

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु॥ ३२ (ख)॥

रामचरित्र पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणोंके समान सभीको सुख देनेवाले हैं, परन्तु सज्जनरूपी कुमुदिनी और चकोरके चित्तके लिये तो विशेष हितकारी और महान् लाभदायक हैं॥ ३२ (ख)॥

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥

जिस प्रकार श्रीपार्वतीजीने श्रीशिवजीसे प्रश्न किया और जिस प्रकारसे श्रीशिवजीने विस्तारसे उसका उत्तर कहा, वह सब कारण मैं विचित्र कथाकी रचना करके गाकर कहूँगा॥ १॥

जेहिं यह कथा सुनी नेहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥

जिसने यह कथा पहले न सुनी हो, वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे। जो ज्ञानी इस विचित्र कथाको सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि संसारमें रामकथाकी कोई सीमा नहीं है (रामकथा अनन्त है)। उनके मनमें ऐसा विश्वास रहता है। नाना प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीके अवतार हुए हैं और सौ करोड़ तथा अपार रामायण हैं॥ २-३॥

कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥

कल्पभेदके अनुसार श्रीहरिके सुन्दर चरित्रोंको मुनीश्वरोंने अनेकों प्रकारसे गाया है। हृदयमें ऐसा विचारकर संदेह न कीजिये और आदरसहित प्रेमसे इस कथाको सुनिये॥ ४॥

दो०— राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥ ३३॥

श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओंका विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके विचार निर्मल हैं, वे इस कथाको सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे॥ ३३॥

एहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी॥
पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी॥

इस प्रकार सब संदेहोंको दूर करके और श्रीगुरुजीके चरणकमलोंकी रजको सिरपर धारण करके मैं पुनः हाथ जोड़कर सबकी विनती करता हूँ, जिससे कथाकी रचनामें कोई दोष स्पर्श न करने पावे॥ १॥

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउँ बिसद राम गुन गाथा॥
संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥

अब मैं आदरपूर्वक श्रीशिवजीको सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी निर्मल कथा कहता हूँ। श्रीहरिके चरणोंपर सिर रखकर संवत् १६३१ में इस कथाका आरम्भ करता हूँ॥ २॥

नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

चैत्र मासकी नवमी तिथि मंगलवारको श्रीअयोध्याजीमें यह चरित्र प्रकाशित हुआ। जिस दिन श्रीरामजीका जन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ (श्रीअयोध्याजीमें) चले आते हैं॥ ३॥

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥

असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्याजीमें आकर श्रीरघुनाथजीकी सेवा करते हैं। बुद्धिमान् लोग जन्मका महोत्सव मनाते हैं और श्रीरामजीकी सुन्दर कीर्तिका गान करते हैं॥ ४॥

दो०— मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥ ३४॥

सज्जनोंके बहुत-से समूह उस दिन श्रीसरयूजीके पवित्र जलमें स्नान करते हैं और हृदयमें सुन्दर श्यामशरीर श्रीरघुनाथजीका ध्यान करके उनके नामका जप करते हैं॥ ३४॥

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमल मति॥

वेद-पुराण कहते हैं कि श्रीसरयूजीका दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापोंको हरता है। यह नदी बड़ी ही पवित्र है, इसकी महिमा अनन्त है, जिसे विमल बुद्धिवाली सरस्वतीजी भी नहीं कह सकतीं॥ १॥

राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा॥

यह शोभायमान अयोध्यापुरी श्रीरामचन्द्रजीके परमधामकी देनेवाली है, सब लोकोंमें प्रसिद्ध है और अत्यन्त पवित्र है। जगत्‌में [अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज] चार खानि (प्रकार) के अनन्त जीव हैं, इनमेंसे जो कोई भी अयोध्याजीमें शरीर छोड़ते हैं वे फिर संसारमें नहीं आते (जन्म-मृत्युके चक्करसे छूटकर भगवान्‌के परमधाममें निवास करते हैं)॥ २॥

सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

इस अयोध्यापुरीको सब प्रकारसे मनोहर, सब सिद्धियोंकी देनेवाली और कल्याणकी खान समझकर मैंने इस निर्मल कथाका आरम्भ किया, जिसके सुननेसे

काम, मद और दम्भ नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥

इसका नाम रामचरितमानस है, जिसके कानोंसे सुनते ही शान्ति मिलती है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानलमें जल रहा है, वह यदि इस रामचरितमानसरूपी सरोवरमें आ पड़े तो सुखी हो जाय ॥ ४ ॥

रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥

यह रामचरितमानस मुनियोंका प्रिय है, इस सुहावने और पवित्र मानसकी शिवजीने रचना की। यह तीनों प्रकारके दोषों, दुःखों और दरिद्रताको तथा कलियुगकी कुचालों और सब पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ५ ॥

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥

श्रीमहादेवजीने इसको रचकर अपने मनमें रखा था और सुअवसर पाकर पार्वतीजीसे कहा। इसीसे शिवजीने इसको अपने हृदयमें देखकर और प्रसन्न होकर इसका सुन्दर 'रामचरितमानस' नाम रखा ॥ ६ ॥

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

मैं उसी सुख देनेवाली सुहावनी रामकथाको कहता हूँ, हे सज्जनो! आदरपूर्वक मन लगाकर इसे सुनिये ॥ ७ ॥

दो०— **जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।**
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु॥ ३५ ॥

यह रामचरितमानस जैसा है, जिस प्रकार बना है और जिस हेतुसे जगत्‌में इसका प्रचार हुआ, अब वही सब कथा मैं श्रीउमा-महेश्वरका स्मरण करके कहता हूँ ॥ ३५ ॥

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

श्रीशिवजीकी कृपासे उसके हृदयमें सुन्दर बुद्धिका विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास श्रीरामचरितमानसका कवि हुआ। अपनी बुद्धिके अनुसार तो वह इसे मनोहर ही बनाता है। किंतु फिर भी हे सज्जनो! सुन्दर चित्तसे सुनकर इसे आप सुधार लीजिये ॥ १ ॥

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

सुन्दर (सात्त्विकी) बुद्धि भूमि है, हृदय ही उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण

समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं। वे (साधुरूपी मेघ) श्रीरामजीके सुयशरूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर और मङ्गलकारी जलकी वर्षा करते हैं॥ २॥

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥

सगुण लीलाका जो विस्तारसे वर्णन करते हैं, वही राम-सुयशरूपी जलकी निर्मलता है, जो मलका नाश करती है; और जिस प्रेमाभक्तिका वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जलकी मधुरता और सुन्दर शीतलता है॥ ३॥

सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

वह (राम-सुयशरूपी) जल सत्कर्मरूपी धानके लिये हितकर है और श्रीरामजीके भक्तोंका तो जीवन ही है। वह पवित्र जल बुद्धिरूपी पृथ्वीपर गिरा और सिमटकर सुहावने कानरूपी मार्गसे चला और मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थानमें भरकर वहीं स्थिर हो गया। वही पुराना होकर सुन्दर, रुचिकर, शीतल और सुखदायी हो गया॥ ४-५॥

दो०— सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥ ३६॥

इस कथामें बुद्धिसे विचारकर जो चार अत्यन्त सुन्दर और उत्तम संवाद (भुशुण्डि-गरुड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास और संत) रचे हैं, वही इस पवित्र और सुन्दर सरोवरके चार मनोहर घाट हैं॥ ३६॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥

सात काण्ड ही इस मानस-सरोवरकी सुन्दर सात सीढ़ियाँ हैं, जिनको ज्ञानरूपी नेत्रोंसे देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। श्रीरघुनाथजीकी निर्गुण (प्राकृतिक गुणोंसे अतीत) और निर्बाध (एकरस) महिमाका जो वर्णन किया जायगा, वही इस सुन्दर जलकी अथाह गहराई है॥ १॥

राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीका यश अमृतके समान जल है। इसमें जो उपमाएँ दी गयी हैं वही तरंगोंका मनोहर विलास है। सुन्दर चौपाइयाँ ही इसमें घनी फैली हुई पुरइन (कमलिनी) हैं और कविताकी युक्तियाँ सुन्दर मणि (मोती) उत्पन्न करनेवाली सुहावनी सीपियाँ हैं॥ २॥

छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥

जो सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे हैं, वही इसमें बहुरंगे कमलोंके समूह सुशोभित हैं। अनुपम अर्थ, ऊँचे भाव और सुन्दर भाषा ही पराग (पुष्परज), मकरन्द(पुष्परस) और सुगन्ध हैं॥ ३॥

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥

सत्कर्मों (पुण्यों) के पुञ्ज भौंरोंकी सुन्दर पंक्तियाँ हैं, ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं। कविताकी ध्वनि वक्रोक्ति, गुण और जाति ही अनेकों प्रकारकी मनोहर मछलियाँ हैं॥ ४॥

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारों, ज्ञान-विज्ञानका विचारके कहना, काव्यके नौ रस, जप, तप, योग और वैराग्यके प्रसंग—ये सब इस सरोवरके सुन्दर जलचर जीव हैं॥ ५॥

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥

सुकृती (पुण्यात्मा) जनोंके, साधुओंके और श्रीरामनामके गुणोंका गान ही विचित्र जल-पक्षियोंके समान है। संतोंकी सभा ही इस सरोवरके चारों ओरकी अमराई (आमकी बगीचियाँ) हैं और श्रद्धा वसन्त ऋतुके समान कही गयी है॥ ६॥

भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥

नाना प्रकारसे भक्तिका निरूपण और क्षमा, दया तथा दम (इन्द्रियनिग्रह) लताओंके मण्डप हैं। मनका निग्रह, यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और श्रीहरिके चरणोंमें प्रेम ही इस ज्ञानरूपी फलका रस है। ऐसा वेदोंने कहा है॥ ७॥

औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥

इस (रामचरितमानस) में और भी जो अनेक प्रसंगोंकी कथाएँ हैं, वे ही इसमें तोते, कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी हैं॥ ८॥

दो०— **पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।**
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥ ३७॥

कथामें जो रोमाञ्च होता है वही वाटिका, बाग और वन हैं; और जो सुख

होता है, वही सुन्दर पक्षियोंका विहार है। निर्मल मन ही माली है जो प्रेमरूपी जलसे सुन्दर नेत्रोंद्वारा उनको सींचता है ॥ ३७ ॥

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥

जो लोग इस चरित्रको सावधानीसे गाते हैं, वे ही इस तालाबके चतुर रखवाले हैं और जो स्त्री-पुरुष सदा आदरपूर्वक इसे सुनते हैं, वे ही इस सुन्दर मानसके अधिकारी उत्तम देवता हैं॥ १ ॥

अति खल जे बिषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥

जो अति दुष्ट और विषयी हैं वे अभागे बगुले और कौवे हैं, जो इस सरोवरके समीप नहीं जाते। क्योंकि यहाँ (इस मानस-सरोवरमें) घोंघे, मेढक और सेवारके समान विषय-रसकी नाना कथाएँ नहीं हैं॥ २ ॥

तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥

इसी कारण बेचारे कौवे और बगुलेरूपी विषयी लोग यहाँ आते हुए हृदयमें हार मान जाते हैं। क्योंकि इस सरोवरतक आनेमें कठिनाइयाँ बहुत हैं। श्रीरामजीकी कृपा बिना यहाँ नहीं आया जाता॥ ३ ॥

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥

घोर कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है; उन कुसंगियोंके वचन ही बाघ, सिंह और साँप हैं। घरके काम-काज और गृहस्थीके भाँति-भाँतिके जंजाल ही अत्यन्त दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं॥ ४ ॥

बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥

मोह, मद और मान ही बहुत-से बीहड़ वन हैं और नाना प्रकारके कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं॥ ५ ॥

दो०— जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥ ३८ ॥

जिनके पास श्रद्धारूपी राह-खर्च नहीं है और संतोंका साथ नहीं है और जिनको श्रीरघुनाथजी प्रिय नहीं हैं, उनके लिये यह मानस अत्यन्त ही अगम है। (अर्थात् श्रद्धा, सत्संग और भगवत्प्रेमके बिना कोई इसको नहीं पा सकता) ॥ ३८ ॥

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नीद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥

यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँतक पहुँच भी जाय, तो वहाँ जाते ही उसे नींदरूपी जूड़ी आ जाती है। हृदयमें मूर्खतारूपी बड़ा कड़ा जाड़ा लगने लगता है, जिससे वहाँ जाकर भी वह अभागा स्नान नहीं कर पाता॥ १॥

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥

उससे उस सरोवरमें स्नान और उसका जलपान तो किया नहीं जाता, वह अभिमानसहित लौट आता है। फिर यदि कोई उससे [वहाँका हाल] पूछने आता है, तो वह [अपने अभाग्यकी बात न कहकर] सरोवरकी निन्दा करके उसे समझाता है॥ २॥

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥

ये सारे विघ्न उसको नहीं व्यापते (बाधा नहीं देते) जिसे श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर कृपाकी दृष्टिसे देखते हैं। वही आदरपूर्वक इस सरोवरमें स्नान करता है और महान् भयानक त्रितापसे (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तापोंसे) नहीं जलता॥ ३॥

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह कें राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥

जिनके मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सुन्दर प्रेम है, वे इस सरोवरको कभी नहीं छोड़ते। हे भाई! जो इस सरोवरमें स्नान करना चाहे वह मन लगाकर सत्संग करे॥ ४॥

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥

ऐसे मानस-सरोवरको हृदयके नेत्रोंसे देखकर और उसमें गोता लगाकर कविकी बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदयमें आनन्द और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनन्दका प्रवाह उमड़ आया॥ ५॥

चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥

उससे वह सुन्दर कवितारूपी नदी बह निकली, जिसमें श्रीरामजीका निर्मल यशरूपी जल भरा है। इस (कवितारूपिणी नदी) का नाम सरयू है, जो सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलोंकी जड़ है। लोकमत और वेदमत इसके दो सुन्दर किनारे हैं॥ ६॥

नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥

यह सुन्दर मानस-सरोवरकी कन्या सरयू नदी बड़ी पवित्र है और कलियुगके [छोटे-बड़े] पापरूपी तिनकों और वृक्षोंको जड़से उखाड़ फेंकनेवाली है॥ ७॥

दो०— श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥ ३९॥

तीनों प्रकारके श्रोताओंका समाज ही इस नदीके दोनों किनारोंपर बसे हुए पुरवे, गाँव और नगर हैं; और संतोंकी सभा ही सब सुन्दर मङ्गलोंकी जड़ अनुपम अयोध्याजी है॥ ३९॥

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥

सुन्दर कीर्तिरूपी सुहावनी सरयूजी रामभक्तिरूपी गङ्गाजीमें जा मिलीं। छोटे भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामजीके युद्धका पवित्र यशरूपी सुहावना महानद सोन उसमें आ मिला॥ १॥

जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥

दोनोंके बीचमें भक्तिरूपी गङ्गाजीकी धारा ज्ञान और वैराग्यके सहित शोभित हो रही है। ऐसी तीनों तापोंको डरानेवाली यह तिमुहानी नदी रामस्वरूपरूपी समुद्रकी ओर जा रही है॥ २॥

मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥

इस (कीर्तिरूपी सरयू) का मूल मानस (श्रीरामचरित) है और यह [रामभक्तिरूपी] गङ्गाजीमें मिली है, इसलिये यह सुननेवाले सज्जनोंके मनको पवित्र कर देगी। इसके बीच-बीचमें जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी विचित्र कथाएँ हैं वे ही मानो नदीतटके आस-पासके वन और बाग हैं॥ ३॥

उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भवँर तरंग मनोहरताई॥

श्रीपार्वतीजी और शिवजीके विवाहके बराती इस नदीमें बहुत प्रकारके असंख्य जलचर जीव हैं। श्रीरघुनाथजीके जन्मकी आनन्द-बधाइयाँ ही इस नदीके भँवर और तरंगोंकी मनोहरता है॥ ४॥

दो०— बालचरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥ ४०॥

चारों भाइयोंके जो बालचरित हैं, वे ही इसमें खिले हुए रंग-बिरंगे बहुत-से कमल हैं। महाराज श्रीदशरथजी तथा उनकी रानियों और कुटुम्बियोंके सत्कर्म (पुण्य) ही भ्रमर और जल-पक्षी हैं॥ ४०॥

सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥

श्रीसीताजीके स्वयंवरकी जो सुन्दर कथा है, वही इस नदीमें सुहावनी छबि छा रही है। अनेकों सुन्दर विचारपूर्ण प्रश्न ही इस नदीकी नावें हैं और उनके विवेकयुक्त उत्तर ही चतुर केवट हैं॥ १॥

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥

इस कथाको सुनकर पीछे जो आपसमें चर्चा होती है, वही इस नदीके सहारे-सहारे चलनेवाले यात्रियोंका समाज शोभा पा रहा है। परशुरामजीका क्रोध इस नदीकी भयानक धारा है और श्रीरामचन्द्रजीके श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बँधे हुए घाट हैं॥ २॥

सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥

भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका उत्साह ही इस कथा-नदीकी कल्याणकारिणी बाढ़ है, जो सभीको सुख देनेवाली है। इसके कहने-सुननेमें जो हर्षित और पुलकित होते हैं, वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं, जो प्रसन्न मनसे इस नदीमें नहाते हैं॥ ३॥

राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलकके लिये जो मङ्गल-साज सजाया गया, वही मानो पर्वके समय इस नदीपर यात्रियोंके समूह इकट्ठे हुए हैं। कैकेयीकी कुबुद्धि ही इस नदीमें काई है, जिसके फलस्वरूप बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी॥ ४॥

दो०— समन अमित उतपात सब भरत चरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग॥ ४१॥

सम्पूर्ण अनगिनत उत्पातोंको शान्त करनेवाला भरतजीका चरित्र नदी-तटपर किया जानेवाला जपयज्ञ है। कलियुगके पापों और दुष्टोंके अवगुणोंके जो वर्णन हैं वे ही इस नदीके जलका कीचड़ और बगुले-कौए हैं॥ ४१॥

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥

यह कीर्तिरूपिणी नदी छहों ऋतुओंमें सुन्दर है। सभी समय यह परम सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। इसमें शिव-पार्वतीका विवाह हेमन्त-ऋतु है। श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उत्सव सुखदायी शिशिर-ऋतु है॥ १॥

बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बनगवनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥

श्रीरामचन्द्रजीके विवाह-समाजका वर्णन ही आनन्द-मङ्गलमय ऋतुराज वसंत है। श्रीरामजीका वनगमन दुःसह ग्रीष्म-ऋतु है और मार्गकी कथा ही कड़ी धूप और लू है॥ २॥

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥

राक्षसोंके साथ घोर युद्ध ही वर्षा-ऋतु है, जो देवकुलरूपी धानके लिये सुन्दर कल्याण करनेवाली है। रामचन्द्रजीके राज्यकालका जो सुख, विनम्रता और बड़ाई

है वही निर्मल सुख देनेवाली सुहावनी शरद्-ऋतु है॥ ३॥

सती सिरोमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

सती-शिरोमणि श्रीसीताजीके गुणोंकी जो कथा है, वही इस जलका निर्मल और अनुपम गुण है। श्रीभरतजीका स्वभाव इस नदीकी सुन्दर शीतलता है, जो सदा एक-सी रहती है और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ४॥

दो०— अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास॥ ४२॥

चारों भाइयोंका परस्पर देखना, बोलना, मिलना, एक-दूसरेसे प्रेम करना, हँसना और सुन्दर भाईपना इस जलकी मधुरता और सुगन्ध हैं॥ ४२॥

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी॥

मेरा आर्तभाव, विनय और दीनता इस सुन्दर और निर्मल जलका कम हलकापन नहीं है (अर्थात् अत्यन्त हलकापन है)। यह जल बड़ा ही अनोखा है, जो सुननेसे ही गुण करता है और आशारूपी प्यासको और मनके मैलको दूर कर देता है॥ १॥

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

यह जल श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर प्रेमको पुष्ट करता है, कलियुगके समस्त पापों और उनसे होनेवाली ग्लानिको हर लेता है। संसारके (जन्म-मृत्युरूप) श्रमको सोख लेता है, सन्तोषको भी सन्तुष्ट करता है और पाप, ताप, दरिद्रता और दोषोंको नष्ट कर देता है॥ २॥

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥

यह जल काम, क्रोध, मद और मोहका नाश करनेवाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्यका बढ़ानेवाला है। इसमें आदरपूर्वक स्नान करनेसे और इसे पीनेसे हृदयमें रहनेवाले सब पाप-ताप मिट जाते हैं॥ ३॥

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

जिन्होंने इस (राम-सुयशरूपी) जलसे अपने हृदयको नहीं धोया, वे कायर कलिकालके द्वारा ठगे गये। जैसे प्यासा हिरन सूर्यकी किरणोंके रेतपर पड़नेसे उत्पन्न हुए जलके भ्रमको वास्तविक जल समझकर पीनेको दौड़ता है और जल न पाकर दुःखी होता है, वैसे ही वे (कलियुगसे ठगे हुए) जीव भी [विषयोंके पीछे भटककर] दुःखी होंगे॥ ४॥

दो०— मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ॥ ४३ (क)॥

अपनी बुद्धिके अनुसार इस सुन्दर जलके गुणोंको विचारकर, उसमें अपने मनको स्नान कराकर और श्रीभवानी-शङ्करको स्मरण करके कवि (तुलसीदास) सुन्दर कथा कहता है॥ ४३ (क)॥

अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद॥ ४३ (ख)॥

मैं अब श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको हृदयमें धारणकर और उनका प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियोंके मिलनका सुन्दर संवाद वर्णन करता हूँ॥ ४३ (ख)॥

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना॥

भरद्वाज मुनि प्रयागमें बसते हैं, उनका श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है। वे तपस्वी, निगृहीतचित्त, जितेन्द्रिय, दयाके निधान और परमार्थके मार्गमें बड़े ही चतुर हैं॥ १॥

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥

माघमें जब सूर्य मकर राशिपर जाते हैं तब सब लोग तीर्थराज प्रयागको आते हैं। देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्योंके समूह सब आदरपूर्वक त्रिवेणीमें स्नान करते हैं॥ २॥

पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥

श्रीवेणीमाधवजीके चरणकमलोंको पूजते हैं और अक्षयवटका स्पर्शकर उनके शरीर पुलकित होते हैं। भरद्वाजजीका आश्रम बहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियोंके मनको भानेवाला है॥ ३॥

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुन गाहा॥

तीर्थराज प्रयागमें जो स्नान करने जाते हैं उन ऋषि-मुनियोंका समाज वहाँ (भरद्वाजके आश्रममें) जुटता है। प्रात:काल सब उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान्‌के गुणोंकी कथाएँ कहते हैं॥ ४॥

दो०— ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥ ४४॥

ब्रह्मका निरूपण, धर्मका विधान और तत्त्वोंके विभागका वर्णन करते हैं तथा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त भगवान्‌की भक्तिका कथन करते हैं॥ ४४॥

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा॥

इसी प्रकार माघके महीनेभर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमोंको चले जाते हैं। हर साल वहाँ इसी तरह बड़ा आनन्द होता है। मकरमें स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं॥ १॥

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥

एक बार पूरे मकरभर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने-अपने आश्रमोंको लौट गये। परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनिको चरण पकड़कर भरद्वाजजीने रख लिया॥ २॥

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥

आदरपूर्वक उनके चरणकमल धोये और बड़े ही पवित्र आसनपर उन्हें बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्यजीके सुयशका वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र और कोमल वाणीसे बोले— ॥ ३॥

नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्त्व सबु तोरें॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

हे नाथ! मेरे मनमें एक बड़ा सन्देह है; वेदोंका तत्त्व सब आपकी मुट्ठीमें है (अर्थात् आप ही वेदका तत्त्व जाननेवाले होनेके कारण मेरा सन्देह निवारण कर सकते हैं) पर उस सन्देहको कहते मुझे भय और लाज आती है [भय इसलिये कि कहीं आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है, लाज इसलिये कि इतनी आयु बीत गयी, अबतक ज्ञान न हुआ] और यदि नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है [क्योंकि अज्ञानी बना रहता हूँ]॥ ४॥

दो०— संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव॥ ४५॥

हे प्रभो! संतलोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरुके साथ छिपाव करनेसे हृदयमें निर्मल ज्ञान नहीं होता॥ ४५॥

अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥

यही सोचकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करता हूँ। हे नाथ! सेवकपर कृपा करके इस अज्ञानका नाश कीजिये। संतों, पुराणों और उपनिषदोंने रामनामके असीम प्रभावका गान किया है॥ १॥

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥

कल्याणस्वरूप, ज्ञान और गुणोंकी राशि, अविनाशी भगवान् शम्भु निरन्तर रामनामका जप करते रहते हैं। संसारमें चार जातिके जीव हैं, काशीमें मरनेसे सभी परमपदको प्राप्त करते हैं॥ २॥

सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥

हे मुनिराज! वह भी राम [नाम] की ही महिमा है, क्योंकि शिवजी महाराज दया करके [काशीमें मरनेवाले जीवको] रामनामका ही उपदेश करते हैं [इसीसे उनको परमपद मिलता है]। हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं? हे कृपानिधान! मुझे समझाकर कहिये॥ ३॥

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥

एक राम तो अवधनरेश दशरथजीके कुमार हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है। उन्होंने स्त्रीके विरहमें अपार दुःख उठाया और क्रोध आनेपर युद्धमें रावणको मार डाला॥ ४॥

दो०— प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥ ४६॥

हे प्रभो! वही राम हैं या और कोई दूसरे हैं, जिनको शिवजी जपते हैं? आप सत्यके धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, ज्ञान विचारकर कहिये॥ ४६॥

जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥

हे नाथ! जिस प्रकारसे मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय, आप वही कथा विस्तारपूर्वक कहिये। इसपर याज्ञवल्क्यजी मुसकराकर बोले, श्रीरघुनाथजीकी प्रभुताको तुम जानते हो॥ १॥

रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥

तुम मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके भक्त हो। तुम्हारी चतुराईको मैं जान गया। तुम श्रीरामजीके रहस्यमय गुणोंको सुनना चाहते हो; इसीसे तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो बड़े ही मूढ़ हो॥ २॥

तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥

हे तात! तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो; मैं श्रीरामजीकी सुन्दर कथा कहता हूँ। बड़ा भारी अज्ञान विशाल महिषासुर है और श्रीरामजीकी कथा [उसे नष्ट कर देनेवाली] भयंकर कालीजी हैं॥ ३॥

रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥

श्रीरामजीकी कथा चन्द्रमाकी किरणोंके समान है, जिसे संतरूपी चकोर सदा पान करते हैं। ऐसा ही सन्देह पार्वतीजीने किया था, तब महादेवजीने विस्तारसे उसका उत्तर दिया था॥ ४॥

दो०— कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥ ४७॥

अब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वही उमा और शिवजीका संवाद कहता हूँ। वह जिस समय और जिस हेतुसे हुआ, उसे हे मुनि! तुम सुनो, तुम्हारा विषाद मिट जायगा॥ ४७॥

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥

एक बार त्रेतायुगमें शिवजी अगस्त्य ऋषिके पास गये। उनके साथ जगज्जननी भवानी सतीजी भी थीं। ऋषिने सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया॥ १॥

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥

मुनिवर अगस्त्यजीने रामकथा विस्तारसे कही, जिसको महेश्वरने परम सुख मानकर सुना। फिर ऋषिने शिवजीसे सुन्दर हरिभक्ति पूछी और शिवजीने उनको अधिकारी पाकर [रहस्यसहित] भक्तिका निरूपण किया॥ २॥

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥

श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनोंतक शिवजी वहाँ रहे। फिर मुनिसे विदा माँगकर शिवजी दक्षकुमारी सतीजीके साथ घर (कैलास) को चले॥ ३॥

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥

उन्हीं दिनों पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था। वे अविनाशी भगवान् उस समय पिताके वचनसे राज्यका त्याग करके तपस्वी या साधुवेशमें दण्डकवनमें विचर रहे थे॥ ४॥

दो०— हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ॥ ४८ (क)॥

शिवजी हृदयमें विचारते जा रहे थे कि भगवान्‌के दर्शन मुझे किस प्रकार हों। प्रभुने गुप्तरूपसे अवतार लिया है, मेरे जानेसे सब लोग जान जायँगे॥ ४८ (क)॥

सो०—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥ ४८ (ख)॥

श्रीशङ्करजीके हृदयमें इस बातको लेकर बड़ी खलबली उत्पन्न हो गयी, परन्तु सतीजी इस भेदको नहीं जानती थीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजीके मनमें [भेद खुलनेका] डर था, परन्तु दर्शनके लोभसे उनके नेत्र ललचा रहे थे॥ ४८ (ख)॥

रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥

रावणने [ब्रह्माजीसे] अपनी मृत्यु मनुष्यके हाथसे माँगी थी। ब्रह्माजीके वचनोंको प्रभु सत्य करना चाहते हैं। मैं जो पास नहीं जाता हूँ तो बड़ा पछतावा रह जायगा। इस प्रकार शिवजी विचार करते थे, परन्तु कोई भी युक्ति ठीक नहीं बैठती थी॥ १॥

एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा॥

इस प्रकार महादेवजी चिन्ताके वश हो गये। उसी समय नीच रावणने जाकर मारीचको साथ लिया और वह (मारीच) तुरंत कपटमृग बन गया॥ २॥

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥

मूर्ख (रावण)ने छल करके सीताजीको हर लिया। उसे श्रीरामचन्द्रजीके वास्तविक प्रभावका कुछ भी पता न था। मृगको मारकर भाई लक्ष्मणसहित श्रीहरि आश्रममें आये और उसे खाली देखकर (अर्थात् वहाँ सीताजीको न पाकर) उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये॥ ३॥

बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥

श्रीरघुनाथजी मनुष्योंकी भाँति विरहसे व्याकुल हैं और दोनों भाई वनमें सीताको खोजते हुए फिर रहे हैं। जिनके कभी कोई संयोग-वियोग नहीं है, उनमें प्रत्यक्ष विरहका दुःख देखा गया॥ ४॥

दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥ ४९॥

श्रीरघुनाथजीका चरित्र बड़ा ही विचित्र है, उसको पहुँचे हुए ज्ञानीजन ही जानते हैं। जो मन्दबुद्धि हैं, वे तो विशेषरूपसे मोहके वश होकर हृदयमें कुछ दूसरी ही बात समझ बैठते हैं॥ ४९॥

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥

श्रीशिवजीने उसी अवसरपर श्रीरामजीको देखा और उनके हृदयमें बहुत भारी आनन्द उत्पन्न हुआ। उन शोभाके समुद्र (श्रीरामचन्द्रजी) को शिवजीने नेत्र भरकर देखा, परन्तु अवसर ठीक न जानकर परिचय नहीं किया॥ १॥

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

जगत्‌के पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्दकी जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेवका नाश करनेवाले श्रीशिवजी चल पड़े। कृपानिधान शिवजी बार-बार आनन्दसे पुलकित होते हुए सतीजीके साथ चले जा रहे थे॥ २॥

सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥

सतीजीने शङ्करजीकी वह दशा देखी तो उनके मनमें बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया। [वे मन-ही-मन कहने लगीं कि] शङ्करजीकी सारा जगत् वन्दना करता है, वे जगत्‌के ईश्वर हैं; देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके प्रति सिर नवाते हैं॥ ३॥

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

उन्होंने एक राजपुत्रको सच्चिदानन्द परमधाम कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गये कि अबतक उनके हृदयमें प्रीति रोकनेसे भी नहीं रुकती॥ ४॥

दो०— ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥ ५०॥

जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदरहित है, और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है?॥ ५०॥

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥

देवताओंके हितके लिये मनुष्यशरीर धारण करनेवाले जो विष्णुभगवान् हैं, वे भी शिवजीकी ही भाँति सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञानके भण्डार, लक्ष्मीपति और असुरोंके शत्रु भगवान् विष्णु क्या अज्ञानीकी तरह स्त्रीको खोजेंगे?॥ १॥

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥

फिर शिवजीके वचन भी झूठे नहीं हो सकते। सब कोई जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं। सतीके मनमें इस प्रकारका अपार सन्देह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदयमें ज्ञानका प्रादुर्भाव नहीं होता था॥ २॥

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ॥

यद्यपि भवानीजीने प्रकट कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। वे बोले—हे सती! सुनो, तुम्हारा स्त्रीस्वभाव है। ऐसा सन्देह मनमें कभी न रखना चाहिये॥ ३॥

जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

जिनकी कथाका अगस्त्य ऋषिने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनिको सुनायी, वे वही मेरे इष्टदेव श्रीरघुवीरजी हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं॥ ४॥

छं०— मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

ज्ञानी मुनि, योगी और सिद्ध निरन्तर निर्मल चित्तसे जिनका ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापक, समस्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतन्त्र ब्रह्मरूप भगवान् श्रीरामजीने अपने भक्तोंके हितके लिये [अपनी इच्छासे] रघुकुलके मणिरूपमें अवतार लिया है।

सो०— लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥ ५१॥

यद्यपि शिवजीने बहुत बार समझाया, फिर भी सतीजीके हृदयमें उनका उपदेश नहीं बैठा, तब महादेवजी मनमें भगवान्‌की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले—॥ ५१॥

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥

जो तुम्हारे मनमें बहुत सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती? जबतक तुम मेरे पास लौट आओगी तबतक मैं इसी बड़की छाँहमें बैठा हूँ॥ १॥

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई॥

जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञानजनित भारी भ्रम दूर हो, [भलीभाँति] विवेकके द्वारा सोच-समझकर तुम वही करना। शिवजीकी आज्ञा पाकर सती चलीं और मनमें सोचने लगीं कि भाई! क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ)?॥ २॥

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥

इधर शिवजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि दक्षकन्या सतीका कल्याण नहीं है। जब मेरे समझानेसे भी सन्देह दूर नहीं होता तब [मालूम होता है] विधाता ही उलटे हैं, अब सतीका कुशल नहीं है ॥ ३ ॥

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥

जो कुछ रामने रच रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे। [मनमें] ऐसा कहकर शिवजी भगवान् श्रीहरिका नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गयीं जहाँ सुखके धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी थे॥ ४॥

दो०— पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप॥ ५२॥

सती बार-बार मनमें विचारकर सीताजीका रूप धारण करके उस मार्गकी ओर आगे होकर चलीं, जिससे [सतीजीके विचारानुसार] मनुष्योंके राजा रामचन्द्रजी आ रहे थे॥ ५२॥

लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥

सतीजीके बनावटी वेषको देखकर लक्ष्मणजी चकित हो गये और उनके हृदयमें बड़ा भ्रम हो गया। वे बहुत गम्भीर हो गये, कुछ कह नहीं सके। धीरबुद्धि लक्ष्मण प्रभु रघुनाथजीके प्रभावको जानते थे॥ १॥

सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना॥

सब कुछ देखनेवाले और सबके हृदयकी जाननेवाले देवताओंके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी सतीके कपटको जान गये; जिनके स्मरणमात्रसे अज्ञानका नाश हो जाता है, वही सर्वज्ञ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं॥ २॥

सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥

स्त्रीस्वभावका असर तो देखो कि वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान्‌के सामने) भी सतीजी छिपाव करना चाहती हैं। अपनी मायाके बलको हृदयमें बखानकर, श्रीरामचन्द्रजी हँसकर कोमल वाणीसे बोले॥ ३॥

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

पहले प्रभुने हाथ जोड़कर सतीको प्रणाम किया और पितासहित अपना नाम बताया। फिर कहा कि बृषकेतु शिवजी कहाँ हैं? आप यहाँ वनमें अकेली किसलिये फिर रही हैं?॥ ४॥

दो०— राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥ ५३॥

श्रीरामचन्द्रजीके कोमल और रहस्यभरे वचन सुनकर सतीजीको बड़ा संकोच हुआ। वे डरती हुई (चुपचाप) शिवजीके पास चलीं, उनके हृदयमें बड़ी चिन्ता हो गयी— ॥ ५३॥

मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥

—कि मैंने शङ्करजीका कहना न माना और अपने अज्ञानका श्रीरामचन्द्रजीपर आरोप किया। अब जाकर मैं शिवजीको क्या उत्तर दूँगी? [यों सोचते-सोचते] सतीजीके हृदयमें अत्यन्त भयानक जलन पैदा हो गयी॥ १॥

जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥

श्रीरामचन्द्रजीने जान लिया कि सतीजीको दुःख हुआ; तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके उन्हें दिखलाया। सतीजीने मार्गमें जाते हुए यह कौतुक देखा कि श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीसहित आगे चले जा रहे हैं। [इस अवसरपर सीताजीको इसलिये दिखाया कि सतीजी श्रीरामके सच्चिदानन्दमय रूपको देखें, वियोग और दुःखकी कल्पना जो उन्हें हुई थी वह दूर हो जाय तथा वे प्रकृतिस्थ हों]॥ २॥

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥

[तब उन्होंने] पीछेकी ओर फिरकर देखा, तो वहाँ भी भाई लक्ष्मणजी और सीताजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर वेषमें दिखायी दिये। वे जिधर देखती हैं, उधर ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं॥ ३॥

देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥

सतीजीने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे, जो एक-से-एक बढ़कर असीम प्रभाववाले थे। [उन्होंने देखा कि] भाँति-भाँतिके वेष धारण किये सभी देवता श्रीरामचन्द्रजीकी चरणवन्दना और सेवा कर रहे हैं॥ ४॥

दो०— सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप॥ ५४॥

उन्होंने अनगिनत अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखीं। जिस-जिस रूपमें ब्रह्मा आदि देवता थे, उसीके अनुकूल रूपमें [उनकी] ये सब [शक्तियाँ] भी थीं॥ ५४॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥

सतीजीने जहाँ-तहाँ जितने रघुनाथजी देखे, शक्तियोंसहित वहाँ उतने ही सारे देवताओंको भी देखा। संसारमें जो चराचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकारसे सब देखे॥ १॥

पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥

[उन्होंने देखा कि] अनेकों वेष धारण करके देवता प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा कर रहे हैं। परन्तु श्रीरामचन्द्रजीका दूसरा रूप कहीं नहीं देखा। सीतासहित श्रीरघुनाथजी बहुत-से देखे, परन्तु उनके वेष अनेक नहीं थे॥ २॥

सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भई सभीता॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं॥

[सब जगह] वही रघुनाथजी, वही लक्ष्मण और वही सीताजी—सती ऐसा देखकर बहुत ही डर गयीं। उनका हृदय काँपने लगा और देहकी सारी सुध-बुध जाती रही। वे आँख मूँदकर मार्गमें बैठ गयीं॥ ३॥

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥

फिर आँख खोलकर देखा, तो वहाँ दक्षकुमारी (सतीजी) को कुछ भी न दीख पड़ा। तब वे बार-बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाकर वहाँ चलीं जहाँ श्रीशिवजी थे॥ ४॥

दो०— गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात॥ ५५॥

जब पास पहुँचीं, तब श्रीशिवजीने हँसकर कुशल-प्रश्न करके कहा कि तुमने रामजीकी किस प्रकार परीक्षा ली, सारी बात सच-सच कहो॥ ५५॥

मासपारायण, दूसरा विश्राम

सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥

सतीजीने श्रीरघुनाथजीके प्रभावको समझकर डरके मारे शिवजीसे छिपाव किया और कहा—हे स्वामिन्! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, [वहाँ जाकर] आपकी ही तरह प्रणाम किया॥ १॥

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥

आपने जो कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मनमें यह बड़ा (पूरा) विश्वास है। तब शिवजीने ध्यान करके देखा और सतीजीने जो चरित्र किया था, सब जान लिया॥ २॥

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सतीके मुँहसे भी झूठ कहला दिया। सुजान शिवजीने मनमें विचार किया कि हरिकी इच्छारूपी भावी प्रबल है॥ ३॥

सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

सतीजीने सीताजीका वेष धारण किया, यह जानकर शिवजीके हृदयमें बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब सतीसे प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्ग लुप्त हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है॥ ४॥

दो०— परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु॥ ५६॥

सती परम पवित्र हैं, इसलिये इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है। प्रकट करके महादेवजी कुछ भी नहीं कहते, परन्तु उनके हृदयमें बड़ा सन्ताप है॥ ५६॥

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥

तब शिवजीने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया और श्रीरामजीका स्मरण करते ही उनके मनमें यह आया कि सतीके इस शरीरसे मेरी [पति-पत्नीरूपमें] भेंट नहीं हो सकती और शिवजीने अपने मनमें यह सङ्कल्प कर लिया॥ १॥

अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥

स्थिरबुद्धि शङ्करजी ऐसा विचारकर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए अपने घर (कैलास) को चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई कि हे महेश! आपकी जय हो। आपने भक्तिकी अच्छी दृढ़ता की॥ २॥

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥

आपको छोड़कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है? आप श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान् हैं। इस आकाशवाणीको सुनकर सतीजीके मनमें चिन्ता हुई और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजीसे पूछा—॥ ३॥

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥

हे कृपालु! कहिये, आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप सत्यके धाम और दीनदयालु हैं। यद्यपि सतीजीने बहुत प्रकारसे पूछा, परन्तु त्रिपुरारि शिवजीने कुछ न कहा॥ ४॥

दो०— सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य॥५७(क)॥

सतीजीने हृदयमें अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिवजी सब जान गये। मैंने शिवजीसे कपट किया, स्त्री स्वभावसे ही मूर्ख और बेसमझ होती हैं॥ ५७ (क)॥

सो०— जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥५७(ख)॥

प्रीतिकी सुन्दर रीति देखिये कि जल भी [दूधके साथ मिलकर] दूधके समान भाव बिकता है; परन्तु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद [प्रेम] जाता रहता है॥ ५७ (ख)॥

हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी॥
कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥

अपनी करनीको याद करके सतीजीके हृदयमें इतना सोच है और इतनी अपार चिन्ता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। [उन्होंने समझ लिया कि] शिवजी कृपाके परम अथाह सागर हैं, इससे प्रकटमें उन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा॥ १॥

संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई॥

शिवजीका रुख देखकर सतीजीने जान लिया कि स्वामीने मेरा त्याग कर दिया और वे हृदयमें व्याकुल हो उठीं। अपना पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय [भीतर-ही-भीतर] कुम्हारके आँवेके समान अत्यन्त जलने लगा॥ २॥

सतिहि ससोच जानि बृषकेतू। कहीं कथा सुंदर सुख हेतू॥
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥

वृषकेतु शिवजीने सतीको चिन्तायुक्त जानकर उन्हें सुख देनेके लिये सुन्दर कथाएँ कहीं। इस प्रकार मार्गमें विविध प्रकारके इतिहासोंको कहते हुए विश्वनाथ कैलास जा पहुँचे॥ ३॥

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥

वहाँ फिर शिवजी अपनी प्रतिज्ञाको याद करके बड़के पेड़के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। शिवजीने अपना स्वाभाविक रूप सँभाला। उनकी अखण्ड और अपार समाधि लग गयी॥ ४॥

दो०— सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं॥ ५८॥

तब सतीजी कैलासपर रहने लगीं। उनके मनमें बड़ा दुःख था। इस रहस्यको कोई कुछ भी नहीं जानता था। उनका एक-एक दिन युगके समान बीत रहा था॥ ५८॥

नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना॥

सतीजीके हृदयमें नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि मैं इस दुःख-समुद्रके पार कब जाऊँगी। मैंने जो श्रीरघुनाथजीका अपमान किया और फिर पतिके वचनोंको झूठ जाना— ॥ १॥

सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥

उसका फल विधाताने मुझको दिया, जो उचित था वही किया; परन्तु हे विधाता! अब तुझे यह उचित नहीं है जो शङ्करसे विमुख होनेपर भी मुझे जिला रहा है॥ २॥

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥

सतीजीके हृदयकी ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमती सतीजीने मनमें श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया और कहा—हे प्रभो! यदि आप दीनदयालु कहलाते हैं और वेदोंने आपका यह यश गाया है कि आप दुःखको हरनेवाले हैं, ॥ ३॥

तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥

तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाय। यदि मेरा शिवजीके चरणोंमें प्रेम है और मेरा यह [प्रेमका] व्रत मन, वचन और कर्म (आचरण) से सत्य है, ॥ ४॥

दो०— तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥ ५९॥

तो हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनिये और शीघ्र वह उपाय कीजिये जिससे मेरा मरण हो और बिना ही परिश्रम यह [पति-परित्यागरूपी] असह्य विपत्ति दूर हो जाय॥ ५९॥

एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥

दक्षसुता सतीजी इस प्रकार बहुत दुःखित थीं, उनको इतना दारुण दुःख था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्तासी हजार वर्ष बीत जानेपर अविनाशी शिवजीने समाधि खोली॥ १॥

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥

शिवजी रामनामका स्मरण करने लगे, तब सतीजीने जाना कि अब जगत्‌के स्वामी (शिवजी) जागे। उन्होंने जाकर शिवजीके चरणोंमें प्रणाम किया। शिवजीने उनको बैठनेके लिये सामने आसन दिया॥ २॥

लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥

शिवजी भगवान् हरिकी रसमयी कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति हुए। ब्रह्माजीने सब प्रकारसे योग्य देख-समझकर दक्षको प्रजापतियोंका नायक बना दिया॥ ३॥

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयँ तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

जब दक्षने इतना बड़ा अधिकार पाया तब उनके हृदयमें अत्यन्त अभिमान आ गया। जगत्में ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ जिसको प्रभुता पाकर मद न हो॥ ४॥

दो०— दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥ ६०॥

दक्षने सब मुनियोंको बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञका भाग पाते हैं, दक्षने उन सबको आदरसहित निमन्त्रित किया॥ ६०॥

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥

[दक्षका निमन्त्रण पाकर] किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित चले। विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीको छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले॥ १॥

सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥

सतीजीने देखा अनेकों प्रकारके सुन्दर विमान आकाशमें चले जा रहे हैं। देव-सुन्दरियाँ मधुर गान कर रही हैं, जिन्हें सुनकर मुनियोंका ध्यान छूट जाता है॥ २॥

पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥

सतीजीने [विमानोंमें देवताओंके जानेका कारण] पूछा, तब शिवजीने सब बातें बतलायीं। पिताके यज्ञकी बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कि यदि महादेवजी मुझे आज्ञा दें, तो इसी बहाने कुछ दिन पिताके घर जाकर रहूँ॥ ३॥

पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी॥
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥

क्योंकि उनके हृदयमें पतिद्वारा त्यागी जानेका बड़ा भारी दुःख था, पर अपना अपराध समझकर वे कुछ कहती न थीं। आखिर सतीजी भय, संकोच और प्रेमरसमें सनी हुई मनोहर वाणीसे बोलीं— ॥ ४ ॥

दो०— पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ॥ ६१ ॥

हे प्रभो! मेरे पिताके घर बहुत बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपाधाम! मैं आदरसहित उसे देखने जाऊँ॥ ६१ ॥

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं॥

शिवजीने कहा—तुमने बात तो अच्छी कही, यह मेरे मनको भी पसंद आयी। पर उन्होंने न्यौता नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्षने अपनी सब लड़कियोंको बुलाया है; किन्तु हमारे वैरके कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया॥ १ ॥

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥

एक बार ब्रह्माकी सभामें हमसे अप्रसन्न हो गये थे, उसीसे वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी! जो तुम बिना बुलाये जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी॥ २ ॥

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरुके घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जानेसे कल्याण नहीं होता॥ ३ ॥

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ॥

शिवजीने बहुत प्रकारसे समझाया, पर होनहारवश सतीके हृदयमें बोध नहीं हुआ। फिर शिवजीने कहा कि यदि बिना बुलाये जाओगी, तो हमारी समझमें अच्छी बात न होगी॥ ४ ॥

दो०— कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥ ६२ ॥

शिवजीने बहुत प्रकारसे कहकर देख लिया, किन्तु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकीं, तब त्रिपुरारि महादेवजीने अपने मुख्य गणोंको साथ देकर उनको विदा कर दिया॥ ६२ ॥

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥

भवानी जब पिता (दक्ष) के घर पहुँचीं, तब दक्षके डरके मारे किसीने उनकी आवभगत नहीं की, केवल एक माता भले ही आदरसे मिली। बहिनें बहुत मुसकराती हुई मिलीं॥ १॥

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा॥

दक्षने तो उनकी कुछ कुशलतक नहीं पूछी, सतीजीको देखकर उलटे उनके सारे अङ्ग जल उठे। तब सतीने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं शिवजीका भाग दिखायी नहीं दिया॥ २॥

तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥

तब शिवजीने जो कहा था वह उनकी समझमें आया। स्वामीका अपमान समझकर सतीका हृदय जल उठा। पिछला (पतिपरित्यागका) दुःख उनके हृदयमें उतना नहीं व्यापा था, जितना महान् दुःख इस समय (पति-अपमानके कारण) हुआ॥ ३॥

जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा॥

यद्यपि जगत्‌में अनेक प्रकारके दारुण दुःख हैं तथापि जाति-अपमान सबसे बढ़कर कठिन है। यह समझकर सतीजीको बड़ा क्रोध हो आया। माताने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया-बुझाया॥ ४॥

दो०— सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध॥ ६३॥

परन्तु उनसे शिवजीका अपमान सहा नहीं गया, इससे उनके हृदयमें कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ। तब वे सारी सभाको हठपूर्वक डाँटकर क्रोधभरे वचन बोलीं—॥ ६३॥

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ। भली भाँति पछिताब पिताहूँ॥

हे सभासदो और सब मुनीश्वरो! सुनो। जिन लोगोंने यहाँ शिवजीकी निन्दा की या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरंत ही मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भलीभाँति पछतायँगे॥ १॥

संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई॥

जहाँ संत, शिवजी और लक्ष्मीपति विष्णुभगवान्‌की निन्दा सुनी जाय वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निन्दा करनेवाले) की जीभ काट ले और नहीं तो कान मूँदकर वहाँसे भाग जाय॥ २॥

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥

त्रिपुर दैत्यको मारनेवाले भगवान् महेश्वर सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा हैं, वे जगत्पिता और सबका हित करनेवाले हैं। मेरा मन्दबुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है; और मेरा यह शरीर दक्षहीके वीर्यसे उत्पन्न है॥ ३॥

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

इसलिये चन्द्रमाको ललाटपर धारण करनेवाले वृषकेतु शिवजीको हृदयमें धारण करके मैं इस शरीरको तुरंत ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सतीजीने योगाग्निमें अपना शरीर भस्म कर डाला। सारी यज्ञशालामें हाहाकार मच गया॥ ४॥

दो०—सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस॥ ६४॥

सतीका मरण सुनकर शिवजीके गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजीने उसकी रक्षा की॥ ६४॥

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥

ये सब समाचार शिवजीको मिले, तब उन्होंने क्रोध करके वीरभद्रको भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विध्वंस कर डाला और सब देवताओंको यथोचित फल (दण्ड) दिया॥ १॥

भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संछेप बखानी॥

दक्षकी जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई जो शिवद्रोहीकी हुआ करती है। यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसलिये मैंने संक्षेपमें वर्णन किया॥ २॥

सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥

सतीने मरते समय भगवान् हरिसे यह वर माँगा कि मेरा जन्म-जन्ममें शिवजीके चरणोंमें अनुराग रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचलके घर जाकर पार्वतीके शरीरसे जन्म लिया॥ ३॥

जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥

जबसे उमाजी हिमाचलके घर जन्मीं तबसे वहाँ सारी सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गयीं। मुनियोंने जहाँ-तहाँ सुन्दर आश्रम बना लिये और हिमाचलने उनको उचित स्थान दिये॥ ४॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥ ६५॥

उस सुन्दर पर्वतपर बहुत प्रकारके सब नये-नये वृक्ष सदा पुष्प-फलयुक्त हो गये और वहाँ बहुत तरहकी मणियोंकी खानें प्रकट हो गयीं ॥ ६५ ॥

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥

सारी नदियोंमें पवित्र जल बहता है और पक्षी, पशु, भ्रमर सभी सुखी रहते हैं। सब जीवोंने अपना स्वाभाविक वैर छोड़ दिया और पर्वतपर सभी परस्पर प्रेम करते हैं ॥ १ ॥

सोह सैल गिरिजा गृह आएँ। जिमि जनु रामभगति के पाएँ॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥

पार्वतीजीके घर आ जानेसे पर्वत ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसा रामभक्तिको पाकर भक्त शोभायमान होता है। उस (पर्वतराज) के घर नित्य नये-नये मङ्गलोत्सव होते हैं, जिसका ब्रह्मादि यश गाते हैं ॥ २ ॥

नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा॥

जब नारदजीने ये सब समाचार सुने तो वे कौतुकहीसे हिमाचलके घर पधारे। पर्वतराजने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर उनको उत्तम आसन दिया ॥ ३ ॥

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

फिर अपनी स्त्रीसहित मुनिके चरणोंमें सिर नवाया और उनके चरणोदकको सारे घरमें छिड़काया। हिमाचलने अपने सौभाग्यका बहुत बखान किया और पुत्रीको बुलाकर मुनिके चरणोंपर डाल दिया ॥ ४ ॥

दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि॥ ६६ ॥

[और कहा—] हे मुनिवर! आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुँच है। अतः आप हृदयमें विचारकर कन्याके दोष-गुण कहिये ॥ ६६ ॥

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥

नारद मुनिने हँसकर रहस्ययुक्त कोमल वाणीसे कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणोंकी खान है। यह स्वभावसे ही सुन्दर, सुशील और समझदार है। उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं ॥ १ ॥

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥

कन्या सब सुलक्षणोंसे सम्पन्न है, यह अपने पतिको सदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इससे इसके माता-पिता यश पावेंगे॥ २॥

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा॥

यह सारे जगत्‌में पूज्य होगी और इसकी सेवा करनेसे कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसारमें स्त्रियाँ इसका नाम स्मरण करके पतिव्रतरूपी तलवारकी धारपर चढ़ जायँगी॥ ३॥

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥

हे पर्वतराज! तुम्हारी कन्या सुलच्छनी है। अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हें भी सुन लो। गुणहीन, मानहीन, माता-पिता-विहीन, उदासीन, संशयहीन (लापरवाह), ॥ ४॥

दो०—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥ ६७॥

योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नंगा और अमङ्गल वेषवाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथमें ऐसी ही रेखा पड़ी है॥ ६७॥

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥

नारद मुनिकी वाणी सुनकर और उसको हृदयमें सत्य जानकर पति-पत्नी (हिमवान् और मैना)को दुःख हुआ और पार्वतीजी प्रसन्न हुईं। नारदजीने भी इस रहस्यको नहीं जाना, क्योंकि सबकी बाहरी दशा एक-सी होनेपर भी भीतरी समझ भिन्न-भिन्न थी॥ १॥

सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा॥

सारी सखियाँ, पार्वती, पर्वतराज हिमवान् और मैना सभीके शरीर पुलकित थे और सभीके नेत्रोंमें जल भरा था। देवर्षिके वचन असत्य नहीं हो सकते, [यह विचारकर] पार्वतीने उन वचनोंको हृदयमें धारण कर लिया॥ २॥

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठी पुनि जाई॥

उन्हें शिवजीके चरणकमलोंमें स्नेह उत्पन्न हो आया, परन्तु मनमें यह सन्देह हुआ कि उनका मिलना कठिन है। अवसर ठीक न जानकर उमाने अपने प्रेमको छिपा लिया और फिर वे सखीकी गोदमें जाकर बैठ गयीं॥ ३॥

झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ॥

देवर्षिकी वाणी झूठी न होगी, यह विचारकर हिमवान्, मैना और सारी चतुर

सखियाँ चिन्ता करने लगीं। फिर हृदयमें धीरज धरकर पर्वतराजने कहा—हे नाथ! कहिये, अब क्या उपाय किया जाय?॥ ४॥

दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥ ६८॥

मुनीश्वरने कहा—हे हिमवान्! सुनो, विधाताने ललाटपर जो कुछ लिख दिया है, उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते॥ ६८॥

तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥

तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ। यदि दैव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है। उमाको वर तो निःसन्देह वैसा ही मिलेगा जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है॥ १॥

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥

परन्तु मैंने वरके जो-जो दोष बतलाये हैं, मेरे अनुमानसे वे सभी शिवजीमें हैं। यदि शिवजीके साथ विवाह हो जाय तो दोषोंको भी सब लोग गुणोंके समान ही कहेंगे॥ २॥

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥

जैसे विष्णुभगवान् शेषनागकी शय्यापर सोते हैं, तो भी पण्डित लोग उनको कोई दोष नहीं लगाते। सूर्य और अग्निदेव अच्छे-बुरे सभी रसोंका भक्षण करते हैं, परन्तु उनको कोई बुरा नहीं कहता॥ ३॥

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

गङ्गाजीमें शुभ और अशुभ सभी जल बहता है, पर कोई उन्हें अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि और गङ्गाजीकी भाँति समर्थको कुछ दोष नहीं लगता॥ ४॥

दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान॥ ६९॥

यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञानके अभिमानसे इस प्रकार होड़ करते हैं तो वे कल्पभरके लिये नरकमें पड़ते हैं। भला, कहीं जीव भी ईश्वरके समान (सर्वथा स्वतन्त्र) हो सकता है?॥ ६९॥

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अंतरु तैसें॥

गङ्गाजलसे भी बनायी हुई मदिराको जानकर संत लोग कभी उसका पान नहीं करते। पर वही गङ्गाजीमें मिल जानेपर जैसे पवित्र हो जाती है, ईश्वर और जीवमें भी वैसा ही भेद है॥ १॥

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥

शिवजी सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं। इसलिये इस विवाहमें सब प्रकार कल्याण है। परन्तु महादेवजीकी आराधना बड़ी कठिन है, फिर भी क्लेश (तप) करनेसे वे बहुत जल्द सन्तुष्ट हो जाते हैं॥ २॥

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥

यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो त्रिपुरारि महादेवजी होनहारको मिटा सकते हैं। यद्यपि संसारमें वर अनेक हैं, पर इसके लिये शिवजीको छोड़कर दूसरा वर नहीं है॥ ३॥

बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥

शिवजी वर देनेवाले, शरणागतोंके दुःखोंका नाश करनेवाले, कृपाके समुद्र और सेवकोंके मनको प्रसन्न करनेवाले हैं। शिवजीकी आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करनेपर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता॥ ४॥

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस॥ ७०॥

ऐसा कहकर भगवान्का स्मरण करके नारदजीने पार्वतीको आशीर्वाद दिया। [और कहा कि—] हे पर्वतराज! तुम सन्देहका त्याग कर दो, अब यह कल्याण ही होगा॥ ७०॥

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना॥

यों कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोकको चले गये। अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो। पतिको एकान्तमें पाकर मैनाने कहा—हे नाथ! मैंने मुनिके वचनोंका अर्थ नहीं समझा॥ १॥

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी॥

जो हमारी कन्याके अनुकूल घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिये। नहीं तो लड़की चाहे कुमारी ही रहे (मैं अयोग्य वरके साथ उसका विवाह नहीं करना चाहती); क्योंकि हे स्वामिन्! पार्वती मुझको प्राणोंके समान प्यारी है॥ २॥

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू॥
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू॥

यदि पार्वतीके योग्य वर न मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभावसे ही जड (मूर्ख) होते हैं। हे स्वामी! इस बातको विचारकर ही विवाह कीजियेगा, जिसमें फिर पीछे हृदयमें सन्ताप न हो॥ ३॥

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥

इस प्रकार कहकर मैना पतिके चरणोंपर मस्तक रखकर गिर पड़ीं। तब हिमवान्‌ने प्रेमसे कहा—चाहे चन्द्रमामें अग्नि प्रकट हो जाय, पर नारदजीके वचन झूठे नहीं हो सकते॥ ४॥

दो०—प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान॥ ७१॥

हे प्रिये! सब सोच छोड़कर श्रीभगवान्‌का स्मरण करो। जिन्होंने पार्वतीको रचा है, वे ही कल्याण करेंगे॥ ७१॥

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू॥

अब यदि तुम्हें कन्यापर प्रेम है तो जाकर उसे यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे जिससे शिवजी मिल जायँ। दूसरे उपायसे यह क्लेश नहीं मिटेगा॥ १॥

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका॥

नारदजीके वचन रहस्यसे युक्त और सकारण हैं और शिवजी समस्त सुन्दर गुणोंके भण्डार हैं। यह विचारकर तुम [मिथ्या] सन्देहको छोड़ दो। शिवजी सभी तरहसे निष्कलङ्क हैं॥ २॥

सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥

पतिके वचन सुन मनमें प्रसन्न होकर मैना उठकर तुरंत पार्वतीके पास गयीं। पार्वतीको देखकर उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसे स्नेहके साथ गोदमें बैठा लिया॥ ३॥

बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी॥

फिर बार-बार उसे हृदयसे लगाने लगीं। प्रेमसे मैनाका गला भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगज्जननी भवानीजी तो सर्वज्ञ ठहरीं। [माताके मनकी दशाको जानकर] वे माताको सुख देनेवाली कोमल वाणीसे बोलीं—॥ ४॥

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि॥ ७२॥

माँ! सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ; मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि मुझे एक सुन्दर गौरवर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मणने ऐसा उपदेश दिया है—॥ ७२॥

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥

हे पार्वती! नारदजीने जो कहा है, उसे सत्य समझकर तू जाकर तप कर। फिर यह बात तेरे माता-पिताको भी अच्छी लगी है। तप सुख देनेवाला और दुःख-दोषका नाश करनेवाला है॥ १॥

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा॥

तपके बलसे ही ब्रह्मा संसारको रचते हैं और तपके बलसे ही विष्णु सारे जगत्‌का पालन करते हैं, तपके बलसे ही शम्भु [रुद्ररूपसे जगत्‌का] संहार करते हैं और तपके बलसे ही शेषजी पृथ्वीका भार धारण करते हैं॥ २॥

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥

हे भवानी! सारी सृष्टि तपके ही आधारपर है। ऐसा जीमें जानकर तू जाकर तप कर। यह बात सुनकर माताको बड़ा अचरज हुआ और उसने हिमवान्‌को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया॥ ३॥

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥

माता-पिताको बहुत तरहसे समझाकर बड़े हर्षके साथ पार्वतीजी तप करनेके लिये चलीं। प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हो गये। किसीके मुँहसे बात नहीं निकलती॥ ४॥

दो०— बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ॥ ७३॥

तब वेदशिरा मुनिने आकर सबको समझाकर कहा। पार्वतीजीकी महिमा सुनकर सबको समाधान हो गया॥ ७३॥

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥

प्राणपति (शिवजी) के चरणोंको हृदयमें धारण करके पार्वतीजी वनमें जाकर तप करने लगीं। पार्वतीजीका अत्यन्त सुकुमार शरीर तपके योग्य नहीं था, तो भी पतिके चरणोंका स्मरण करके उन्होंने सब भोगोंको तज दिया॥ १॥

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥

स्वामीके चरणोंमें नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तपमें ऐसा मन लगा कि शरीरकी सारी सुध बिसर गयी। एक हजार वर्षतक उन्होंने मूल और फल खाये, फिर सौ वर्ष साग खाकर बिताये॥ २॥

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥

कुछ दिन जल और वायुका भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किये। जो बेलपत्र सूखकर पृथ्वीपर गिरते थे, तीन हजार वर्षतक उन्हींको खाया॥ ३॥

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

फिर सूखे पर्ण (पत्ते) भी छोड़ दिये, तभी पार्वतीका नाम 'अपर्णा' हुआ। तपसे उमाका शरीर क्षीण देखकर आकाशसे गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई—॥ ४॥

दो०— भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥ ७४॥

हे पर्वतराजकी कुमारी! सुन, तेरा मनोरथ सफल हुआ। तू अब सारे असह्य क्लेशोंको (कठिन तपको) त्याग दे। अब तुझे शिवजी मिलेंगे॥ ७४॥

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी॥

हे भवानी! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा (कठोर) तप किसीने नहीं किया। अब तू इस श्रेष्ठ ब्रह्माकी वाणीको सदा सत्य और निरन्तर पवित्र जानकर अपने हृदयमें धारण कर॥ १॥

आवै पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥

जब तेरे पिता बुलानेको आवें, तब हठ छोड़कर घर चली जाना और जब तुम्हें सप्तर्षि मिलें तब इस वाणीको ठीक समझना॥ २॥

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥

[इस प्रकार] आकाशसे कही हुई ब्रह्माकी वाणीको सुनते ही पार्वतीजी प्रसन्न हो गयीं और [हर्षके मारे] उनका शरीर पुलकित हो गया। [याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजीसे बोले कि] मैंने पार्वतीका सुन्दर चरित्र सुनाया, अब शिवजीका सुहावना चरित्र सुनो॥ ३॥

जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा॥

जबसे सतीने जाकर शरीरत्याग किया, तबसे शिवजीके मनमें वैराग्य हो गया। वे सदा श्रीरघुनाथजीका नाम जपने लगे और जहाँ-तहाँ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथाएँ सुनने लगे॥ ४॥

दो०— चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम॥ ७५॥

चिदानन्द, सुखके धाम, मोह, मद और कामसे रहित शिवजी सम्पूर्ण लोकोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीहरि (श्रीरामचन्द्रजी) को हृदयमें धारण कर (भगवान्के ध्यानमें मस्त हुए) पृथ्वीपर विचरने लगे॥ ७५॥

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥

वे कहीं मुनियोंको ज्ञानका उपदेश करते और कहीं श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करते थे। यद्यपि सुजान शिवजी निष्काम हैं, तो भी वे भगवान् अपने भक्त (सती) के वियोगके दुःखसे दुखी हैं॥ १॥

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा॥

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें नित नयी प्रीति हो रही है। शिवजीके [कठोर] नियम, [अनन्य] प्रेम और उनके हृदयमें भक्तिकी अटल टेकको [जब श्रीरामचन्द्रजीने] देखा,॥ २॥

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥

तब कृतज्ञ (उपकार माननेवाले), कृपालु, रूप और शीलके भण्डार, महान् तेजपुञ्ज भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए। उन्होंने बहुत तरहसे शिवजीकी सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा (कठिन) व्रत कौन निबाह सकता है॥ ३॥

बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥

श्रीरामचन्द्रजीने बहुत प्रकारसे शिवजीको समझाया और पार्वतीजीका जन्म सुनाया। कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने विस्तारपूर्वक पार्वतीजीकी अत्यन्त पवित्र करनीका वर्णन किया॥ ४॥

दो०— अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु॥ ७६॥

[फिर उन्होंने शिवजीसे कहा—] हे शिवजी! यदि मुझपर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी विनती सुनिये। मुझे यह माँगे दीजिये कि आप जाकर पार्वतीके साथ विवाह कर लें॥ ७६॥

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

शिवजीने कहा—यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामीकी बात भी मेटी नहीं

जा सकती। हे नाथ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञाको सिरपर रखकर उसका पालन करूँ॥ १॥

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥

माता, पिता, गुरु और स्वामीकी बातको बिना ही विचारे शुभ समझकर करना (मानना) चाहिये। फिर आप तो सब प्रकारसे मेरे परम हितकारी हैं। हे नाथ! आपकी आज्ञा मेरे सिरपर है॥ २॥

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ॥

शिवजीकी भक्ति, ज्ञान और धर्मसे युक्त वचनरचना सुनकर प्रभु रामचन्द्रजी सन्तुष्ट हो गये। प्रभुने कहा—हे हर! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। अब हमने जो कहा है उसे हृदयमें रखना॥ ३॥

अंतरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥

इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्धान हो गये। शिवजीने उनकी वह मूर्ति अपने हृदयमें रख ली। उसी समय सप्तर्षि शिवजीके पास आये। प्रभु महादेवजीने उनसे अत्यन्त सुहावने वचन कहे—॥ ४॥

दो०—पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु॥ ७७॥

आपलोग पार्वतीके पास जाकर उनके प्रेमकी परीक्षा लीजिये और हिमाचलको कहकर [उन्हें पार्वतीको लिवा लानेके लिये भेजिये तथा] पार्वतीको घर भिजवाइये और उनके सन्देहको दूर कीजिये॥ ७७॥

रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी॥

ऋषियोंने [वहाँ जाकर] पार्वतीको कैसी देखा, मानो मूर्तिमान् तपस्या ही हो। मुनि बोले—हे शैलकुमारी! सुनो, तुम किसलिये इतना कठोर तप कर रही हो?॥ १॥

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥
कहत बचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई॥

तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो? हमसे अपना सच्चा भेद क्यों नहीं कहतीं? [पार्वतीने कहा—] बात कहते मन बहुत सकुचाता है। आपलोग मेरी मूर्खता सुनकर हँसेंगे॥ २॥

मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना॥

मनने हठ पकड़ लिया है, वह उपदेश नहीं सुनता और जलपर दीवाल उठाना चाहता है। नारदजीने जो कह दिया उसे सत्य जानकर मैं बिना ही पाँखके उड़ना चाहती हूँ॥ ३॥

देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा॥

हे मुनियो! आप मेरा अज्ञान तो देखिये कि मैं सदा शिवजीको ही पति बनाना चाहती हूँ॥ ४॥

दो०— सुनत बचन बिहसे रिषय गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह॥ ७८॥

पार्वतीजीकी बात सुनते ही ऋषिलोग हँस पड़े और बोले—तुम्हारा शरीर पर्वतसे ही तो उत्पन्न हुआ है! भला, कहो तो नारदका उपदेश सुनकर आजतक किसका घर बसा है?॥ ७८॥

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला॥

उन्होंने जाकर दक्षके पुत्रोंको उपदेश दिया था, जिससे उन्होंने फिर लौटकर घरका मुँह भी नहीं देखा। चित्रकेतुके घरको नारदने ही चौपट किया। फिर यही हाल हिरण्यकशिपुका हुआ॥ १॥

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥

जो स्त्री-पुरुष नारदकी सीख सुनते हैं, वे घर-बार छोड़कर अवश्य ही भिखारी हो जाते हैं। उनका मन तो कपटी है, शरीरपर सज्जनोंके चिह्न हैं। वे सभीको अपने समान बनाना चाहते हैं॥ २॥

तेहि कें बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुबेस कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥

उनके वचनोंपर विश्वास मानकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभावसे ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला, नर-कपालोंकी माला पहननेवाला, कुलहीन, बिना घर-बारका, नंगा और शरीरपर साँपोंको लपेटे रखनेवाला है॥ ३॥

कहहु कवन सुखु अस बरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ॥
पंच कहें सिवँ सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही॥

ऐसे वरके मिलनेसे कहो, तुम्हें क्या सुख होगा? तुम उस ठग (नारद) के बहकावेमें आकर खूब भूलीं। पहले पंचोंके कहनेसे शिवने सतीसे विवाह किया था, परन्तु फिर उसे त्यागकर मरवा डाला॥ ४॥

दो०—अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥ ७९ ॥

अब शिवको कोई चिन्ता नहीं रही, भीख माँगकर खा लेते हैं और सुखसे सोते हैं। ऐसे स्वभावसे ही अकेले रहनेवालोंके घर भी भला क्या कभी स्त्रियाँ टिक सकती हैं? ॥ ७९ ॥

अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला ॥

अब भी हमारा कहा मानो, हमने तुम्हारे लिये अच्छा वर विचारा है। वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुखदायक और सुशील है, जिसका यश और लीला वेद गाते हैं ॥ १ ॥

दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी ॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भवानी ॥

वह दोषोंसे रहित, सारे सद्गुणोंकी राशि, लक्ष्मीका स्वामी और वैकुण्ठपुरीका रहनेवाला है। हम ऐसे वरको लाकर तुमसे मिला देंगे। यह सुनते ही पार्वतीजी हँसकर बोलीं— ॥ २ ॥

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा ॥
कनकउ पुनि पषान तें होई। जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥

आपने यह सत्य ही कहा कि मेरा यह शरीर पर्वतसे उत्पन्न हुआ है। इसलिये हठ नहीं छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थरसे ही उत्पन्न होता है, सो वह जलाये जानेपर भी अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को नहीं छोड़ता ॥ ३ ॥

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥

अतः मैं नारदजीके वचनोंको नहीं छोड़ूँगी; चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरुके वचनोंमें विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्नमें भी सुगम नहीं होती ॥ ४ ॥

दो०—महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥ ८० ॥

माना कि महादेवजी अवगुणोंके भवन हैं और विष्णु समस्त सद्गुणोंके धाम हैं; पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसीसे काम है ॥ ८० ॥

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा ॥

हे मुनीश्वरो! यदि आप पहले मिलते, तो मैं आपका उपदेश सिर-माथे रखकर सुनती। परंतु अब तो मैं अपना जन्म शिवजीके लिये हार चुकी। फिर गुण-दोषोंका विचार कौन करे? ॥ १ ॥

जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बर कन्या अनेक जग माहीं॥

यदि आपके हृदयमें बहुत ही हठ है और विवाहकी बातचीत (बरेखी) किये बिना आपसे रहा ही नहीं जाता, तो संसारमें वर-कन्या बहुत हैं। खिलवाड़ करनेवालोंको आलस्य तो होता नहीं [और कहीं जाकर कीजिये] ॥ २ ॥

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

मेरा तो करोड़ जन्मोंतक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजीको वरूँगी, नहीं तो कुमारी ही रहूँगी। स्वयं शिवजी सौ बार कहें, तो भी नारदजीके उपदेशको न छोड़ूँगी ॥ ३ ॥

मैं पा परउँ कहइ जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥

जगज्जननी पार्वतीजीने फिर कहा कि मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। आप अपने घर जाइये, बहुत देर हो गयी। [शिवजीमें पार्वतीजीका ऐसा] प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले—हे जगज्जननी! हे भवानी! आपकी जय हो! जय हो!! ॥ ४ ॥

दो०— तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु॥ ८१ ॥

आप माया हैं और शिवजी भगवान् हैं। आप दोनों समस्त जगत्के माता-पिता हैं। [यह कहकर] मुनि पार्वतीजीके चरणोंमें सिर नवाकर चल दिये। उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे ॥ ८१ ॥

जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई॥

मुनियोंने जाकर हिमवान्को पार्वतीजीके पास भेजा और वे विनती करके उनको घर ले आये; फिर सप्तर्षियोंने शिवजीके पास जाकर उनको पार्वतीजीकी सारी कथा सुनायी ॥ १ ॥

भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥

पार्वतीजीका प्रेम सुनते ही शिवजी आनन्दमग्न हो गये। सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने घर (ब्रह्मलोक)को चले गये। तब सुजान शिवजी मनको स्थिर करके श्रीरघुनाथजीका ध्यान करने लगे ॥ २ ॥

तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते॥

उसी समय तारक नामका असुर हुआ, जिसकी भुजाओंका बल, प्रताप और

तेज बहुत बड़ा था। उसने सब लोक और लोकपालोंको जीत लिया, सब देवता सुख और सम्पत्तिसे रहित हो गये॥ ३॥

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥

वह अजर-अमर था, इसलिये किसीसे जीता नहीं जाता था। देवता उसके साथ बहुत तरहकी लड़ाइयाँ लड़कर हार गये। तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर पुकार मचायी। ब्रह्माजीने सब देवताओंको दुःखी देखा॥ ४॥

दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ॥ ८२॥

ब्रह्माजीने सबको समझाकर कहा—इस दैत्यकी मृत्यु तब होगी जब शिवजीके वीर्यसे पुत्र उत्पन्न हो, इसको युद्धमें वही जीतेगा॥ ८२॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥

मेरी बात सुनकर उपाय करो। ईश्वर सहायता करेंगे और काम हो जायगा। सतीजीने जो दक्षके यज्ञमें देहका त्याग किया था, उन्होंने अब हिमाचलके घर जाकर जन्म लिया है॥ १॥

तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥

उन्होंने शिवजीको पति बनानेके लिये तप किया है, इधर शिवजी सब छोड़-छाड़कर समाधि लगा बैठे हैं। यद्यपि है तो बड़े असमंजसकी बात; तथापि मेरी एक बात सुनो॥ २॥

पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई॥

तुम जाकर कामदेवको शिवजीके पास भेजो, वह शिवजीके मनमें क्षोभ उत्पन्न करे(उनकी समाधि भङ्ग करे)। तब हम जाकर शिवजीके चरणोंमें सिर रख देंगे और जबरदस्ती (उन्हें राजी करके) विवाह करा देंगे॥ ३॥

एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू॥

इस प्रकारसे भले ही देवताओंका हित हो [और तो कोई उपाय नहीं है] सबने कहा—यह सम्मति बहुत अच्छी है। फिर देवताओंने बड़े प्रेमसे स्तुति की, तब विषम (पाँच) बाण धारण करनेवाला और मछलीके चिह्नयुक्त ध्वजावाला कामदेव प्रकट हुआ॥ ४॥

दो०— सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार॥ ८३॥

देवताओंने कामदेवसे अपनी सारी विपत्ति कही। सुनकर कामदेवने मनमें विचार किया और हँसकर देवताओंसे यों कहा कि शिवजीके साथ विरोध करनेमें मेरी कुशल नहीं है॥ ८३॥

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥

तथापि मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेद दूसरेके उपकारको परम धर्म कहते हैं। जो दूसरेके हितके लिये अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं॥ १॥

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुष कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदयँ बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा॥

यों कह और सबको सिर नवाकर कामदेव अपने पुष्पके धनुषको हाथमें लेकर [वसन्तादि] सहायकोंके साथ चला। चलते समय कामदेवने हृदयमें ऐसा विचार किया कि शिवजीके साथ विरोध करनेसे मेरा मरण निश्चित है॥ २॥

तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥

तब उसने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसारको अपने वशमें कर लिया। जिस समय उस मछलीके चिह्नकी ध्वजावाले कामदेवने कोप किया, उस समय क्षणभरमें ही वेदोंकी सारी मर्यादा मिट गयी॥ ३॥

ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना। धीरज धरम ग्यान बिग्याना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सबु भागा॥

ब्रह्मचर्य, नियम, नाना प्रकारके संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान-विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि विवेककी सारी सेना डरकर भाग गयी॥ ४॥

छं०— भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा॥

विवेक अपने सहायकोंसहित भाग गया, उसके योद्धा रणभूमिसे पीठ दिखा गये। उस समय वे सब सद्ग्रन्थरूपी पर्वतकी कन्दराओंमें जा छिपे (अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचारादि ग्रन्थोंमें ही लिखे रह गये; उनका आचरण छूट गया)। सारे जगत्‌में खलबली मच गयी [और सब कहने लगे—] हे विधाता! अब क्या

होनेवाला है, हमारी रक्षा कौन करेगा? ऐसा दो सिरवाला कौन है, जिसके लिये रतिके पति कामदेवने कोप करके हाथमें धनुष-बाण उठाया है?

दो०—जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम॥ ८४॥

जगत्‌में स्त्री-पुरुष संज्ञावाले जितने चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर कामके वश हो गये॥ ८४॥

सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं॥

सबके हृदयमें कामकी इच्छा हो गयी। लताओं (बेलों) को देखकर वृक्षोंकी डालियाँ झुकने लगीं। नदियाँ उमड़-उमड़कर समुद्रकी ओर दौड़ीं और ताल-तलैयाँ भी आपसमें संगम करने (मिलने-जुलने) लगीं॥ १॥

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी॥

जब जड (वृक्ष, नदी आदि) की यह दशा कही गयी, तब चेतन जीवोंकी करनी कौन कह सकता है? आकाश, जल और पृथ्वीपर विचरनेवाले सारे पशु-पक्षी (अपने संयोगका) समय भुलाकर कामके वश हो गये॥ २॥

मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥

सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा-चकवी रात-दिन नहीं देखते। देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल—॥ ३॥

इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी॥

ये तो सदा ही कामके गुलाम हैं, यह समझकर मैंने इनकी दशाका वर्णन नहीं किया। सिद्ध, विरक्त, महामुनि और महान् योगी भी कामके वश होकर योगरहित या स्त्रीके विरही हो गये॥ ४॥

छं०—भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

जब योगीश्वर और तपस्वी भी कामके वश हो गये, तब पामर मनुष्योंकी कौन कहे? जो समस्त चराचर जगत्‌को ब्रह्ममय देखते थे, वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे।

स्त्रियाँ सारे संसारको पुरुषमय देखने लगीं और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घड़ीतक सारे ब्रह्माण्डके अंदर कामदेवका रचा हुआ यह कौतुक (तमाशा) रहा।

सो०—धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥ ८५॥

किसीने भी हृदयमें धैर्य नहीं धारण किया, कामदेवने सबके मन हर लिये। श्रीरघुनाथजीने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही उस समय बचे रहे॥ ८५॥

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू॥

दो घड़ीतक ऐसा तमाशा हुआ, जबतक कामदेव शिवजीके पास पहुँच गया। शिवजीको देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर जैसा-का-तैसा स्थिर हो गया॥ १॥

भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥

तुरंत ही सब जीव वैसे ही सुखी हो गये जैसे मतवाले (नशा पिये हुए) लोग मद (नशा) उतर जानेपर सुखी होते हैं। दुराधर्ष (जिनको पराजित करना अत्यन्त ही कठिन है) और दुर्गम (जिनका पार पाना कठिन है) भगवान् (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यरूप छः ईश्वरीय गुणोंसे युक्त) रुद्र (महाभयङ्कर) शिवजीको देखकर कामदेव भयभीत हो गया॥ २॥

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥

लौट जानेमें लज्जा मालूम होती है और करते कुछ बनता नहीं। आखिर मनमें मरनेका निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरंत ही सुन्दर ऋतुराज वसन्तको प्रकट किया। फूले हुए नये-नये वृक्षोंकी कतारें सुशोभित हो गयीं॥ ३॥

बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥

वन-उपवन, बावली-तालाब और सब दिशाओंके विभाग परम सुन्दर हो गये। जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे मनोंमें भी कामदेव जाग उठा॥ ४॥

छं०—जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

मरे हुए मनमें भी कामदेव जागने लगा, वनकी सुन्दरता कही नहीं जा सकती। कामरूपी अग्निका सच्चा मित्र शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। सरोवरोंमें

अनेकों कमल खिल गये, जिनपर सुन्दर भौंरोंके समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गा-गाकर नाचने लगीं।

दो०— सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत॥ ८६॥

कामदेव अपनी सेनासमेत करोड़ों प्रकारकी सब कलाएँ (उपाय) करके हार गया, पर शिवजीकी अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव क्रोधित हो उठा॥ ८६॥

देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥

आमके वृक्षकी एक सुन्दर डाली देखकर मनमें क्रोधसे भरा हुआ कामदेव उसपर चढ़ गया। उसने पुष्प-धनुषपर अपने [पाँचों] बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोधसे [लक्ष्यकी ओर] ताककर उन्हें कानतक तान लिया॥ १॥

छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥

कामदेवने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिवजीके हृदयमें लगे। तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जाग गये। ईश्वर (शिवजी) के मनमें बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा॥ २॥

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा॥

जब आमके पत्तोंमें [छिपे हुए] कामदेवको देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब शिवजीने तीसरा नेत्र खोला, उनके देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया॥ ३॥

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी॥
समुझि कामसुख सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी॥

जगत्‌में बड़ा हाहाकार मच गया। देवता डर गये, दैत्य सुखी हुए। भोगी लोग कामसुखको याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कंटक हो गये॥ ४॥

छं०— जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

योगी निष्कंटक हो गये, कामदेवकी स्त्री रति अपने पतिकी यह दशा सुनते ही मूर्च्छित हो गयी। रोती-चिल्लाती और भाँति-भाँतिसे करुणा करती हुई वह शिवजीके

पास गयी। अत्यन्त प्रेमके साथ अनेकों प्रकारसे विनती करके हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयी। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले कृपालु शिवजी अबला (असहाया स्त्री) को देखकर सुन्दर (उसको सान्त्वना देनेवाले) वचन बोले—

दो०— अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु॥ ८७॥

हे रति! अबसे तेरे स्वामीका नाम अनङ्ग होगा। वह बिना ही शरीरके सबको व्यापेगा। अब तू अपने पतिसे मिलनेकी बात सुन॥ ८७॥

जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥

जब पृथ्वीके बड़े भारी भारको उतारनेके लिये यदुवंशमें श्रीकृष्णका अवतार होगा, तब तेरा पति उनके पुत्र (प्रद्युम्न) के रूपमें उत्पन्न होगा। मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा॥ १॥

रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए॥

शिवजीके वचन सुनकर रति चली गयी। अब दूसरी कथा बखानकर (विस्तारसे) कहता हूँ। ब्रह्मादि देवताओंने ये सब समाचार सुने तो वे वैकुण्ठको चले॥ २॥

सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा॥

फिर वहाँसे विष्णु और ब्रह्मासहित सब देवता वहाँ गये जहाँ कृपाके धाम शिवजी थे। उन सबने शिवजीकी अलग-अलग स्तुति की, तब शशिभूषण शिवजी प्रसन्न हो गये॥ ३॥

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी॥

कृपाके समुद्र शिवजी बोले—हे देवताओ! कहिये, आप किसलिये आये हैं? ब्रह्माजीने कहा—हे प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं, तथापि हे स्वामी! भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ॥ ४॥

दो०— सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु॥ ८८॥

हे शङ्कर! सब देवताओंके मनमें ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ! वे अपनी आँखोंसे आपका विवाह देखना चाहते हैं॥ ८८॥

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन॥
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा॥

हे कामदेवके मदको चूर करनेवाले! आप ऐसा कुछ कीजिये जिससे सब लोग इस उत्सवको नेत्र भरकर देखें। हे कृपाके सागर! कामदेवको भस्म करके आपने रतिको जो वरदान दिया सो बहुत ही अच्छा किया॥ १॥

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥

हे नाथ! श्रेष्ठ स्वामियोंका यह सहज स्वभाव ही है कि वे पहले दण्ड देकर फिर कृपा किया करते हैं। पार्वतीने अपार तप किया है, अब उन्हें अङ्गीकार कीजिये॥ २॥

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुर साईं॥

ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंको याद करके शिवजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'ऐसा ही हो।' तब देवताओंने नगाड़े बजाये और फूलोंकी वर्षा करके 'जय हो! देवताओंके स्वामीकी जय हो!' ऐसा कहने लगे॥ ३॥

अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी॥

उचित अवसर जानकर सप्तर्षि आये और ब्रह्माजीने तुरंत ही उन्हें हिमाचलके घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गये जहाँ पार्वतीजी थीं और उनसे छलसे भरे मीठे (विनोदयुक्त, आनन्द पहुँचानेवाले) वचन बोले—॥ ४॥

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस॥ ८९॥

नारदजीके उपदेशसे तुमने उस समय हमारी बात नहीं सुनी। अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, क्योंकि महादेवजीने कामको ही भस्म कर डाला॥ ८९॥

मासपारायण, तीसरा विश्राम

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा॥

यह सुनकर पार्वतीजी मुसकराकर बोलीं—हे विज्ञानी मुनिवरो! आपने उचित ही कहा। आपकी समझमें शिवजीने कामदेवको अब जलाया है, अबतक तो वे विकारयुक्त (कामी) ही रहे!॥ १॥

हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी॥

किन्तु हमारी समझसे तो शिवजी सदासे ही योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, कामरहित और भोगहीन हैं और यदि मैंने शिवजीको ऐसा समझकर ही मन, वचन और कर्मसे प्रेमसहित उनकी सेवा की है—॥ २॥

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा॥

तो हे मुनीश्वरो! सुनिये, वे कृपानिधान भगवान् मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करेंगे। आपने जो यह कहा कि शिवजीने कामदेवको भस्म कर दिया, यही आपका बड़ा भारी अविवेक है॥ ३॥

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई॥

हे तात! अग्निका तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाला उसके समीप कभी जा ही नहीं सकता और जानेपर वह अवश्य नष्ट हो जायगा। महादेवजी और कामदेवके सम्बन्धमें भी यही न्याय (बात) समझना चाहिये॥ ४॥

दो०— हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास॥ ९०॥

पार्वतीके वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदयमें बड़े प्रसन्न हुए। वे भवानीको सिर नवाकर चल दिये और हिमाचलके पास पहुँचे॥ ९०॥

सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना॥

उन्होंने पर्वतराज हिमाचलको सब हाल सुनाया। कामदेवका भस्म होना सुनकर हिमाचल बहुत दुःखी हुए। फिर मुनियोंने रतिके वरदानकी बात कही, उसे सुनकर हिमवान्‌ने बहुत सुख माना॥ १॥

हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिबर लिए बोलाई॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥

शिवजीके प्रभावको मनमें विचारकर हिमाचलने श्रेष्ठ मुनियोंको आदरपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी शोधवाकर वेदकी विधिके अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय कराकर लिखवा लिया॥ २॥

पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयँ समाती॥

फिर हिमाचलने वह लग्नपत्रिका सप्तर्षियोंको दे दी और चरण पकड़कर उनकी विनती की। उन्होंने जाकर वह लग्नपत्रिका ब्रह्माजीको दी। उसको पढ़ते समय उनके हृदयमें प्रेम समाता न था॥ ३॥

लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे॥

ब्रह्माजीने लग्न पढ़कर सबको सुनाया, उसे सुनकर सब मुनि और देवताओंका सारा समाज हर्षित हो गया। आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओंमें मङ्गल-कलश सजा दिये गये॥ ४॥

दो०—लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान॥ ९१॥

सब देवता अपने भाँति-भाँतिके वाहन और विमान सजाने लगे, कल्याणप्रद मङ्गल शकुन होने लगे और अप्सराएँ गाने लगीं॥ ९१॥

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला॥

शिवजीके गण शिवजीका शृङ्गार करने लगे। जटाओंका मुकुट बनाकर उसपर साँपोंका मौर सजाया गया। शिवजीने साँपोंके ही कुण्डल और कङ्कण पहने, शरीरपर विभूति रमायी और वस्त्रकी जगह बाघम्बर लपेट लिया॥ १॥

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥

शिवजीके सुन्दर मस्तकपर चन्द्रमा, सिरपर गङ्गाजी, तीन नेत्र, साँपोंका जनेऊ, गलेमें विष और छातीपर नरमुण्डोंकी माला थी। इस प्रकार उनका वेष अशुभ होनेपर भी वे कल्याणके धाम और कृपालु हैं॥ २॥

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥

एक हाथमें त्रिशूल और दूसरेमें डमरू सुशोभित है। शिवजी बैलपर चढ़कर चले। बाजे बज रहे हैं। शिवजीको देखकर देवाङ्गनाएँ मुसकरा रही हैं [और कहती हैं कि] इस वरके योग्य दुलहिन संसारमें नहीं मिलेगी॥ ३॥

बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंके समूह अपने-अपने वाहनों (सवारियों) पर चढ़कर बरातमें चले। देवताओंका समाज सब प्रकारसे अनुपम (परम सुन्दर) था, पर दूल्हेके योग्य बरात न थी॥ ४॥

दो०— बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥ ९२॥

तब विष्णुभगवान्‌ने सब दिक्पालोंको बुलाकर हँसकर ऐसा कहा—सब लोग अपने-अपने दलसमेत अलग-अलग होकर चलो॥ ९२॥

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥

हे भाई! हमलोगोंकी यह बरात वरके योग्य नहीं है। क्या पराये नगरमें जाकर हँसी कराओगे? विष्णुभगवान्‌की बात सुनकर देवता मुसकराये और वे अपनी-अपनी सेनासहित अलग हो गये॥ १॥

मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥

महादेवजी [यह देखकर] मन-ही-मन मुसकराते हैं कि विष्णुभगवान्‌के व्यङ्ग्य-वचन (दिल्लगी) नहीं छूटते। अपने प्यारे (विष्णुभगवान्) के इन अति प्रिय वचनोंको सुनकर शिवजीने भी भृङ्गीको भेजकर अपने सब गणोंको बुलवा लिया॥ २॥

सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा॥

शिवजीकी आज्ञा सुनते ही सब चले आये और उन्होंने स्वामीके चरणकमलोंमें सिर नवाया। तरह-तरहकी सवारियों और तरह-तरहके वेषवाले अपने समाजको देखकर शिवजी हँसे॥ ३॥

कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना॥

कोई बिना मुखका है, किसीके बहुत-से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैरका है तो किसीके कई हाथ-पैर हैं। किसीके बहुत आँखें हैं तो किसीके एक भी आँख नहीं है। कोई बहुत मोटा-ताजा है तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है॥ ४॥

छं०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥

कोई बहुत दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेष धारण किये हुए है। भयङ्कर गहने पहने, हाथमें कपाल लिये हैं और सब-के-सब शरीरमें ताजा खून लपेटे हुए हैं। गधे, कुत्ते, सूअर और सियारके-से उनके मुख हैं। गणोंके अनगिनत वेषोंको कौन गिने? बहुत प्रकारके प्रेत, पिशाच और योगिनियोंकी जमातें हैं। उनका वर्णन करते नहीं बनता।

सो०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥ ९३॥

भूत-प्रेत नाचते और गाते हैं, वे सब बड़े मौजी हैं। देखनेमें बहुत ही बेढंगे

जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंगसे बोलते हैं॥ ९३॥

जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना॥

जैसा दूल्हा है, अब वैसी ही बरात बन गयी है। मार्गमें चलते हुए भाँति-भाँतिके कौतुक (तमाशे) होते जाते हैं। इधर हिमाचलने ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥ १॥

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा॥

जगत्‌में जितने छोटे-बड़े पर्वत थे, जिनका वर्णन करके पार नहीं मिलता तथा जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे, हिमाचलने सबको नेवता भेजा॥ २॥

कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥

वे सब अपने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुन्दर शरीर धारणकर सुन्दरी स्त्रियों और समाजोंके साथ हिमाचलके घर गये। सभी स्नेहसहित मङ्गलगीत गाते हैं॥ ३॥

प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई॥

हिमाचलने पहलेहीसे बहुत-से घर सजवा रखे थे। यथायोग्य उन-उन स्थानोंमें सब लोग उतर गये। नगरकी सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्माकी रचना-चातुरी भी तुच्छ लगती थी॥ ४॥

छं०— लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं॥

नगरकी शोभा देखकर ब्रह्माकी निपुणता सचमुच तुच्छ लगती है। वन, बाग, कुएँ, तालाब, नदियाँ सभी सुन्दर हैं; उनका वर्णन कौन कर सकता है? घर-घर बहुत-से मङ्गलसूचक तोरण और ध्वजा-पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं। वहाँके सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषोंकी छबि देखकर मुनियोंके भी मन मोहित हो जाते हैं।

दो०— जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ॥ ९४॥

जिस नगरमें स्वयं जगदम्बाने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन हो सकता है? वहाँ ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित-नये बढ़ते जाते हैं॥ ९४॥

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥

बरातको नगरके निकट आयी सुनकर नगरमें चहल-पहल मच गयी, जिससे उसकी शोभा बढ़ गयी। अगवानी करनेवाले लोग बनाव-शृंगार करके तथा नाना प्रकारकी सवारियोंको सजाकर आदरसहित बरातको लेने चले॥ १॥

हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥

देवताओंके समाजको देखकर सब मनमें प्रसन्न हुए और विष्णुभगवान्‌को देखकर तो बहुत ही सुखी हुए। किन्तु जब शिवजीके दलको देखने लगे तब तो उनके सब वाहन (सवारियोंके हाथी, घोड़े, रथके बैल आदि) डरकर भाग चले॥ २॥

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥

कुछ बड़ी उम्रके समझदार लोग धीरज धरकर वहाँ डटे रहे। लड़के तो सब अपने प्राण लेकर भागे। घर पहुँचनेपर जब माता-पिता पूछते हैं, तब वे भयसे काँपते हुए शरीरसे ऐसा वचन कहते हैं—॥ ३॥

कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥
बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥

क्या कहें, कोई बात कही नहीं जाती। यह बरात है या यमराजकी सेना? दूल्हा पागल है और बैलपर सवार है। साँप, कपाल और राख ही उसके गहने हैं॥ ४॥

छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥

दूल्हेके शरीरपर राख लगी है, साँप और कपालके गहने हैं; वह नङ्गा, जटाधारी और भयङ्कर है। उसके साथ भयानक मुखवाले भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ और राक्षस हैं। जो बरातको देखकर जीता बचेगा, सचमुच उसके बड़े ही पुण्य हैं, और वही पार्वतीका विवाह देखेगा। लड़कोंने घर-घर यही बात कही।

दो०—समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं॥ ९५॥

महेश्वर (शिवजी) का समाज समझकर सब लड़कोंके माता-पिता मुसकराते हैं। उन्होंने बहुत तरहसे लड़कोंको समझाया कि निडर हो जाओ, डरकी कोई बात नहीं है॥ ९५॥

लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥

अगवान लोग बरातको लिवा लाये, उन्होंने सबको सुन्दर जनवासे ठहरनेको दिये। मैना (पार्वतीजीकी माता) ने शुभ आरती सजायी और उनके साथकी स्त्रियाँ उत्तम मङ्गलगीत गाने लगीं॥ १॥

कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥

सुन्दर हाथोंमें सोनेका थाल शोभित है, इस प्रकार मैना हर्षके साथ शिवजीका परछन करने चलीं। जब महादेवजीको भयानक वेषमें देखा तब तो स्त्रियोंके मनमें बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया॥ २॥

भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥

बहुत ही डरके मारे भागकर वे घरमें घुस गयीं और शिवजी जहाँ जनवासा था, वहाँ चले गये। मैनाके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पार्वतीजीको अपने पास बुला लिया॥ ३॥

अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

और अत्यन्त स्नेहसे गोदमें बैठाकर अपने नील कमलके समान नेत्रोंमें आँसू भरकर कहा—जिस विधाताने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया, उस मूर्खने तुम्हारे दूल्हेको बावला कैसे बनाया?॥ ४॥

छं०—कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

जिस विधाताने तुमको सुन्दरता दी, उसने तुम्हारे लिये वर बावला कैसे बनाया? जो फल कल्पवृक्षमें लगना चाहिये, वह जबर्दस्ती बबूलमें लग रहा है। मैं तुम्हें लेकर पहाड़से गिर पड़ूँगी, आगमें जल जाऊँगी या समुद्रमें कूद पड़ूँगी। चाहे घर उजड़ जाय और संसारभरमें अपकीर्ति फैल जाय, पर जीते-जी मैं इस बावले वरसे तुम्हारा विवाह न करूँगी।

दो०—भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि॥ ९६॥

हिमाचलकी स्त्री (मैना) को दुःखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं। मैना

अपनी कन्याके स्नेहको याद करके विलाप करती, रोती और कहती थीं— ॥ ९६ ॥

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥

मैंने नारदका क्या बिगाड़ा था, जिन्होंने मेरा बसता हुआ घर उजाड़ दिया और जिन्होंने पार्वतीको ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले वरके लिये तप किया॥ १॥

साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥

सचमुच उनके न किसीका मोह है, न माया, न उनके धन है, न घर है और न स्त्री ही है; वे सबसे उदासीन हैं। इसीसे वे दूसरेका घर उजाड़नेवाले हैं। उन्हें न किसीकी लाज है, न डर है। भला, बाँझ स्त्री प्रसवकी पीड़ाको क्या जाने?॥ २॥

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥

माताको विकल देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोलीं—हे माता! जो विधाता रच देते हैं, वह टलता नहीं; ऐसा विचारकर तुम सोच मत करो!॥ ३॥

करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

जो मेरे भाग्यमें बावला ही पति लिखा है तो किसीको क्यों दोष लगाया जाय? हे माता! क्या विधाताके अङ्क तुमसे मिट सकते हैं? वृथा कलङ्कका टीका मत लो॥ ४॥

छं०—जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥

हे माता! कलङ्क मत लो, रोना छोड़ो, यह अवसर विषाद करनेका नहीं है। मेरे भाग्यमें जो दुःख-सुख लिखा है, उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वहीं पाऊँगी! पार्वतीजीके ऐसे विनयभरे कोमल वचन सुनकर सारी स्त्रियाँ सोच करने लगीं और भाँति-भाँतिसे विधाताको दोष देकर आँखोंसे आँसू बहाने लगीं।

दो०—तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत॥ ९७॥

इस समाचारको सुनते ही हिमाचल उसी समय नारदजी और सप्तर्षियोंको साथ लेकर अपने घर गये॥ ९७॥

तब नारद सबही समुझावा। पूरुब कथाप्रसंगु सुनावा॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥

तब नारदजीने पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर सबको समझाया [और कहा] कि हे मैना! तुम मेरी सच्ची बात सुनो, तुम्हारी यह लड़की साक्षात् जगज्जननी भवानी है॥ १॥

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि॥

ये अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति हैं। सदा शिवजीके अर्द्धाङ्गमें रहती हैं। ये जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं; और अपनी इच्छासे ही लीला-शरीर धारण करती हैं॥ २॥

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥

पहले ये दक्षके घर जाकर जन्मी थीं, तब इनका सती नाम था, बहुत सुन्दर शरीर पाया था। वहाँ भी सती शङ्करजीसे ही ब्याही गयी थीं। यह कथा सारे जगत्‌में प्रसिद्ध है॥ ३॥

एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा॥

एक बार इन्होंने शिवजीके साथ आते हुए [राहमें] रघुकुलरूपी कमलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजीको देखा, तब इन्हें मोह हो गया और इन्होंने शिवजीका कहना न मानकर भ्रमवश सीताजीका वेष धारण कर लिया॥ ४॥

छं०—सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकरप्रिया॥

सतीजीने जो सीताका वेष धारण किया, उसी अपराधके कारण शङ्करजीने उनको त्याग दिया। फिर शिवजीके वियोगमें ये अपने पिताके यज्ञमें जाकर वहीं योगाग्निसे भस्म हो गयीं। अब इन्होंने तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पतिके लिये कठिन तप किया है ऐसा जानकर सन्देह छोड़ दो, पार्वतीजी तो सदा ही शिवजीकी प्रिया (अर्द्धाङ्गिनी) हैं।

दो०— सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद॥ ९८॥

तब नारदके वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षणभरमें यह समाचार सारे नगरमें घर-घर फैल गया॥ ९८॥

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने॥

तब मैना और हिमवान् आनन्दमें मग्न हो गये और उन्होंने बार-बार पार्वतीके चरणोंकी वन्दना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध नगरके सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए॥ १॥

लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा॥

नगरमें मङ्गलगीत गाये जाने लगे और सबने भाँति-भाँतिके सुवर्णके कलश सजाये। पाकशास्त्रमें जैसी रीति है, उसके अनुसार अनेक भाँतिकी ज्योनार हुई (रसोई बनी)॥ २॥

सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती॥

जिस घरमें स्वयं माता भवानी रहती हों, वहाँकी ज्योनार (भोजनसामग्री) का वर्णन कैसे किया जा सकता है? हिमाचलने आदरपूर्वक सब बरातियोंको—विष्णु, ब्रह्मा और सब जातिके देवताओंको बुलवाया॥ ३॥

बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी॥

भोजन [करनेवालों] की बहुत-सी पङ्गतें बैठीं। चतुर रसोइये परोसने लगे। स्त्रियोंकी मण्डलियाँ देवताओंको भोजन करते जानकर कोमल वाणीसे गालियाँ देने लगीं॥ ४॥

छं०—गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं॥
जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

सब सुन्दरी स्त्रियाँ मीठे स्वरमें गालियाँ देने लगीं और व्यंग्यभरे वचन सुनाने लगीं। देवगण विनोद सुनकर बहुत सुख अनुभव करते हैं, इसलिये भोजन करनेमें बड़ी देर लगा रहे हैं। भोजनके समय जो आनन्द बढ़ा, वह करोड़ों मुँहसे भी नहीं कहा जा सकता। [भोजन कर चुकनेपर] सबके हाथ-मुँह धुलवाकर पान दिये गये। फिर सब लोग, जो जहाँ ठहरे थे, वहाँ चले गये।

दो०— बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ॥ ९९॥

फिर मुनियोंने लौटकर हिमवान्‌को लगन (लग्नपत्रिका) सुनायी और विवाहका समय देखकर देवताओंको बुला भेजा॥ ९९॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे॥
बेदी बेद बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥

सब देवताओंको आदरसहित बुलवा लिया और सबको यथायोग्य आसन दिये। वेदकी रीतिसे वेदी सजायी गयी और स्त्रियाँ सुन्दर श्रेष्ठ मङ्गल गीत गाने लगीं॥ १॥

सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥

वेदिकापर एक अत्यन्त सुन्दर दिव्य सिंहासन था, जिस [की सुन्दरता] का वर्णन नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह स्वयं ब्रह्माजीका बनाया हुआ था। ब्राह्मणोंको सिर नवाकर और हृदयमें अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके शिवजी उस सिंहासनपर बैठ गये॥ २॥

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं॥
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥

फिर मुनीश्वरोंने पार्वतीजीको बुलाया। सखियाँ शृङ्गार करके उन्हें ले आयीं। पार्वतीजीके रूपको देखते ही सब देवता मोहित हो गये। संसारमें ऐसा कवि कौन है जो उस सुन्दरताका वर्णन कर सके!॥ ३॥

जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥

पार्वतीजीको जगदम्बा और शिवजीकी पत्नी समझकर देवताओंने मन-ही-मन प्रणाम किया। भवानीजी सुन्दरताकी सीमा हैं। करोड़ों मुखोंसे भी उनकी शोभा नहीं कही जा सकती॥ ४॥

छं०—कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहाँ॥

जगज्जननी पार्वतीजीकी महान् शोभाका वर्णन करोड़ों मुखोंसे भी करते नहीं बनता। वेद, शेषजी और सरस्वतीजीतक उसे कहते हुए सकुचा जाते हैं, तब मन्दबुद्धि तुलसी किस गिनतीमें है। सुन्दरता और शोभाकी खान माता भवानी मण्डपके बीचमें, जहाँ शिवजी थे, वहाँ गयीं। वे संकोचके मारे पति (शिवजी) के चरणकमलोंको देख नहीं सकतीं, परन्तु उनका मनरूपी भौंरा तो वहीं [रस-पान कर रहा] था।

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥ १००॥

मुनियोंकी आज्ञासे शिवजी और पार्वतीजीने गणेशजीका पूजन किया। मनमें देवताओंको अनादि समझकर कोई इस बातको सुनकर शङ्का न करे [कि गणेशजी

तो शिव-पार्वतीकी सन्तान हैं, अभी विवाहसे पूर्व ही वे कहाँसे आ गये] ॥ १०० ॥

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥

वेदोंमें विवाहकी जैसी रीति कही गयी है, महामुनियोंने वह सभी रीति करवायी। पर्वतराज हिमाचलने हाथमें कुश लेकर तथा कन्याका हाथ पकड़कर उन्हें भवानी (शिवपत्नी) जानकर शिवजीको समर्पण किया॥ १ ॥

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
बेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥

जब महेश्वर (शिवजी) ने पार्वतीका पाणिग्रहण किया, तब [इन्द्रादि] सब देवता हृदयमें बड़े ही हर्षित हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और देवगण शिवजीका जय-जयकार करने लगे॥ २ ॥

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भै बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥

अनेकों प्रकारके बाजे बजने लगे। आकाशसे नाना प्रकारके फूलोंकी वर्षा हुई। शिव-पार्वतीका विवाह हो गया। सारे ब्रह्माण्डमें आनन्द भर गया॥ ३ ॥

दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

दासी, दास, रथ, घोड़े, हाथी, गायें, वस्त्र और मणि आदि अनेक प्रकारकी चीजें, अन्न तथा सोनेके बर्तन गाड़ियोंमें लदवाकर दहेजमें दिये, जिनका वर्णन नहीं हो सकता॥ ४ ॥

छं०—दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो॥

बहुत प्रकारका दहेज देकर, फिर हाथ जोड़कर हिमाचलने कहा—हे शङ्कर! आप पूर्णकाम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? [इतना कहकर] वे शिवजीके चरणकमल पकड़कर रह गये। तब कृपाके सागर शिवजीने अपने ससुरका सभी प्रकारसे समाधान किया। फिर प्रेमसे परिपूर्णहृदय मैनाजीने शिवजीके चरणकमल पकड़े [और कहा—]।

दो०—नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥ १०१ ॥

हे नाथ! यह उमा मुझे मेरे प्राणोंके समान [प्यारी] है। आप इसे अपने घरकी टहलनी बनाइयेगा और इसके सब अपराधोंको क्षमा करते रहियेगा। अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिये॥ १०१॥

बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई॥
जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही॥

शिवजीने बहुत तरहसे अपनी सासको समझाया। तब वे शिवजीके चरणोंमें सिर नवाकर घर गयीं। फिर माताने पार्वतीको बुला लिया और गोदमें बैठाकर यह सुन्दर सीख दी— ॥ १॥

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥

हे पार्वती! तू सदा शिवजीके चरणकी पूजा करना, नारियोंका यही धर्म है। उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है। इस प्रकारकी बातें कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू भर आये और उन्होंने कन्याको छातीसे चिपटा लिया॥ २॥

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी॥

[फिर बोलीं कि] विधाताने जगत्‌में स्त्रीजातिको क्यों पैदा किया? पराधीनको सपनेमें भी सुख नहीं मिलता। यों कहती हुई माता प्रेममें अत्यन्त विकल हो गयी, परन्तु कुसमय जानकर (दुःख करनेका अवसर न जानकर) उन्होंने धीरज धरा॥ ३॥

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेमु कछु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

मैना बार-बार मिलती हैं और [पार्वतीके] चरणोंको पकड़कर गिर पड़ती हैं। बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नहीं किया जाता। भवानी सब स्त्रियोंसे मिल-भेंटकर फिर अपनी माताके हृदयसे जा लिपटीं॥ ४॥

छं०— जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

पार्वतीजी मातासे फिर मिलकर चलीं, सब किसीने उन्हें योग्य आशीर्वाद दिये। पार्वतीजी फिर-फिरकर माताकी ओर देखती जाती थीं। तब सखियाँ उन्हें शिवजीके पास ले गयीं। महादेवजी सब याचकोंको सन्तुष्ट कर पार्वतीके साथ घर (कैलास) को चले। सब देवता प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे और आकाशमें सुन्दर नगाड़े बजने लगे।

दो०— चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु॥ १०२॥

तब हिमवान् अत्यन्त प्रेमसे शिवजीको पहुँचानेके लिये साथ चले। वृषकेतु (शिवजी) ने बहुत तरहसे उन्हें सन्तोष कराकर विदा किया॥ १०२॥

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई॥
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥

पर्वतराज हिमाचल तुरंत घर आये और उन्होंने सब पर्वतों और सरोवरोंको बुलाया। हिमवान्ने आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक सबकी विदाई की॥ १॥

जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी॥

जब शिवजी कैलास पर्वतपर पहुँचे, तब सब देवता अपने-अपने लोकोंको चले गये। [तुलसीदासजी कहते हैं कि] पार्वतीजी और शिवजी जगत्के माता-पिता हैं, इसलिये मैं उनके शृङ्गारका वर्णन नहीं करता॥ २॥

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥

शिव-पार्वती विविध प्रकारके भोग-विलास करते हुए अपने गणोंसहित कैलासपर रहने लगे। वे नित्य नये विहार करते थे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया॥ ३॥

तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥

तब छः मुखवाले पुत्र (स्वामिकार्तिक) का जन्म हुआ, जिन्होंने [बड़े होनेपर] युद्धमें तारकासुरको मारा। वेद, शास्त्र और पुराणोंमें स्वामिकार्तिकके जन्मकी कथा प्रसिद्ध है और सारा जगत् उसे जानता है॥ ४॥

छं०— जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं॥

षडानन (स्वामिकार्तिक)के जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थको सारा जगत् जानता है। इसलिये मैंने वृषकेतु (शिवजी) के पुत्रका चरित्र संक्षेपसे ही कहा है। शिव-पार्वतीके विवाहकी इस कथाको जो स्त्री-पुरुष कहेंगे और गायेंगे, वे कल्याणके कार्यों और विवाहादि मङ्गलोंमें सदा सुख पावेंगे।

दो०— चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु॥ १०३॥

गिरिजापति महादेवजीका चरित्र समुद्रके समान (अपार) है, उसका पार वेद भी नहीं पाते। तब अत्यन्त मन्दबुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है!॥ १०३॥

संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥

शिवजीके रसीले और सुहावने चरित्रको सुनकर मुनि भरद्वाजजीने बहुत ही सुख पाया। कथा सुननेकी उनकी लालसा बहुत बढ़ गयी। नेत्रोंमें जल भर आया तथा रोमावली खड़ी हो गयी॥ १॥

प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा॥

वे प्रेममें मुग्ध हो गये, मुखसे वाणी नहीं निकलती। उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए [और बोले—] हे मुनीश! अहा हा! तुम्हारा जन्म धन्य है; तुमको गौरीपति शिवजी प्राणोंके समान प्रिय हैं॥ २॥

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥

शिवजीके चरणकमलोंमें जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्रीरामचन्द्रजीको स्वप्नमें भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ श्रीशिवजीके चरणोंमें निष्कपट (विशुद्ध) प्रेम होना यही रामभक्तका लक्षण है॥ ३॥

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥

शिवजीके समान रघुनाथजी [की भक्ति] का व्रत धारण करनेवाला कौन है? जिन्होंने बिना ही पापके सती-जैसी स्त्रीको त्याग दिया और प्रतिज्ञा करके श्रीरघुनाथजीकी भक्तिको दिखा दिया। हे भाई! श्रीरामचन्द्रजीको शिवजीके समान और कौन प्यारा है?॥ ४॥

दो०— प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥ १०४॥

मैंने पहले ही शिवजीका चरित्र कहकर तुम्हारा भेद समझ लिया। तुम श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र सेवक हो और समस्त दोषोंसे रहित हो॥ १०४॥

मैं जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥

मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया। अब मैं श्रीरघुनाथजीकी लीला कहता हूँ, सुनो। हे मुनि! सुनो, आज तुम्हारे मिलनेसे मेरे मनमें जो आनन्द हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता॥ १॥

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥

हे मुनीश्वर! रामचरित्र अत्यन्त अपार है। सौ करोड़ शेषजी भी उसे नहीं कह सकते। तथापि जैसा मैंने सुना है, वैसा वाणीके स्वामी (प्रेरक) और हाथमें धनुष लिये हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके कहता हूँ॥ २॥

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

सरस्वतीजी कठपुतलीके समान हैं और अन्तर्यामी स्वामी श्रीरामचन्द्रजी [सूत पकड़कर कठपुतलीको नचानेवाले] सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर जिस कविपर वे कृपा करते हैं, उसके हृदयरूपी आँगनमें सरस्वतीको वे नचाया करते हैं॥ ३॥

प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥

उन्हीं कृपालु श्रीरघुनाथजीको मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हींके निर्मल गुणोंकी कथा कहता हूँ। कैलास पर्वतोंमें श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है, जहाँ शिव-पार्वतीजी सदा निवास करते हैं॥ ४॥

दो०— सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद॥ १०५॥

सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देवता, किन्नर और मुनियोंके समूह उस पर्वतपर रहते हैं। वे सब बड़े पुण्यात्मा हैं और आनन्दकन्द श्रीमहादेवजीकी सेवा करते हैं॥ १०५॥

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला॥

जो भगवान् विष्णु और महादेवजीसे विमुख हैं और जिनकी धर्ममें प्रीति नहीं है, वे लोग स्वप्नमें भी वहाँ नहीं जा सकते। उस पर्वतपर एक विशाल बरगदका पेड़ है, जो नित्य नवीन और सब काल (छहों ऋतुओं) में सुन्दर रहता है॥ १॥

त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ॥

वहाँ तीनों प्रकारकी (शीतल, मन्द और सुगन्ध) वायु बहती रहती है और उसकी छाया बड़ी ठंडी रहती है। वह शिवजीके विश्राम करनेका वृक्ष है, जिसे वेदोंने गाया है। एक बार प्रभु श्रीशिवजी उस वृक्षके नीचे गये और उसे देखकर उनके हृदयमें बहुत आनन्द हुआ॥ २॥

निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥

अपने हाथसे बाघम्बर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वभावसे ही (बिना किसी खास प्रयोजनके) वहाँ बैठ गये। कुन्दके पुष्प, चन्द्रमा और शंखके समान उनका गौर शरीर था। बड़ी लंबी भुजाएँ थीं और वे मुनियोंके-से (वल्कल) वस्त्र धारण किये हुए थे॥ ३॥

तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना॥
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबि हारी॥

उनके चरण नये (पूर्णरूपसे खिले हुए) लाल कमलके समान थे, नखोंकी ज्योति भक्तोंके हृदयका अन्धकार हरनेवाली थी। साँप और भस्म ही उनके भूषण थे और उन त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीका मुख शरद् (पूर्णिमा) के चन्द्रमाकी शोभाको भी हरनेवाला (फीकी करनेवाला) था॥ ४॥

दो०— जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल॥ १०६॥

उनके सिरपर जटाओंका मुकुट और गङ्गाजी [शोभायमान] थीं। कमलके समान बड़े-बड़े नेत्र थे। उनका नील कण्ठ था और वे सुन्दरताके भण्डार थे। उनके मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा शोभित था॥ १०६॥

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥
पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी॥

कामदेवके शत्रु शिवजी वहाँ बैठे हुए ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो शान्तरस ही शरीर धारण किये बैठा हो। अच्छा मौका जानकर शिवपत्नी माता पार्वतीजी उनके पास गयीं॥ १॥

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा॥
बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई॥

अपनी प्यारी पत्नी जानकर शिवजीने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और अपनी बायीं ओर बैठनेके लिये आसन दिया। पार्वतीजी प्रसन्न होकर शिवजीके पास बैठ गयीं। उन्हें पिछले जन्मकी कथा स्मरण हो आयी॥ २॥

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥

स्वामीके हृदयमें [अपने ऊपर पहलेकी अपेक्षा] अधिक प्रेम समझकर पार्वतीजी हँसकर प्रिय वचन बोलीं। [याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि] जो कथा सब लोगोंका हित करनेवाली है, उसे ही पार्वतीजी पूछना चाहती हैं॥ ३॥

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा॥

[पार्वतीजीने कहा—] हे संसारके स्वामी! हे मेरे नाथ! हे त्रिपुरासुरका वध

करनेवाले! आपकी महिमा तीनों लोकोंमें विख्यात है। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं॥ ४॥

दो०— प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम॥ १०७॥

हे प्रभो! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणस्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणोंके निधान हैं और योग, ज्ञान तथा वैराग्यके भण्डार हैं। आपका नाम शरणागतोंके लिये कल्पवृक्ष है॥ १०७॥

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥

हे सुखकी राशि! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी [या अपनी सच्ची दासी] जानते हैं, तो हे प्रभो! आप श्रीरघुनाथजीकी नाना प्रकारकी कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये॥ १॥

जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥

जिसका घर कल्पवृक्षके नीचे हो, वह भला दरिद्रतासे उत्पन्न दु:खको क्यों सहेगा? हे शशिभूषण! हे नाथ! हृदयमें ऐसा विचारकर मेरी बुद्धिके भारी भ्रमको दूर कीजिये॥ २॥

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥

हे प्रभो! जो परमार्थतत्त्व (ब्रह्म) के ज्ञाता और वक्ता मुनि हैं, वे श्रीरामचन्द्रजीको अनादि ब्रह्म कहते हैं; और शेष, सरस्वती, वेद और पुराण सभी श्रीरघुनाथजीका गुण गाते हैं॥ ३॥

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥

और हे कामदेवके शत्रु! आप भी दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते हैं। ये राम वही अयोध्याके राजाके पुत्र हैं? या अजन्मा, निर्गुण और अगोचर कोई और राम हैं?॥ ४॥

दो०— जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥ १०८॥

यदि वे राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे? [और यदि ब्रह्म हैं तो] स्त्रीके विरहमें उनकी मति बावली कैसे हो गयी? इधर उनके ऐसे चरित्र देखकर और उधर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यन्त चकरा रही है॥ १०८॥

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥

यदि इच्छारहित, व्यापक, समर्थ ब्रह्म कोई और है, तो हे नाथ! मुझे उसे समझाकर कहिये। मुझे नादान समझकर मनमें क्रोध न लाइये। जिस तरह मेरा मोह दूर हो, वही कीजिये॥ १॥

मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥

मैंने [पिछले जन्ममें] वनमें श्रीरामचन्द्रजीकी प्रभुता देखी थी, परन्तु अत्यन्त भयभीत होनेके कारण मैंने वह बात आपको सुनायी नहीं। तो भी मेरे मलिन मनको बोध न हुआ। उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया॥ २॥

अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥

अब भी मेरे मनमें कुछ सन्देह है। आप कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो! आपने उस समय मुझे बहुत तरहसे समझाया था [फिर भी मेरा सन्देह नहीं गया], हे नाथ! यह सोचकर मुझपर क्रोध न कीजिये॥ ३॥

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा॥

मुझे अब पहले-जैसा मोह नहीं है, अब तो मेरे मनमें रामकथा सुननेकी रुचि है। हे शेषनागको अलंकाररूपमें धारण करनेवाले देवताओंके नाथ! आप श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी पवित्र कथा कहिये॥ ४॥

दो०— बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥ १०९॥

मैं पृथ्वीपर सिर टेककर आपके चरणोंकी वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। आप वेदोंके सिद्धान्तको निचोड़कर श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन कीजिये॥ १०९॥

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

यद्यपि स्त्री होनेके कारण मैं उसे सुननेकी अधिकारिणी नहीं हूँ, तथापि मैं मन, वचन और कर्मसे आपकी दासी हूँ। संत लोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते॥ १॥

अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥

हे देवताओंके स्वामी! मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ, आप मुझपर दया करके श्रीरघुनाथजीकी कथा कहिये। पहले तो वह कारण विचारकर बतलाइये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है॥ २॥

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥

फिर हे प्रभु! श्रीरामचन्द्रजीके अवतार (जन्म) की कथा कहिये तथा उनका उदार बालचरित्र कहिये। फिर जिस प्रकार उन्होंने श्रीजानकीजीसे विवाह किया, वह कथा कहिये और फिर यह बतलाइये कि उन्होंने जो राज्य छोड़ा सो किस दोषसे॥ ३॥

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

हे नाथ! फिर उन्होंने वनमें रहकर जो अपार चरित्र किये तथा जिस तरह रावणको मारा, वह कहिये। हे सुखस्वरूप शङ्कर! फिर आप उन सारी लीलाओंको कहिये जो उन्होंने राज्य [सिंहासन] पर बैठकर की थीं॥ ४॥

दो०— बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम॥ ११०॥

हे कृपाधाम! फिर वह अद्भुत चरित्र कहिये जो श्रीरामचन्द्रजीने किया—वे रघुकुलशिरोमणि प्रजासहित किस प्रकार अपने धामको गये?॥ ११०॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥

हे प्रभु! फिर आप उस तत्त्वको समझाकर कहिये, जिसकी अनुभूतिमें ज्ञानी मुनिगण सदा मग्न रहते हैं; और फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यका विभागसहित वर्णन कीजिये॥ १॥

औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥

[इसके सिवा] श्रीरामचन्द्रजीके और भी जो अनेक रहस्य (छिपे हुए भाव अथवा चरित्र) हैं, उनको कहिये। हे नाथ! आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है। हे प्रभो! जो बात मैंने न भी पूछी हो, हे दयालु! उसे भी आप छिपा न रखियेगा॥ २॥

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥

वेदोंने आपको तीनों लोकोंका गुरु कहा है। दूसरे पामर जीव इस रहस्यको क्या जानें। पार्वतीजीके सहज सुन्दर और छलरहित (सरल) प्रश्न सुनकर शिवजीके मनको बहुत अच्छे लगे॥ ३॥

हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

श्रीमहादेवजीके हृदयमें सारे रामचरित्र आ गये। प्रेमके मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें जल भर आया। श्रीरघुनाथजीका रूप उनके हृदयमें आ गया, जिससे स्वयं परमानन्दस्वरूप शिवजीने भी अपार सुख पाया॥ ४॥

दो०—मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥ १११॥

शिवजी दो घड़ीतक ध्यानके रस (आनन्द) में डूबे रहे; फिर उन्होंने मनको बाहर खींचा और तब वे प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीका चरित्र वर्णन करने लगे॥ १११॥

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥

जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य मालूम होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सीमें साँपका भ्रम हो जाता है; और जिसके जान लेनेपर जगत्‌का उसी तरह लोप हो जाता है, जैसे जागनेपर स्वप्नका भ्रम जाता रहता है॥ १॥

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

मैं उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीके बालरूपकी वन्दना करता हूँ, जिनका नाम जपनेसे सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। मङ्गलके धाम, अमङ्गलके हरनेवाले और श्रीदशरथजीके आँगनमें खेलनेवाले वे (बालरूप) श्रीरामचन्द्रजी मुझपर कृपा करें॥ २॥

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥

त्रिपुरासुरका वध करनेवाले शिवजी श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके आनन्दमें भरकर अमृतके समान वाणी बोले—हे गिरिराजकुमारी पार्वती! तुम धन्य हो! धन्य हो!! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है॥ ३॥

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥

जो तुमने श्रीरघुनाथजीकी कथाका प्रसङ्ग पूछा है, जो कथा समस्त लोकोंके लिये जगत्‌को पवित्र करनेवाली गङ्गाजीके समान है। तुमने जगत्‌के कल्याणके लिये ही प्रश्न पूछे हैं। तुम श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम रखनेवाली हो॥ ४॥

दो०—राम कृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥ ११२॥

हे पार्वती! मेरे विचारमें तो श्रीरामजीकी कृपासे तुम्हारे मनमें स्वप्नमें भी शोक, मोह, सन्देह और भ्रम कुछ भी नहीं है॥ ११२॥

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥

फिर भी तुमने इसीलिये वही (पुरानी) शङ्का की है कि इस प्रसङ्गके कहने-सुननेसे सबका कल्याण होगा। जिन्होंने अपने कानोंसे भगवान्‌की कथा नहीं सुनी, उनके कानोंके छिद्र साँपके बिलके समान हैं॥ १॥

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥

जिन्होंने अपने नेत्रोंसे संतोंके दर्शन नहीं किये, उनके वे नेत्र मोरके पंखोंपर दीखनेवाली नकली आँखोंकी गिनतीमें हैं। वे सिर कड़वी तूँबीके समान हैं, जो श्रीहरि और गुरुके चरणतलपर नहीं झुकते॥ २॥

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

जिन्होंने भगवान्‌की भक्तिको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया, वे प्राणी जीते हुए ही मुर्देके समान हैं। जो जीभ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान नहीं करती, वह मेढककी जीभके समान है॥ ३॥

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला॥

वह हृदय वज्रके समान कड़ा और निष्ठुर है, जो भगवान्‌के चरित्र सुनकर हर्षित नहीं होता। हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजीकी लीला सुनो, यह देवताओंका कल्याण करनेवाली और दैत्योंको विशेषरूपसे मोहित करनेवाली है॥ ४॥

दो०— रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि॥ ११३॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कामधेनुके समान सेवा करनेसे सब सुखोंको देनेवाली है, और सत्पुरुषोंके समाज ही सब देवताओंके लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा!॥ ११३॥

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हाथकी सुन्दर ताली है, जो सन्देहरूपी पक्षियोंको उड़ा देती है। फिर रामकथा कलियुगरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुल्हाड़ी है। हे गिरिराजकुमारी! तुम इसे आदरपूर्वक सुनो॥ १॥

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

वेदोंने श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे हैं। जिस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उसी तरह उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनन्त हैं॥ २॥

तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई॥

तो भी तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर, जैसा कुछ मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसीके अनुसार मैं कहूँगा। हे पार्वती! तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक ही सुन्दर, सुखदायक और संतसम्मत है और मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा है,॥ ३॥

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

परन्तु हे पार्वती! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि वह तुमने मोहके वश होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा कि वे राम कोई और हैं, जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं—॥ ४॥

दो०— कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥ ११४॥

जो मोहरूपी पिशाचके द्वारा ग्रस्त हैं, पाखण्डी हैं, भगवान्‌के चरणोंसे विमुख हैं और जो झूठ-सच कुछ भी नहीं जानते, ऐसे अधम मनुष्य ही इस तरह कहते-सुनते हैं॥ ११४॥

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥

जो अज्ञानी, मूर्ख, अंधे और भाग्यहीन हैं और जिनके मनरूपी दर्पणपर विषयरूपी काई जमी हुई है; जो व्यभिचारी, छली और बड़े कुटिल हैं और जिन्होंने कभी स्वप्नमें भी संत-समाजके दर्शन नहीं किये;॥ १॥

कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥

और जिन्हें अपनी लाभ-हानि नहीं सूझती, वे ही ऐसी वेदविरुद्ध बातें कहा करते हैं। जिनका हृदयरूपी दर्पण मैला है और जो नेत्रोंसे हीन हैं, वे बेचारे श्रीरामचन्द्रजीका रूप कैसे देखें!॥ २॥

जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं॥

जिनको निर्गुण-सगुणका कुछ भी विवेक नहीं है, जो अनेक मनगढ़ंत बातें बका

करते हैं, जो श्रीहरिकी मायाके वशमें होकर जगत्‌में (जन्म-मृत्युके चक्रमें) भ्रमते फिरते हैं, उनके लिये कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है॥ ३॥

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥

जिन्हें वायुका रोग (सन्निपात, उन्माद आदि) हो गया हो, जो भूतके वश हो गये हैं और जो नशेमें चूर हैं, ऐसे लोग विचारकर वचन नहीं बोलते। जिन्होंने महामोहरूपी मदिरा पी रखी है, उनके कहनेपर कान न देना चाहिये॥ ४॥

सो०— अस निज हृदयँ बिचारि तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम॥ ११५॥

अपने हृदयमें ऐसा विचारकर सन्देह छोड़ दो और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको भजो। हे पार्वती! भ्रमरूपी अन्धकारके नाश करनेके लिये सूर्यकी किरणोंके समान मेरे वचनोंको सुनो!॥ ११५॥

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

सगुण और निर्गुणमें कुछ भी भेद नहीं है—मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तोंके प्रेमवश सगुण हो जाता है॥ १॥

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा॥

जो निर्गुण है, वही सगुण कैसे है? जैसे जल और ओलेमें भेद नहीं। (दोनों जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही हैं।) जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकारके मिटानेके लिये सूर्य है, उसके लिये मोहका प्रसंग भी कैसे कहा जा सकता है?॥ २॥

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥

श्रीरामचन्द्रजी सच्चिदानन्दस्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोहरूपी रात्रिका लवलेश भी नहीं है। वे स्वभावसे ही प्रकाशरूप और [षडैश्वर्ययुक्त] भगवान् हैं, वहाँ तो विज्ञानरूपी प्रात:काल भी नहीं होता। (अज्ञानरूपी रात्रि हो तब तो विज्ञानरूपी प्रात:काल हो; भगवान् तो नित्य ज्ञानस्वरूप हैं।)॥ ३॥

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अभिमान—ये सब जीवके धर्म हैं। श्रीरामचन्द्रजी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराणपुरुष हैं। इस बातको सारा जगत् जानता है॥ ४॥

दो०— पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥ ११६॥

जो [पुराण] पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाशके भण्डार हैं, सब रूपोंमें प्रकट हैं, जीव, माया और जगत् सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं— ऐसा कहकर शिवजीने उनको मस्तक नवाया॥ ११६॥

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥

अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रमको तो समझते नहीं और वे मूर्ख प्रभु श्रीरामचन्द्रजीपर उसका आरोप करते हैं, जैसे आकाशमें बादलोंका पर्दा देखकर कुविचारी (अज्ञानी) लोग कहते हैं कि बादलोंने सूर्यको ढक लिया॥ १॥

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥

जो मनुष्य आँखमें उँगली लगाकर देखता है, उसके लिये तो दो चन्द्रमा प्रकट (प्रत्यक्ष) हैं। हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें इस प्रकार मोहकी कल्पना करना वैसा ही है जैसा आकाशमें अन्धकार, धूएँ और धूलका सोहना (दीखना)। [आकाश जैसे निर्मल और निर्लेप है, उसको कोई मलिन या स्पर्श नहीं कर सकता, इसी प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नित्य निर्मल और निर्लेप हैं]॥ २॥

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके देवता और जीवात्मा—ये सब एककी सहायतासे एक चेतन होते हैं। (अर्थात् विषयोंका प्रकाश इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंका इन्द्रियोंके देवताओंसे और इन्द्रियदेवताओंका चेतन जीवात्मासे प्रकाश होता है।) इन सबका जो परम प्रकाशक है (अर्थात् जिससे इन सबका प्रकाश होता है), वही अनादि ब्रह्म अयोध्यानरेश श्रीरामचन्द्रजी हैं॥ ३॥

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

यह जगत् प्रकाश्य है और श्रीरामचन्द्रजी इसके प्रकाशक हैं। वे मायाके स्वामी और ज्ञान तथा गुणोंके धाम हैं। जिनकी सत्तासे, मोहकी सहायता पाकर जड़ माया भी सत्य-सी भासित होती है॥ ४॥

दो०— रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥ ११७॥

जैसे सीपमें चाँदीकी और सूर्यकी किरणोंमें पानीकी [बिना हुए भी] प्रतीति होती है।

यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालोंमें झूठ है, तथापि इस भ्रमको कोई हटा नहीं सकता॥ ११७॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥

इसी तरह यह संसार भगवान्‌के आश्रित रहता है। यद्यपि यह असत्य है, तो भी दुःख तो देता ही है; जिस तरह स्वप्नमें कोई सिर काट ले तो बिना जागे वह दुःख दूर नहीं होता॥ १॥

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥

हे पार्वती! जिनकी कृपासे इस प्रकारका भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु श्रीरघुनाथजी हैं। जिनका आदि और अन्त किसीने नहीं [जान] पाया। वेदोंने अपनी बुद्धिसे अनुमान करके इस प्रकार (नीचे लिखे अनुसार) गाया है—॥ २॥

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

वह (ब्रह्म) बिना ही पैरके चलता है, बिना ही कानके सुनता है, बिना ही हाथके नाना प्रकारके काम करता है, बिना मुँह (जिह्वा) के ही सारे (छहों) रसोंका आनन्द लेता है और बिना ही वाणीके बहुत योग्य वक्ता है॥ ३॥

तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना ही आँखोंके देखता है और बिना ही नाकके सब गन्धोंको ग्रहण करता है (सूँघता है)। उस ब्रह्मकी करनी सभी प्रकारसे ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती॥ ४॥

दो०— जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥ ११८॥

जिसका वेद और पण्डित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि जिसका ध्यान धरते हैं, वही दशरथनन्दन, भक्तोंके हितकारी, अयोध्याके स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं॥ ११८॥

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

[हे पार्वती!] जिनके नामके बलसे काशीमें मरते हुए प्राणीको देखकर मैं उसे [राममन्त्र देकर] शोकरहित कर देता हूँ (मुक्त कर देता हूँ), वही मेरे प्रभु रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी जड़-चेतनके स्वामी और सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले हैं॥ १॥

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

विवश होकर (बिना इच्छाके) भी जिनका नाम लेनेसे मनुष्योंके अनेक जन्मोंमें किये हुए पाप जल जाते हैं। फिर जो मनुष्य आदरपूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे तो संसाररूपी [दुस्तर] समुद्रको गायके खुरसे बने हुए गड्ढेके समान (अर्थात् बिना किसी परिश्रमके) पार कर जाते हैं॥ २॥

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥

हे पार्वती! वही परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं। उनमें भ्रम [देखनेमें आता] है, तुम्हारा ऐसा कहना अत्यन्त ही अनुचित है। इस प्रकारका सन्देह मनमें लाते ही मनुष्यके ज्ञान, वैराग्य आदि सारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं॥ ३॥

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥

शिवजीके भ्रमनाशक वचनोंको सुनकर पार्वतीजीके सब कुतर्कोंकी रचना मिट गयी। श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें उनका प्रेम और विश्वास हो गया और कठिन असम्भावना (जिसका होना सम्भव नहीं, ऐसी मिथ्या कल्पना) जाती रही॥ ४॥

दो०— पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि॥ ११९॥

बार-बार स्वामी (शिवजी) के चरणकमलोंको पकड़कर और अपने कमलके समान हाथोंको जोड़कर पार्वतीजी मानो प्रेमरसमें सानकर सुन्दर वचन बोलीं॥ ११९॥

ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥

आपकी चन्द्रमाकी किरणोंके समान शीतल वाणी सुनकर मेरा अज्ञानरूपी शरद्-ऋतु (क्वार) की धूपका भारी ताप मिट गया। हे कृपालु! आपने मेरा सब सन्देह हर लिया, अब श्रीरामचन्द्रजीका यथार्थ स्वरूप मेरी समझमें आ गया॥ १॥

नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥

हे नाथ! आपकी कृपासे अब मेरा विषाद जाता रहा और आपके चरणोंके अनुग्रहसे मैं सुखी हो गयी। यद्यपि मैं स्त्री होनेके कारण स्वभावसे ही मूर्ख और ज्ञानहीन हूँ, तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जानकर— ॥ २॥

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥

हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो जो बात मैंने पहले आपसे पूछी थी, वही कहिये। [यह सत्य है कि] श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्म हैं, चिन्मय (ज्ञानस्वरूप) हैं,

अविनाशी हैं, सबसे रहित और सबके हृदयरूपी नगरीमें निवास करनेवाले हैं॥ ३॥

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता॥

फिर हे नाथ! उन्होंने मनुष्यका शरीर किस कारणसे धारण किया? हे धर्मकी ध्वजा धारण करनेवाले प्रभो! यह मुझे समझाकर कहिये। पार्वतीके अत्यन्त नम्र वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजीकी कथामें उनका विशुद्ध प्रेम देखकर— ॥ ४॥

दो०— हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान॥ १२० (क)॥

तब कामदेवके शत्रु, स्वाभाविक ही सुजान, कृपानिधान शिवजी मनमें बहुत ही हर्षित हुए और बहुत प्रकारसे पार्वतीकी बड़ाई करके फिर बोले— ॥ १२० (क)॥

नवाह्नपारायण, पहला विश्राम
मासपारायण, चौथा विश्राम

सो०— सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़॥ १२० (ख)॥

हे पार्वती! निर्मल रामचरितमानसकी वह मङ्गलमयी कथा सुनो जिसे काकभुशुण्डिने विस्तारसे कहा और पक्षियोंके राजा गरुड़जीने सुना था॥ १२० (ख)॥

सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ॥ १२० (ग)॥

वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ, वह मैं आगे कहूँगा। अभी तुम श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका परम सुन्दर और पवित्र (पापनाशक) चरित्र सुनो॥ १२० (ग)॥

हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु॥ १२० (घ)॥

श्रीहरिके गुण, नाम, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और असीम हैं। फिर भी हे पार्वती! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूँ, तुम आदरपूर्वक सुनो॥ १२० (घ)॥

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

हे पार्वती! सुनो, वेद-शास्त्रोंने श्रीहरिके सुन्दर, विस्तृत और निर्मल चरित्रोंका गान किया है। हरिका अवतार जिस कारणसे होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता (अनेकों कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें कोई जान ही नहीं सकता)॥ १॥

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥

हे सयानी! सुनो, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणीसे श्रीरामचन्द्रजीकी तर्कना नहीं की जा सकती। तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण—अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा कुछ कहते हैं, ॥ २ ॥

तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥

और जैसा कुछ मेरी समझमें आता है, हे सुमुखि! वही कारण मैं तुमको सुनाता हूँ। जब-जब धर्मका ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं, ॥ ३ ॥

करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँतिके [दिव्य] शरीर धारण कर सज्जनोंकी पीड़ा हरते हैं ॥ ४ ॥

दो०— असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥ १२१ ॥

वे असुरोंको मारकर देवताओंको स्थापित करते हैं, अपने [श्वासरूप] वेदोंकी मर्यादाकी रक्षा करते हैं और जगत्‌में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका यह कारण है॥ १२१ ॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

उसी यशको गा-गाकर भक्तजन भवसागरसे तर जाते हैं। कृपासागर भगवान् भक्तोंके हितके लिये शरीर धारण करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके जन्म लेनेके अनेक कारण हैं, जो एक-से-एक बढ़कर विचित्र हैं॥ १ ॥

जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥

हे सुन्दर बुद्धिवाली भवानी! मैं उनके दो-एक जन्मोंका विस्तारसे वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। श्रीहरिके जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं॥ २ ॥

बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥

उन दोनों भाइयोंने ब्राह्मण (सनकादि) के शापसे असुरोंका तामसी शरीर पाया।

एकका नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरेका हिरण्याक्ष। ये देवराज इन्द्रके गर्वको छुड़ानेवाले सारे जगत्‌में प्रसिद्ध हुए॥ ३॥

बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥

वे युद्धमें विजय पानेवाले विख्यात वीर थे। इनमेंसे एक (हिरण्याक्ष) को भगवान्‌ने वराह (सूअर)का शरीर धारण करके मारा; फिर दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरसिंहरूप धारण करके वध किया और अपने भक्त प्रह्लादका सुन्दर यश फैलाया॥ ४॥

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥ १२२॥

वे ही [दोनों] जाकर देवताओंको जीतनेवाले तथा बड़े योद्धा, रावण और कुम्भकर्ण नामक बड़े बलवान् और महावीर राक्षस हुए, जिन्हें सारा जगत् जानता है॥ १२२॥

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

भगवान्‌के द्वारा मारे जानेपर भी वे (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) इसीलिये मुक्त नहीं हुए कि ब्राह्मणके वचन (शाप) का प्रमाण तीन जन्मके लिये था। अतः एक बार उनके कल्याणके लिये भक्तप्रेमी भगवान्‌ने फिर अवतार लिया॥ १॥

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥

वहाँ (उस अवतारमें) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौसल्याके नामसे प्रसिद्ध थे। एक कल्पमें इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसारमें पवित्र लीलाएँ कीं॥ २॥

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥

एक कल्पमें सब देवताओंको जलन्धर दैत्यसे युद्धमें हार जानेके कारण दुःखी देखकर शिवजीने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया; पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था॥ ३॥

परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी॥

उस दैत्यराजकी स्त्री परम सती (बड़ी ही पतिव्रता) थी। उसीके प्रतापसे त्रिपुरासुर [जैसे अजेय शत्रु] का विनाश करनेवाले शिवजी भी उस दैत्यको नहीं जीत सके॥ ४॥

दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥ १२३॥

प्रभुने छलसे उस स्त्रीका व्रत भङ्ग कर देवताओंका काम किया। जब उस स्त्रीने

यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान्‌को शाप दिया॥ १२३॥

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥

लीलाओंके भण्डार कृपालु हरिने उस स्त्रीके शापको प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया)। वही जलन्धर उस कल्पमें रावण हुआ, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें मारकर परमपद दिया॥ १॥

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥

एक जन्मका कारण यह था, जिससे श्रीरामचन्द्रजीने मनुष्यदेह धारण किया। हे भरद्वाज मुनि! सुनो, प्रभुके प्रत्येक अवतारकी कथाका कवियोंने नाना प्रकारसे वर्णन किया है॥ २॥

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥

एक बार नारदजीने शाप दिया, अतः एक कल्पमें उसके लिये अवतार हुआ। यह बात सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुईं [और बोलीं कि] नारदजी तो विष्णुभक्त और ज्ञानी हैं॥ ३॥

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥

मुनिने भगवान्‌को शाप किस कारणसे दिया? लक्ष्मीपति भगवान्‌ने उनका क्या अपराध किया था? हे पुरारि (शङ्करजी)! यह कथा मुझसे कहिये। मुनि नारदके मनमें मोह होना बड़े आश्चर्यकी बात है॥ ४॥

दो०—बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥ १२४ (क)॥

तब महादेवजीने हँसकर कहा—न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्रीरघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है॥ १२४ (क)॥

सो०—कहउँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद॥ १२४ (ख)॥

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—] हे भरद्वाज! मैं श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा कहता हूँ, तुम आदरसे सुनो। तुलसीदासजी कहते हैं—मान और मदको छोड़कर आवागमनका नाश करनेवाले रघुनाथजीको भजो॥ १२४ (ख)॥

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥

हिमालय पर्वतमें एक बड़ी पवित्र गुफा थी। उसके समीप ही सुन्दर गङ्गाजी बहती थीं। वह परम पवित्र सुन्दर आश्रम देखनेपर नारदजीके मनको बहुत ही सुहावना लगा॥ १॥

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥

पर्वत, नदी और वनके [सुन्दर] विभागोंको देखकर नारदजीका लक्ष्मीकान्त भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो गया। भगवान्‌का स्मरण करते ही उन (नारद मुनि) के शापकी (जो शाप उन्हें दक्ष प्रजापतिने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थानपर नहीं ठहर सकते थे) गति रुक गयी और मनके स्वाभाविक ही निर्मल होनेसे उनकी समाधि लग गयी॥ २॥

मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू॥

नारद मुनिकी [यह तपोमयी] स्थिति देखकर देवराज इन्द्र डर गया। उसने कामदेवको बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया [और कहा कि] मेरे [हितके] लिये तुम अपने सहायकोंसहित [नारदकी समाधि भङ्ग करनेको] जाओ। [यह सुनकर] मीनध्वज कामदेव मनमें प्रसन्न होकर चला॥ ३॥

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥

इन्द्रके मनमें यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का निवास (राज्य) चाहते हैं। जगत्‌में जो कामी और लोभी होते हैं, वे कुटिल कौएकी तरह सबसे डरते हैं॥ ४॥

दो०— सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज॥ १२५॥

जैसे मूर्ख कुत्ता सिंहको देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूर्ख यह समझे कि कहीं उस हड्डीको सिंह छीन न ले, वैसे ही इन्द्रको [नारदजी मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते] लाज नहीं आयी॥ १२५॥

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥

जब कामदेव उस आश्रममें गया, तब उसने अपनी मायासे वहाँ वसन्त-ऋतुको उत्पन्न किया। तरह-तरहके वृक्षोंपर रंग-बिरंगे फूल खिल गये, उनपर कोयलें कूकने लगीं और भौंरे गुंजार करने लगे॥ १॥

चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना॥

कामाग्निको भड़कानेवाली तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द और सुगन्ध) सुहावनी हवा चलने लगी। रम्भा आदि नवयुवती देवाङ्गनाएँ, जो सब-की-सब कामकलामें निपुण थीं, ॥ २ ॥

करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥

वे बहुत प्रकारकी तानोंकी तरङ्गके साथ गाने लगीं और हाथमें गेंद लेकर नाना प्रकारके खेल खेलने लगीं। कामदेव अपने इन सहायकोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकारके मायाजाल किये॥ ३ ॥

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

परन्तु कामदेवकी कोई भी कला मुनिपर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही [नाशके] भयसे डर गया। लक्ष्मीपति भगवान् जिसके बड़े रक्षक हों, भला, उसकी सीमा (मर्यादा)को कोई दबा सकता है ?॥ ४ ॥

दो०— सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥ १२६ ॥

तब अपने सहायकोंसमेत कामदेवने बहुत डरकर और अपने मनमें हार मानकर बहुत ही आर्त (दीन) वचन कहते हुए मुनिके चरणोंको जा पकड़ा॥ १२६ ॥

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥

नारदजीके मनमें कुछ भी क्रोध न आया। उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेवका समाधान किया। तब मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकोंसहित लौट गया॥ १ ॥

मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥

देवराज इन्द्रकी सभामें जाकर उसने मुनिकी सुशीलता और अपनी करतूत सब कही, जिसे सुनकर सबके मनमें आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुनिकी बड़ाई करके श्रीहरिको सिर नवाया॥ २ ॥

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥

तब नारदजी शिवजीके पास गये। उनके मनमें इस बातका अहंकार हो गया कि हमने कामदेवको जीत लिया। उन्होंने कामदेवके चरित्र शिवजीको सुनाये और महादेवजीने उन (नारदजी) को अत्यन्त प्रिय जानकर [इस प्रकार] शिक्षा दी—॥ ३ ॥

बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥

हे मुनि! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूँ कि जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनायी है, उस तरह भगवान् श्रीहरिको कभी मत सुनाना। चर्चा भी चले तब भी इसको छिपा जाना॥ ४॥

दो०— संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥ १२७॥

यद्यपि शिवजीने यह हितकी शिक्षा दी, पर नारदजीको वह अच्छी न लगी। हे भरद्वाज! अब कौतुक (तमाशा) सुनो। हरिकी इच्छा बड़ी बलवान् है॥ १२७॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥

श्रीरामचन्द्रजी जो करना चाहते हैं, वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। श्रीशिवजीके वचन नारदजीके मनको अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँसे ब्रह्मलोकको चल दिये॥ १॥

एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना॥
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥

एक बार गानविद्यामें निपुण मुनिनाथ नारदजी हाथमें सुन्दर वीणा लिये, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागरको गये, जहाँ वेदोंके मस्तकस्वरूप (मूर्तिमान् वेदान्ततत्त्व) लक्ष्मीनिवास भगवान् नारायण रहते हैं॥ २॥

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥

रमानिवास भगवान् उठकर बड़े आनन्दसे उनसे मिले और ऋषि (नारदजी) के साथ आसनपर बैठ गये। चराचरके स्वामी भगवान् हँसकर बोले—हे मुनि! आज आपने बहुत दिनोंपर दया की॥ ३॥

काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥

यद्यपि श्रीशिवजीने उन्हें पहलेसे ही बरज रखा था, तो भी नारदजीने कामदेवका सारा चरित्र भगवान्‌को कह सुनाया। श्रीरघुनाथजीकी माया बड़ी ही प्रबल है। जगत्‌में ऐसा कौन जन्मा है जिसे वह मोहित न कर दे॥ ४॥

दो०— रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥ १२८॥

भगवान् रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले—हे मुनिराज! आपका स्मरण करनेसे

दूसरोंके मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं [फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है?] ॥ १२८ ॥

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥

हे मुनि! सुनिये, मोह तो उसके मनमें होता है जिसके हृदयमें ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्यव्रतमें तत्पर और बड़े धीरबुद्धि हैं। भला, कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है?॥ १ ॥

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥

नारदजीने अभिमानके साथ कहा—भगवन्! यह सब आपकी कृपा है। करुणानिधान भगवान्‌ने मनमें विचारकर देखा कि इनके मनमें गर्वके भारी वृक्षका अंकुर पैदा हो गया है॥ २ ॥

बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥

मैं उसे तुरंत ही उखाड़ फेंकूँगा, क्योंकि सेवकोंका हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा जिससे मुनिका कल्याण और मेरा खेल हो॥ ३ ॥

तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

तब नारदजी भगवान्‌के चरणोंमें सिर नवाकर चले। उनके हृदयमें अभिमान और भी बढ़ गया। तब लक्ष्मीपति भगवान्‌ने अपनी मायाको प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करनी सुनो॥ ४ ॥

दो०— बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार॥ १२९ ॥

उस (हरिमाया) ने रास्तेमें सौ योजन (चार सौ कोस) का एक नगर रचा। उस नगरकी भाँति-भाँतिकी रचनाएँ लक्ष्मीनिवास भगवान् विष्णुके नगर (वैकुण्ठ) से भी अधिक सुन्दर थीं॥ १२९ ॥

बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥

उस नगरमें ऐसे सुन्दर नर-नारी बसते थे मानो बहुत-से कामदेव और [उसकी स्त्री] रति ही मनुष्य-शरीर धारण किये हुए हों। उस नगरमें शीलनिधि नामका राजा रहता था, जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और सेनाके समूह (टुकड़ियाँ) थे॥ १ ॥

सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥

उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रोंके समान था। वह रूप, तेज, बल और नीतिका घर था। उसके विश्वमोहिनी नामकी एक [ऐसी रूपवती] कन्या थी, जिसके रूपको देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जायँ॥ २॥

सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥

वह सब गुणोंकी खान भगवान्‌की माया ही थी। उसकी शोभाका वर्णन कैसे किया जा सकता है। वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आये हुए थे॥ ३॥

मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूपगृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥

खिलवाड़ी मुनि नारदजी उस नगरमें गये और नगरवासियोंसे उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजाके महलमें आये। राजाने पूजा करके मुनिको [आसनपर] बैठाया॥ ४॥

दो०— आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि॥ १३०॥

[फिर] राजाने राजकुमारीको लाकर नारदजीको दिखलाया [और पूछा कि—] हे नाथ! आप अपने हृदयमें विचारकर इसके सब गुण-दोष कहिये॥ १३०॥

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने॥

उसके रूपको देखकर मुनि वैराग्य भूल गये और बड़ी देरतक उसकी ओर देखते ही रह गये। उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गये और हृदयमें हर्षित हुए, पर प्रकटरूपमें उन लक्षणोंको नहीं कहा॥ १॥

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥

[लक्षणोंको सोचकर वे मनमें कहने लगे कि] जो इसे ब्याहेगा, वह अमर हो जायगा और रणभूमिमें कोई उसे जीत न सकेगा। यह शीलनिधिकी कन्या जिसको वरेगी, सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे॥ २॥

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥

सब लक्षणोंको विचारकर मुनिने अपने हृदयमें रख लिया और राजासे कुछ अपनी

ओरसे बनाकर कह दिया। राजासे लड़कीके सुलक्षण कहकर नारदजी चल दिये। पर उनके मनमें यह चिन्ता थी कि— ॥ ३ ॥

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥

मैं जाकर सोच-विचारकर अब वही उपाय करूँ, जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तपसे तो कुछ हो नहीं सकता। हे विधाता! मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी?॥ ४ ॥

दो०— एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥ १३१ ॥

इस समय तो बड़ी भारी शोभा और विशाल(सुन्दर)रूप चाहिये, जिसे देखकर राजकुमारी मुझपर रीझ जाय और तब जयमाल [मेरे गलेमें] डाल दे॥ १३१ ॥

हरि सन मागौं सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

[एक काम करूँ कि] भगवान्‌से सुन्दरता माँगूँ; पर भाई! उनके पास जानेमें तो बहुत देर हो जायगी। किन्तु श्रीहरिके समान मेरा हितू भी कोई नहीं है, इसलिये इस समय वे ही मेरे सहायक हों॥ १ ॥

बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने॥

उस समय नारदजीने भगवान्‌की बहुत प्रकारसे विनती की। तब लीलामय कृपालु प्रभु [वहीं] प्रकट हो गये। स्वामीको देखकर नारदजीके नेत्र शीतल हो गये और वे मनमें बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जायगा॥ २ ॥

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥

नारदजीने बहुत आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनायी [और प्रार्थना की कि] कृपा कीजिये और कृपा करके मेरे सहायक बनिये। हे प्रभो! आप अपना रूप मुझको दीजिये और किसी प्रकार मैं उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता॥ ३ ॥

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला॥

हे नाथ! जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिये! मैं आपका दास हूँ। अपनी मायाका विशाल बल देख दीनदयालु भगवान् मन-ही-मन हँसकर बोले— ॥ ४ ॥

दो०— जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥ १३२ ॥

हे नारदजी! सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता॥ १३२॥

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ॥

हे योगी मुनि! सुनिये, रोगसे व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता। इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करनेकी ठान ली है। ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये॥ १॥

माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई॥

[भगवान्‌की] मायाके वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान्‌की अगूढ़ (स्पष्ट) वाणीको भी न समझ सके। ऋषिराज नारदजी तुरंत वहाँ गये जहाँ स्वयंवरकी भूमि बनायी गयी थी॥ २॥

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥

राजालोग खूब सज-धजकर समाजसहित अपने-अपने आसनपर बैठे थे। मुनि (नारद) मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुन्दर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरेको न वरेगी॥ ३॥

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥

कृपानिधान भगवान्‌ने मुनिके कल्याणके लिये उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता; पर यह चरित कोई भी न जान सका। सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया॥ ४॥

दो०— रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ।
बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ॥ १३३॥

वहाँ दो शिवजीके गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मणका वेष बनाकर सारी लीला देखते-फिरते थे। वे भी बड़े मौजी थे॥ १३३॥

जेहिं समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ॥

नारदजी अपने हृदयमें रूपका बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में जाकर बैठे थे, ये शिवजीके दोनों गण भी वहीं बैठ गये। ब्राह्मणके वेषमें होनेके कारण उनकी इस चालको कोई न जान सका॥ १॥

करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥

वे नारदजीको सुना-सुनाकर व्यंग्य वचन कहते थे—भगवान्‌ने इनको अच्छी 'सुन्दरता' दी है। इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ ही जायगी और 'हरि' (वानर) जानकर इन्हींको खास तौरसे वरेगी॥ २॥

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभु गन अति सचु पाएँ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी॥

नारद मुनिको मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरेके हाथ (मायाके वश) में था। शिवजीके गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रममें सनी हुई होनेके कारण वे बातें उनकी समझमें नहीं आती थीं (उनकी बातोंको वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे)॥ ३॥

काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही॥

इस विशेष चरितको और किसीने नहीं जाना, केवल राजकन्याने [नारदजीका] वह रूप देखा। उनका बन्दरका-सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्याके हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो गया॥ ४॥

दो०— सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल॥ १३४॥

तब राजकुमारी सखियोंको साथ लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही है। वह अपने कमल-जैसे हाथोंमें जयमाला लिये सब राजाओंको देखती हुई घूमने लगी॥ १३४॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥

जिस ओर नारदजी [रूपके गर्वमें] फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं ताका। नारद मुनि बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी दशा देखकर शिवजीके गण मुसकराते हैं॥ १॥

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥

कृपालु भगवान् भी राजाका शरीर धारण कर वहाँ जा पहुँचे। राजकुमारीने हर्षित होकर उनके गलेमें जयमाला डाल दी। लक्ष्मीनिवास भगवान् दुलहिनको ले गये। सारी राजमण्डली निराश हो गयी॥ २॥

मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥

मोहके कारण मुनिकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, इससे वे [राजकुमारीको गयी

देख] बहुत ही विकल हो गये। मानो गाँठसे छूटकर मणि गिर गयी हो। तब शिवजीके गणोंने मुसकराकर कहा—जाकर दर्पणमें अपना मुँह तो देखिये!॥ ३॥

अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनिने जलमें झाँककर अपना मुँह देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिवजीके उन गणोंको अत्यन्त कठोर शाप दिया॥ ४॥

दो०— होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥ १३५॥

तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चखो। अब फिर किसी मुनिकी हँसी करना॥ १३५॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥

मुनिने फिर जलमें देखा, तो उन्हें अपना (असली) रूप प्राप्त हो गया; तब भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उनके ओंठ फड़क रहे थे और मनमें क्रोध [भरा] था। तुरंत ही वे भगवान् कमलापतिके पास चले॥ १॥

देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥

[मनमें सोचते जाते थे—] जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगत्‌में मेरी हँसी करायी। दैत्योंके शत्रु भगवान् हरि उन्हें बीच रास्तेमें ही मिल गये। साथमें लक्ष्मीजी और वही राजकुमारी थीं॥ २॥

बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥

देवताओंके स्वामी भगवान्‌ने मीठी वाणीमें कहा—हे मुनि! व्याकुलकी तरह कहाँ चले? ये शब्द सुनते ही नारदको बड़ा क्रोध आया; मायाके वशीभूत होनेके कारण मनमें चेत नहीं रहा॥ ३॥

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥

[मुनिने कहा—] तुम दूसरोंकी सम्पदा नहीं देख सकते, तुम्हारे ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने शिवजीको बावला बना दिया और देवताओंको प्रेरित करके उन्हें विषपान कराया॥ ४॥

दो०— असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु॥ १३६॥

असुरोंको मदिरा और शिवजीको विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर [कौस्तुभ] मणि ले ली। तुम बड़े धोखेबाज और मतलबी हो। सदा कपटका व्यवहार करते हो॥ १३६॥

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू॥

तुम परम स्वतन्त्र हो, सिरपर तो कोई है नहीं, इससे जब जो मनको भाता है, [स्वच्छन्दतासे] वही करते हो। भलेको बुरा और बुरेको भला कर देते हो। हृदयमें हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लाते॥ १॥

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा॥

सबको ठग-ठगकर परक गये हो और अत्यन्त निडर हो गये हो; इसीसे [ठगनेके काममें] मनमें सदा उत्साह रहता है। शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते। अबतक तुमको किसीने ठीक नहीं किया था॥ २॥

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥

अबकी तुमने अच्छे घर बैना दिया है (मेरे-जैसे जबर्दस्त आदमीसे छेड़खानी की है)। अतः अपने कियेका फल अवश्य पाओगे। जिस शरीरको धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है॥ ३॥

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥

तुमने हमारा रूप बन्दरका-सा बना दिया था, इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। [मैं जिस स्त्रीको चाहता था, उससे मेरा वियोग कराकर] तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्रीके वियोगमें दुःखी होगे॥ ४॥

दो०— श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि॥ १३७॥

शापको सिरपर चढ़ाकर, हृदयमें हर्षित होते हुए प्रभुने नारदजीसे बहुत विनती की और कृपानिधान भगवान्‌ने अपनी मायाकी प्रबलता खींच ली॥ १३७॥

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥

जब भगवान्‌ने अपनी मायाको हटा लिया, तब वहाँ न लक्ष्मी ही रह गयीं, न राजकुमारी ही। तब मुनिने अत्यन्त भयभीत होकर श्रीहरिके चरण पकड़ लिये और कहा—हे शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले! मेरी रक्षा कीजिये॥ १॥

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥

हे कृपालु! मेरा शाप मिथ्या हो जाय। तब दीनोंपर दया करनेवाले भगवान्‌ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा [से हुआ] है। मुनिने कहा—मैंने आपको अनेक खोटे वचन कहे हैं। मेरे पाप कैसे मिटेंगे?॥ २॥

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥

[भगवान्‌ने कहा—] जाकर शङ्करजीके शतनामका जप करो, इससे हृदयमें तुरंत शान्ति होगी। शिवजीके समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वासको भूलकर भी न छोड़ना॥ ३॥

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई॥

हे मुनि! पुरारि (शिवजी) जिसपर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदयमें ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वीपर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी॥ ४॥

दो०— बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान॥ १३८॥

बहुत प्रकारसे मुनिको समझा-बुझाकर (ढाढ़स देकर) तब प्रभु अन्तर्धान हो गये और नारदजी श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान करते हुए सत्यलोक (ब्रह्मलोक) को चले॥ १३८॥

हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी॥
अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुनाए॥

शिवजीके गणोंने जब मुनिको मोहरहित और मनमें बहुत प्रसन्न होकर मार्गमें जाते हुए देखा तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारदजीके पास आये और उनके चरण पकड़कर दीन वचन बोले—॥ १॥

हर गन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥

हे मुनिराज! हम ब्राह्मण नहीं हैं, शिवजीके गण हैं। हमने बड़ा अपराध किया, जिसका फल हमने पा लिया। हे कृपालु! अब शाप दूर करनेकी कृपा कीजिये। दीनोंपर दया करनेवाले नारदजीने कहा—॥ २॥

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुजबल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ॥

तुम दोनों जाकर राक्षस होओ; तुम्हें महान् ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्ति हो। तुम अपनी भुजाओंके बलसे जब सारे विश्वको जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु मनुष्यका शरीर धारण करेंगे॥ ३॥

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥

युद्धमें श्रीहरिके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसारमें जन्म नहीं लोगे। वे दोनों मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए॥ ४॥

दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुबि भार॥ १३९॥

देवताओंको प्रसन्न करनेवाले, सज्जनोंको सुख देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवान्‌ने एक कल्पमें इसी कारण मनुष्यका अवतार लिया था॥ १३९॥

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाबिधि करहीं॥

इस प्रकार भगवान्‌के अनेकों सुन्दर, सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म हैं। प्रत्येक कल्पमें जब-जब भगवान् अवतार लेते हैं और नाना प्रकारकी सुन्दर लीलाएँ करते हैं, ॥ १॥

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥

तब-तब मुनीश्वरोंने परम पवित्र काव्यरचना करके उनकी कथाओंका गान किया है और भाँति-भाँतिके अनुपम प्रसंगोंका वर्णन किया है, जिनको सुनकर समझदार (विवेकी) लोग आश्चर्य नहीं करते॥ २॥

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥

श्रीहरि अनन्त हैं (उनका कोई पार नहीं पा सकता) और उनकी कथा भी अनन्त है; सब संतलोग उसे बहुत प्रकारसे कहते-सुनते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर चरित्र करोड़ कल्पोंमें भी गाये नहीं जा सकते॥ ३॥

यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥

[शिवजी कहते हैं कि] हे पार्वती! मैंने यह बतलानेके लिये इस प्रसंगको कहा

कि ज्ञानी मुनि भी भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाते हैं। प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागतका हित करनेवाले हैं। वे सेवा करनेमें बहुत सुलभ और सब दुःखोंके हरनेवाले हैं॥ ४॥

सो०— सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥ १४०॥

देवता, मनुष्य और मुनियोंमें ऐसा कोई नहीं है जिसे भगवान्‌की महान् बलवती माया मोहित न कर दे। मनमें ऐसा विचारकर उस महामायाके स्वामी (प्रेरक) श्रीभगवान्‌का भजन करना चाहिये॥ १४०॥

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥

हे गिरिराजकुमारी! अब भगवान्‌के अवतारका वह दूसरा कारण सुनो—मैं उसकी विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ—जिस कारणसे जन्मरहित, निर्गुण और रूपरहित (अव्यक्त सच्चिदानन्दघन) ब्रह्म अयोध्यापुरीके राजा हुए॥ १॥

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरें मुनिबेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥

जिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको तुमने भाई लक्ष्मणजीके साथ मुनियोंका-सा वेष धारण किये वनमें फिरते देखा था और हे भवानी! जिनके चरित्र देखकर सतीके शरीरमें तुम ऐसी बावली हो गयी थीं कि—॥ २॥

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥

अब भी तुम्हारे उस बावलेपनकी छाया नहीं मिटती, उन्हींके भ्रमरूपी रोगके हरण करनेवाले चरित्र सुनो। उस अवतारमें भगवान्‌ने जो-जो लीला की, वह सब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हें कहूँगा॥ ३॥

भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू॥

[याज्ञवल्क्यजीने कहा—] हे भरद्वाज! शङ्करजीके वचन सुनकर पार्वतीजी सकुचाकर प्रेमसहित मुसकरायीं। फिर वृषकेतु शिवजी जिस कारणसे भगवान्‌का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे॥ ४॥

दो०— सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ।
राम कथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाइ॥ १४१॥

हे मुनीश्वर भरद्वाज! मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। श्रीरामचन्द्रजीकी

कथा कलियुगके पापोंको हरनेवाली, कल्याण करनेवाली और बड़ी सुन्दर है॥ १४१॥

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा॥
दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका॥

स्वायम्भुव मनु और [उनकी पत्नी] शतरूपा, जिनसे मनुष्योंकी यह अनुपम सृष्टि हुई, इन दोनों पति-पत्नीके धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी वेद जिनकी मर्यादाका गान करते हैं॥ १॥

नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही। बेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥

राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र [प्रसिद्ध] हरिभक्त ध्रुवजी हुए। उन (मनुजी) के छोटे लड़केका नाम प्रियव्रत था, जिसकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं॥ २॥

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला॥

पुनः देवहूति उनकी कन्या थी, जो कर्दम मुनिकी प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदिदेव, दीनोंपर दया करनेवाले समर्थ एवं कृपालु भगवान् कपिलको गर्भमें धारण किया॥ ३॥

सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुन भगवाना॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला॥

तत्त्वोंका विचार करनेमें अत्यन्त निपुण जिन (कपिल) भगवान्‌ने सांख्यशास्त्रका प्रकटरूपमें वर्णन किया, उन (स्वायम्भुव) मनुजीने बहुत समयतक राज्य किया और सब प्रकारसे भगवान्‌की आज्ञा [रूप शास्त्रोंकी मर्यादा] का पालन किया॥ ४॥

सो०— होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥ १४२॥

घरमें रहते बुढ़ापा आ गया, परन्तु विषयोंसे वैराग्य नहीं होता; [इस बातको सोचकर] उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ कि श्रीहरिकी भक्ति बिना जन्म यों ही चला गया॥ १४२॥

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥

तब मनुजीने अपने पुत्रको जबर्दस्ती राज्य देकर स्वयं स्त्रीसहित वनको गमन किया। अत्यन्त पवित्र और साधकोंको सिद्धि देनेवाला तीर्थोंमें श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है॥ १॥

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥

वहाँ मुनियों और सिद्धोंके समूह बसते हैं। राजा मनु हृदयमें हर्षित होकर वहीं चले। वे धीर बुद्धिवाले राजा-रानी मार्गमें जाते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये जा रहे हों॥ २॥

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥

[चलते-चलते] वे गोमतीके किनारे जा पहुँचे। हर्षित होकर उन्होंने निर्मल जलमें स्नान किया। उनको धर्मधुरन्धर राजर्षि जानकर सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने आये॥ ३॥

जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥
कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥

जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, मुनियोंने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिये। उनका शरीर दुर्बल हो गया था, वे मुनियोंके-से (वल्कल) वस्त्र धारण करते थे और संतोंके समाजमें नित्य पुराण सुनते थे॥ ४॥

दो०— द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥ १४३॥

और द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेमसहित जप करते थे। भगवान् वासुदेवके चरणकमलोंमें उन राजा-रानीका मन बहुत ही लग गया॥ १४३॥

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥

वे साग, फल और कन्दका आहार करते थे और सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण करते थे। फिर वे श्रीहरिके लिये तप करने लगे और मूल-फलको त्यागकर केवल जलके आधारपर रहने लगे॥ १॥

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥

हृदयमें निरन्तर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम [कैसे] उन परम प्रभुको आँखोंसे देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं और परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता) लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं॥ २॥

नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं। जो आनन्दस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं, एवं जिनके अंशसे अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णुभगवान् प्रकट होते हैं॥ ३॥

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

ऐसे [महान्] प्रभु भी सेवकके वशमें हैं और भक्तोंके लिये [दिव्य] लीला-विग्रह धारण करते हैं। यदि वेदोंमें यह वचन सत्य कहा है तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी॥ ४॥

दो०— एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥ १४४॥

इस प्रकार जलका आहार [करके तप] करते छः हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष वे वायुके आधारपर रहे॥ १४४॥

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥

दस हजार वर्षतक उन्होंने वायुका आधार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैरसे खड़े रहे। उनका अपार तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी कई बार मनुजीके पास आये॥ १॥

मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥

उन्होंने इन्हें अनेक प्रकारसे ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगो। पर ये परम धैर्यवान् [राजा-रानी अपने तपसे किसीके] डिगाये नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया था, फिर भी उनके मनमें जरा भी पीड़ा नहीं थी॥ २॥

प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी॥

सर्वज्ञ प्रभुने अनन्य गति (आश्रय) वाले तपस्वी राजा-रानीको 'निज दास' जाना। तब परम गम्भीर और कृपारूपी अमृतसे सनी हुई यह आकाशवाणी हुई कि 'वर माँगो'॥ ३॥

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥

मुर्देको भी जिला देनेवाली यह सुन्दर वाणी कानोंके छेदोंसे होकर जब हृदयमें आयी, तब राजा-रानीके शरीर ऐसे सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट हो गये, मानो अभी घरसे आये हैं॥ ४॥

दो०— श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात॥ १४५॥

कानोंमें अमृतके समान लगनेवाले वचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। तब मनुजी दण्डवत् करके बोले, प्रेम हृदयमें समाता न था—॥ १४५॥

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥

हे प्रभो! सुनिये, आप सेवकोंके लिये कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं। आपकी चरण-रजकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी वन्दना करते हैं। आप सेवा करनेमें सुलभ हैं तथा सब सुखोंके देनेवाले हैं। आप शरणागतके रक्षक और जड-चेतनके स्वामी हैं॥ १॥

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं॥

हे अनाथोंका कल्याण करनेवाले! यदि हमलोगोंपर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिये कि आपका जो स्वरूप शिवजीके मनमें बसता है और जिस [की प्राप्ति] के लिये मुनिलोग यत्न करते हैं॥ २॥

जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

जो काकभुशुण्डिके मनरूपी मानसरोवरमें विहार करनेवाला हंस है, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागतके दुःख मिटानेवाले प्रभो! ऐसी कृपा कीजिये कि हम उसी रूपको नेत्र भरकर देखें॥ ३॥

दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

राजा-रानीके कोमल, विनययुक्त और प्रेमरसमें पगे हुए वचन भगवान्‌को बहुत ही प्रिय लगे। भक्तवत्सल, कृपानिधान, सम्पूर्ण विश्वके निवासस्थान (या समस्त विश्वमें व्यापक), सर्वसमर्थ भगवान् प्रकट हो गये॥ ४॥

दो०— नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥ १४६॥

भगवान्‌के नीले कमल, नीलमणि और नीले (जलयुक्त) मेघके समान [कोमल, प्रकाशमय और सरस] श्यामवर्ण [चिन्मय] शरीरकी शोभा देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं॥ १४६॥

सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥

उनका मुख शरद् [पूर्णिमा] के चन्द्रमाके समान छविकी सीमास्वरूप था। गाल और ठोड़ी बहुत सुन्दर थे, गला शङ्खके समान (त्रिरेखायुक्त, चढ़ाव-उतारवाला) था। लाल ओठ, दाँत और नाक अत्यन्त सुन्दर थे। हँसी चन्द्रमाकी किरणावलीको नीचा दिखानेवाली थी॥ १॥

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥

नेत्रोंकी छबि नये [खिले हुए] कमलके समान बड़ी सुन्दर थी। मनोहर चितवन जीको बहुत प्यारी लगती थी। टेढ़ी भौंहें कामदेवके धनुषकी शोभाको हरनेवाली थीं। ललाटपटलपर प्रकाशमय तिलक था॥ २॥

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनि जाला॥

कानोंमें मकराकृत (मछलीके आकारके) कुण्डल और सिरपर मुकुट सुशोभित था। टेढ़े (घुँघराले) काले बाल ऐसे सघन थे, मानो भौंरोंके झुंड हों। हृदयपर श्रीवत्स, सुन्दर वनमाला, रत्नजटित हार और मणियोंके आभूषण सुशोभित थे॥ ३॥

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥

सिंहकी-सी गर्दन थी, सुन्दर जनेऊ था। भुजाओंमें जो गहने थे, वे भी सुन्दर थे। हाथीकी सूँड़के समान (उतार-चढ़ाववाले) सुन्दर भुजदण्ड थे। कमरमें तरकस और हाथमें बाण और धनुष [शोभा पा रहे] थे॥ ४॥

दो०— तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छबि छीनि॥ १४७॥

[स्वर्ण-वर्णका प्रकाशमय] पीताम्बर बिजलीको लजानेवाला था। पेटपर सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिवली) थीं। नाभि ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजीके भँवरोंकी छबिको छीने लेती हो॥ १४७॥

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥

जिनमें मुनियोंके मनरूपी भौंरे बसते हैं, भगवान्‌के उन चरणकमलोंका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। भगवान्‌के बायें भागमें सदा अनुकूल रहनेवाली, शोभाकी राशि, जगत्‌की मूलकारणरूपा आदिशक्ति श्रीजानकीजी सुशोभित हैं॥ १॥

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

जिनके अंशसे गुणोंकी खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी (त्रिदेवोंकी शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं तथा जिनकी भौंहके इशारेसे ही जगत्‌की रचना हो जाती है, वही [भगवान्‌की स्वरूपा-शक्ति] श्रीसीताजी श्रीरामचन्द्रजीकी बायीं ओर स्थित हैं॥ २॥

छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥

शोभाके समुद्र श्रीहरिके रूपको देखकर मनु-शतरूपा नेत्रोंके पट (पलकें) रोके हुए एकटक (स्तब्ध) रह गये। उस अनुपम रूपको वे आदरसहित देख रहे थे और देखते-देखते अघाते ही न थे॥ ३॥

हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा॥

आनन्दके अधिक वशमें हो जानेके कारण उन्हें अपने देहकी सुधि भूल गयी। वे हाथोंसे भगवान्‌के चरण पकड़कर दण्डकी तरह (सीधे) भूमिपर गिर पड़े। कृपाकी राशि प्रभुने अपने करकमलोंसे उनके मस्तकोंका स्पर्श किया और उन्हें तुरंत ही उठा लिया॥ ४॥

दो०— बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥ १४८॥

फिर कृपानिधान भगवान् बोले—मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मनको भाये वही वर माँग लो॥ १४८॥

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥

प्रभुके वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजाने कोमल वाणी कही—हे नाथ! आपके चरणकमलोंको देखकर अब हमारी सारी मनःकामनाएँ पूरी हो गयीं॥ १॥

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं॥

फिर भी मनमें एक बड़ी लालसा है। उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसीसे उसे कहते नहीं बनता। हे स्वामी! आपके लिये तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता (दीनता) के कारण वह अत्यन्त कठिन मालूम होता है॥ २॥

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई॥

जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्षको पाकर भी अधिक द्रव्य माँगनेमें संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभावको नहीं जानता, वैसे ही मेरे हृदयमें संशय हो रहा है॥ ३॥

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥

हे स्वामी! आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये उसे जानते ही हैं। मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिये। [भगवान्‌ने कहा—] हे राजन्! संकोच छोड़कर मुझसे माँगो। तुम्हें न दे सकूँ ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है॥ ४॥

दो०— दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥ १४९॥

[राजाने कहा—] हे दानियोंके शिरोमणि! हे कृपानिधान! हे नाथ! मैं अपने

मनका सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभुसे भला क्या छिपाना!॥ १४९॥

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

राजाकी प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान् बोले—ऐसा ही हो। हे राजन्! मैं अपने समान [दूसरा] कहाँ जाकर खोजूँ। अत: स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा॥ १॥

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें॥
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥

शतरूपाजीको हाथ जोड़े देखकर भगवान्‌ने कहा—हे देवि! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर माँग लो। [शतरूपाने कहा—] हे नाथ! चतुर राजाने जो वर माँगा, हे कृपालु! वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा॥ २॥

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥

परन्तु हे प्रभु! बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तोंका हित करनेवाले! वह ढिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है। आप ब्रह्मा आदिके भी पिता (उत्पन्न करनेवाले), जगत्‌के स्वामी और सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले ब्रह्म हैं॥ ३॥

अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

ऐसा समझनेपर मनमें सन्देह होता है, फिर भी प्रभुने जो कहा वही प्रमाण (सत्य) है। [मैं तो यह माँगती हूँ कि] हे नाथ! आपके जो निज जन हैं वे जो (अलौकिक, अखण्ड) सुख पाते हैं और जिस परम गतिको प्राप्त होते हैं॥ ४॥

दो०— सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥ १५०॥

हे प्रभो! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणोंमें प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिये॥ १५०॥

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥

[रानीकी] कोमल, गूढ़ और मनोहर श्रेष्ठ वाक्यरचना सुनकर कृपाके समुद्र भगवान् कोमल वचन बोले—तुम्हारे मनमें जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कोई सन्देह न समझना॥ १॥

मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी॥

हे माता! मेरी कृपासे तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा। तब मनुने भगवान्‌के चरणोंकी वन्दना करके फिर कहा—हे प्रभु! मेरी एक विनती और है—॥ २॥

सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥

आपके चरणोंमें मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्रके लिये पिताकी होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे। जैसे मणिके बिना साँप और जलके बिना मछली [नहीं रह सकती], वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे (आपके बिना न रह सके)॥ ३॥

अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥

ऐसा वर माँगकर राजा भगवान्‌के चरण पकड़े रह गये। तब दयाके निधान भगवान्‌ने कहा—ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इन्द्रकी राजधानी (अमरावती) में जाकर वास करो॥ ४॥

सो०—तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥ १५१॥

हे तात! वहाँ [स्वर्गके] बहुत-से भोग भोगकर, कुछ काल बीत जानेपर, तुम अवधके राजा होगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा॥ १५१॥

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥

इच्छानिर्मित मनुष्यरूप सजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा। हे तात! मैं अपने अंशोंसहित देह धारण करके भक्तोंको सुख देनेवाले चरित्र करूँगा॥ १॥

जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

जिन (चरित्रों) को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदरसहित सुनकर, ममता और मद त्यागकर, भवसागरसे तर जायँगे। आदिशक्ति यह मेरी [स्वरूपभूता] माया भी, जिसने जगत्‌को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी॥ २॥

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना॥

इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान भगवान् बार-बार ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये॥ ३॥

दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥

वे स्त्री-पुरुष (राजा-रानी) भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान्‌को हृदयमें धारण करके कुछ कालतक उस आश्रममें रहे। फिर उन्होंने समय पाकर, सहज ही (बिना किसी कष्टके) शरीर छोड़कर, अमरावती (इन्द्रकी पुरी) में जाकर वास किया॥ ४॥

दो०— यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु॥ १५२॥

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—] हे भरद्वाज! इस अत्यन्त पवित्र इतिहासको शिवजीने पार्वतीसे कहा था। अब श्रीरामके अवतार लेनेका दूसरा कारण सुनो॥ १५२॥

मासपारायण, पाँचवाँ विश्राम

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥

हे मुनि! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो, जो शिवजीने पार्वतीसे कही थी। संसारमें प्रसिद्ध एक कैकय देश है। वहाँ सत्यकेतु नामका राजा रहता (राज्य करता) था॥ १॥

धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥

वह धर्मकी धुरीको धारण करनेवाला, नीतिकी खान, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान् था, उसके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणोंके भण्डार और बड़े ही रणधीर थे॥ २॥

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥

राज्यका उत्तराधिकारी जो बड़ा लड़का था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्रका नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओंमें अपार बल था और जो युद्धमें [पर्वतके समान] अटल रहता था॥ ३॥

भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥

भाई-भाईमें बड़ा मेल और सब प्रकारके दोषों और छलोंसे रहित [सच्ची] प्रीति थी। राजाने जेठे पुत्रको राज्य दे दिया और आप भगवान् [के भजन] के लिये वनको चल दिया॥ ४॥

दो०— जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अघ लेस॥ १५३॥

जब प्रतापभानु राजा हुआ, देशमें उसकी दुहाई फिर गयी। वह वेदमें बतायी

हुई विधिके अनुसार उत्तम रीतिसे प्रजाका पालन करने लगा। उसके राज्यमें पापका कहीं लेश भी नहीं रह गया॥ १५३॥

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा॥

राजाका हित करनेवाला और शुक्राचार्यके समान बुद्धिमान् धर्मरुचि नामक उसका मन्त्री था। इस प्रकार बुद्धिमान् मन्त्री और बलवान् तथा वीर भाईके साथ ही स्वयं राजा भी बड़ा प्रतापी और रणधीर था॥ १॥

सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥

साथमें अपार चतुरङ्गिणी सेना थी, जिसमें असंख्य योद्धा थे, जो सब-के-सब रणमें जूझ मरनेवाले थे। अपनी सेनाको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और घमाघम नगाड़े बजने लगे॥ २॥

बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥

दिग्विजयके लिये सेना सजाकर वह राजा शुभ दिन (मुहूर्त) साधकर और डंका बजाकर चला। जहाँ-तहाँ बहुत-सी लड़ाइयाँ हुईं। उसने सब राजाओंको बलपूर्वक जीत लिया॥ ३॥

सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

अपनी भुजाओंके बलसे उसने सातों द्वीपों (भूमिखण्डों) को वशमें कर लिया और राजाओंसे दण्ड (कर) ले-लेकर उन्हें छोड़ दिया। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका उस समय प्रतापभानु ही एकमात्र (चक्रवर्ती) राजा था॥ ४॥

दो०— स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु॥ १५४॥

संसारभरको अपनी भुजाओंके बलसे वशमें करके राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया। राजा अर्थ, धर्म और काम आदिके सुखोंका समयानुसार सेवन करता था॥ १५४॥

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी॥

राजा प्रतापभानुका बल पाकर भूमि सुन्दर कामधेनु (मनचाही वस्तु देनेवाली) हो गयी। [उनके राज्यमें] प्रजा सब [प्रकारके] दुःखोंसे रहित और सुखी थी, और सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे॥ १॥

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥

धर्मरुचि मन्त्रीका श्रीहरिके चरणोंमें प्रेम था। वह राजाके हितके लिये सदा उसको नीति सिखाया करता था। राजा गुरु, देवता, संत, पितर और ब्राह्मण—इन सबकी सदा सेवा करता रहता था॥ २॥

भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना॥

वेदोंमें राजाओंके जो धर्म बताये गये हैं, राजा सदा आदरपूर्वक और सुख मानकर उन सबका पालन करता था। प्रतिदिन अनेक प्रकारके दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था॥ ३॥

नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥

उसने बहुत-सी बावलियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाड़ियाँ, सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणोंके लिये घर और देवताओंके सुन्दर विचित्र मन्दिर सब तीर्थोंमें बनवाये॥ ४॥

दो०— जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥ १५५॥

वेद और पुराणोंमें जितने प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं, राजाने एक-एक करके उन सब यज्ञोंको प्रेमसहित हजार-हजार बार किया॥ १५५॥

हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥

[राजाके] हृदयमें किसी फलकी टोह (कामना) न थी। राजा बड़ा ही बुद्धिमान् और ज्ञानी था। वह ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणीसे जो कुछ भी धर्म करता था, सब भगवान् वासुदेवके अर्पित करके करता था॥ १॥

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥

एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़ेपर सवार होकर, शिकारका सब सामान सजाकर विन्ध्याचलके घने जंगलमें गया और वहाँ उसने बहुत-से उत्तम-उत्तम हिरन मारे॥ २॥

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं॥

राजाने वनमें फिरते हुए एक सूअरको देखा। [दाँतोंके कारण वह ऐसा दीख पड़ता था] मानो चन्द्रमाको ग्रसकर (मुँहमें पकड़कर) राहु वनमें आ छिपा हो। चन्द्रमा बड़ा होनेसे उसके मुँहमें समाता नहीं है और मानो क्रोधवश वह भी उसे उगलता नहीं है॥ ३॥

कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ॥

यह तो सूअरके भयानक दाँतोंकी शोभा कही गयी। [इधर] उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था। घोड़ेकी आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाये चौकन्ना होकर देख रहा था॥ ४॥

दो०— नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु॥ १५६॥

नील पर्वतके शिखरके समान विशाल [शरीरवाले] उस सूअरको देखकर राजा घोड़ेको चाबुक लगाकर तेज़ीसे चला और उसने सूअरको ललकारा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता॥ १५६॥

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥

अधिक शब्द करते हुए घोड़ेको [अपनी तरफ] आता देखकर सूअर पवनवेगसे भाग चला। राजाने तुरंत ही बाणको धनुषपर चढ़ाया। सूअर बाणको देखते ही धरतीमें दुबक गया॥ १॥

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सँग लागा॥

राजा तक-तककर तीर चलाता है, परन्तु सूअर छल करके शरीरको बचाता जाता है। वह पशु कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भागा जाता था; और राजा भी क्रोधके वश उसके साथ (पीछे) लगा चला जाता था॥ २॥

गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥

सूअर बहुत दूर ऐसे घने जंगलमें चला गया, जहाँ हाथी-घोड़ेका निबाह (गम) नहीं था। राजा बिलकुल अकेला था और वनमें क्लेश भी बहुत था, फिर भी राजाने उस पशुका पीछा नहीं छोड़ा॥ ३॥

कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥

राजाको बड़ा धैर्यवान् देखकर, सूअर भागकर पहाड़की एक गहरी गुफामें जा घुसा। उसमें जाना कठिन देखकर राजाको बहुत पछताकर लौटना पड़ा; पर उस घोर वनमें वह रास्ता भूल गया॥ ४॥

दो०— खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत॥ १५७॥

बहुत परिश्रम करनेसे थका हुआ और घोड़ेसमेत भूख-प्याससे व्याकुल राजा नदी-तालाब खोजता-खोजता पानी बिना बेहाल हो गया॥ १५७॥

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥

वनमें फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा; वहाँ कपटसे मुनिका वेष बनाये एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापभानुने छीन लिया था और जो सेनाको छोड़कर युद्धसे भाग गया था॥ १॥

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥

प्रतापभानुका समय (अच्छे दिन) जानकर और अपना कुसमय (बुरे दिन) अनुमानकर उसके मनमें बड़ी ग्लानि हुई। इससे वह न तो घर गया और न अभिमानी होनेके कारण राजा प्रतापभानुसे ही मिला (मेल किया)॥ २॥

रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस कें साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा॥

दरिद्रकी भाँति मनहीमें क्रोधको मारकर वह राजा तपस्वीके वेषमें वनमें रहता था। राजा (प्रतापभानु) उसीके पास गया। उसने तुरंत पहचान लिया कि यह प्रतापभानु है॥ ३॥

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥

राजा प्यासा होनेके कारण [व्याकुलतामें] उसे पहचान न सका। सुन्दर वेष देखकर राजाने उसे महामुनि समझा और घोड़ेसे उतरकर उसे प्रणाम किया। परन्तु बड़ा चतुर होनेके कारण राजाने उसे अपना नाम नहीं बतलाया॥ ४॥

दो०— भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥ १५८॥

राजाको प्यासा देखकर उसने सरोवर दिखला दिया। हर्षित होकर राजाने घोड़ेसहित उसमें स्नान और जलपान किया॥ १५८॥

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥

सारी थकावट मिट गयी, राजा सुखी हो गया। तब तपस्वी उसे अपने आश्रममें ले गया और सूर्यास्तका समय जानकर उसने [राजाको बैठनेके लिये] आसन दिया। फिर वह तपस्वी कोमल वाणीसे बोला—॥ १॥

को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुंदर जुबा जीव परहेलें॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥

तुम कौन हो ? सुन्दर युवक होकर, जीवनकी परवा न करके, वनमें अकेले क्यों फिर रहे हो ? तुम्हारे चक्रवर्ती राजाके-से लक्षण देखकर मुझे बड़ी दया आती है॥ २॥

नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई॥

[राजाने कहा—] हे मुनीश्वर! सुनिये, प्रतापभानु नामका एक राजा है, मैं उसका मन्त्री हूँ। शिकारके लिये फिरते हुए राह भूल गया हूँ। बड़े भाग्यसे यहाँ आकर मैंने आपके चरणोंके दर्शन पाये हैं॥ ३॥

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधिआरा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥

हमें आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ता है कुछ भला होनेवाला है। मुनिने कहा—हे तात! अँधेरा हो गया। तुम्हारा नगर यहाँसे सत्तर योजनपर है॥ ४॥

दो०— निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान॥ १५९ (क)॥

हे सुजान! सुनो, घोर अँधेरी रात है, घना जंगल है, रास्ता नहीं है, ऐसा समझकर तुम आज यहीं ठहर जाओ, सबेरा होते ही चले जाना॥ १५९ (क)॥

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥ १५९ (ख)॥

तुलसीदासजी कहते हैं—जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है, या उसको वहाँ ले जाती है॥ १५९ (ख)॥

भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही॥

हे नाथ! बहुत अच्छा, ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर चढ़ाकर, घोड़ेको वृक्षसे बाँधकर राजा बैठ गया। राजाने उसकी बहुत प्रकारसे प्रशंसा की और उसके चरणोंकी वन्दना करके अपने भाग्यकी सराहना की॥ १॥

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥

फिर सुन्दर कोमल वाणीसे कहा—हे प्रभो! आपको पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश्वर! मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम [धाम] विस्तारसे बतलाइये॥ २॥

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥

राजाने उसको नहीं पहचाना, पर वह राजाको पहचान गया था। राजा तो

शुद्धहृदय था और वह कपट करनेमें चतुर था। एक तो वैरी, फिर जातिका क्षत्रिय, फिर राजा। वह छल-बलसे अपना काम बनाना चाहता था॥ ३॥

समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदयँ हरषाना॥

वह शत्रु अपने राज्य-सुखको समझ करके (स्मरण करके) दुःखी था। उसकी छाती [कुम्हारके] आँवेकी आगकी तरह [भीतर-ही-भीतर] सुलग रही थी। राजाके सरल वचन कानसे सुनकर, अपने वैरको यादकर वह हृदयमें हर्षित हुआ॥ ४॥

दो०—कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥ १६०॥

वह कपटमें डुबोकर बड़ी युक्तिके साथ कोमल वाणी बोला—अब हमारा नाम भिखारी है, क्योंकि हम निर्धन और अनिकेत (घर-द्वारहीन) हैं॥ १६०॥

कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥

राजाने कहा—जो आपके सदृश विज्ञानके निधान और सर्वथा अभिमानरहित होते हैं, वे अपने स्वरूपको सदा छिपाये रहते हैं। क्योंकि कुवेष बनाकर रहनेमें ही सब तरहका कल्याण है (प्रकट संतवेषमें मान होनेकी सम्भावना है और मानसे पतनकी)॥ १॥

तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥

इसीसे तो संत और वेद पुकारकर कहते हैं कि परम अकिञ्चन (सर्वथा अहंकार, ममता और मानरहित) ही भगवान्‌को प्रिय होते हैं। आप-सरीखे निर्धन, भिखारी और गृहहीनोंको देखकर ब्रह्मा और शिवजीको भी सन्देह हो जाता है [कि वे वास्तविक संत हैं या भिखारी]॥ २॥

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥

आप जो हों सो हों (अर्थात् जो कोई भी हों), मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। हे स्वामी! अब मुझपर कृपा कीजिये। अपने ऊपर राजाकी स्वाभाविक प्रीति और अपने विषयमें उसका अधिक विश्वास देखकर—॥ ३॥

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥

सब प्रकारसे राजाको अपने वशमें करके, अधिक स्नेह दिखाता हुआ वह (कपट-तपस्वी) बोला—हे राजन्! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया॥ ४॥

दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥ १६१ (क)॥

अबतक न तो कोई मुझसे मिला और न मैं अपनेको किसीपर प्रकट करता हूँ; क्योंकि लोकमें प्रतिष्ठा अग्निके समान है जो तपरूपी वनको भस्म कर डालती है॥ १६१ (क)॥

सो०—तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥ १६१ (ख)॥

तुलसीदासजी कहते हैं—सुन्दर वेष देखकर मूढ़ नहीं, [मूढ़ तो मूढ़ ही हैं,] चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। सुन्दर मोरको देखो, उसका वचन तो अमृतके समान है और आहार साँपका है॥ १६१ (ख)॥

तातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥

[कपट-तपस्वीने कहा—] इसीसे मैं जगत्‌में छिपकर रहता हूँ। श्रीहरिको छोड़कर किसीसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। प्रभु तो बिना जनाये ही सब जानते हैं। फिर कहो संसारको रिझानेसे क्या सिद्धि मिलेगी॥ १॥

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें॥
अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही॥

तुम पवित्र और सुन्दर बुद्धिवाले हो, इससे मुझे बहुत ही प्यारे हो और तुम्हारी भी मुझपर प्रीति और विश्वास है। हे तात! अब यदि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ तो मुझे बहुत ही भयानक दोष लगेगा॥ २॥

जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा॥
देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी॥

ज्यों-ज्यों वह तपस्वी उदासीनताकी बातें कहता था, त्यों-ही-त्यों राजाको विश्वास उत्पन्न होता जाता था। जब उस बगुलेकी तरह ध्यान लगानेवाले (कपटी) मुनिने राजाको कर्म, मन और वचनसे अपने वशमें जाना, तब वह बोला—॥ ३॥

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

हे भाई! हमारा नाम एकतनु है। यह सुनकर राजाने फिर सिर नवाकर कहा—मुझे अपना अत्यन्त [अनुरागी] सेवक जानकर अपने नामका अर्थ समझाकर कहिये॥ ४॥

दो०—आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि॥ १६२॥

[कपटी मुनिने कहा—] जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी। तबसे मैंने फिर दूसरी देह नहीं धारण की, इसीसे मेरा नाम एकतनु है॥ १६२॥

जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥
तपबल तें जग सृजइ बिधाता। तपबल बिष्नु भए परित्राता॥

हे पुत्र! मनमें आश्चर्य मत करो, तपसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, तपके बलसे ब्रह्मा जगत्‌को रचते हैं। तपहीके बलसे विष्णु संसारका पालन करनेवाले बने हैं॥ १॥

तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥

तपहीके बलसे रुद्र संहार करते हैं। संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तपसे न मिल सके। यह सुनकर राजाको बड़ा अनुराग हुआ। तब वह (तपस्वी) पुरानी कथाएँ कहने लगा॥ २॥

करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका॥
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥

कर्म, धर्म और अनेकों प्रकारके इतिहास कहकर वह वैराग्य और ज्ञानका निरूपण करने लगा। सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन (स्थिति) और संहार (प्रलय) की अपार आश्चर्यभरी कथाएँ उसने विस्तारसे कहीं॥ ३॥

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

राजा सुनकर उस तपस्वीके वशमें हो गया और तब वह उसे अपना नाम बताने लगा। तपस्वीने कहा—राजन्! मैं तुमको जानता हूँ। तुमने कपट किया, वह मुझे अच्छा लगा॥ ४॥

सो०— सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव॥ १६३॥

हे राजन्! सुनो, ऐसी नीति है कि राजालोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते। तुम्हारी वही चतुराई समझकर तुमपर मेरा बड़ा प्रेम हो गया है॥ १६३॥

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा॥

तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, महाराज सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हे राजन्! गुरुकी कृपासे मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कहता नहीं॥ १॥

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहउँ कथा निज पूछे तोरें॥

हे तात! तुम्हारा स्वाभाविक सीधापन (सरलता), प्रेम, विश्वास और नीतिमें निपुणता देखकर मेरे मनमें तुम्हारे ऊपर बड़ी ममता उत्पन्न हो गयी है; इसीलिये मैं तुम्हारे पूछनेपर अपनी कथा कहता हूँ॥ २॥

अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना॥

अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह न करना। हे राजन्! जो मनको भावे वही माँग लो। सुन्दर (प्रिय) वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और [मुनिके] पैर पकड़कर उसने बहुत प्रकारसे विनती की॥ ३॥

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउँ असोकी॥

हे दयासागर मुनि! आपके दर्शनसे ही चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) मेरी मुट्ठीमें आ गये। तो भी स्वामीको प्रसन्न देखकर मैं यह दुर्लभ वर माँगकर [क्यों न] शोकरहित हो जाऊँ॥ ४॥

दो०— जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥ १६४॥

मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःखसे रहित हो जाय; मुझे युद्धमें कोई जीत न सके और पृथ्वीपर मेरा सौ कल्पतक एकच्छत्र अकण्टक राज्य हो॥ १६४॥

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा॥

तपस्वीने कहा—हे राजन्! ऐसा ही हो, पर एक बात कठिन है, उसे भी सुन लो। हे पृथ्वीके स्वामी! केवल ब्राह्मणकुलको छोड़ काल भी तुम्हारे चरणोंपर सिर नवायेगा॥ १॥

तपबल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा॥

तपके बलसे ब्राह्मण सदा बलवान् रहते हैं। उनके क्रोधसे रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। हे नरपति! यदि तुम ब्राह्मणोंको वशमें कर लो, तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जायँगे॥ २॥

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला॥

ब्राह्मणकुलसे जोर-जबर्दस्ती नहीं चल सकती, मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ। हे राजन्! सुनो, ब्राह्मणोंके शाप बिना तुम्हारा नाश किसी कालमें नहीं होगा॥ ३॥

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहुँ सर्ब काल कल्याना॥

राजा उसके वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—हे स्वामी! मेरा नाश अब नहीं होगा। हे कृपानिधान प्रभु! आपकी कृपासे मेरा सब समय कल्याण होगा॥ ४॥

दो०— एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहि न खोरि॥ १६५॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर वह कुटिल कपटी मुनि फिर बोला—[किन्तु] तुम मेरे मिलने तथा अपने राह भूल जानेकी बात किसीसे [कहना नहीं, यदि] कह दोगे, तो हमारा दोष नहीं॥ १६५॥

तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। कहें कथा तव परम अकाजा॥
छठें श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥

हे राजन्! मैं तुमको इसलिये मना करता हूँ कि इस प्रसङ्गको कहनेसे तुम्हारी बड़ी हानि होगी। छठे कानमें यह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा, मेरा यह वचन सत्य जानना॥ १॥

यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं॥

हे प्रतापभानु! सुनो, इस बातके प्रकट करनेसे अथवा ब्राह्मणोंके शापसे तुम्हारा नाश होगा और किसी उपायसे, चाहे ब्रह्मा और शंकर भी मनमें क्रोध करें, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी॥ २॥

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥

राजाने मुनिके चरण पकड़कर कहा—हे स्वामी! सत्य ही है। ब्राह्मण और गुरुके क्रोधसे कहिये, कौन रक्षा कर सकता है? यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें, तो गुरु बचा लेते हैं; पर गुरुसे विरोध करनेपर जगत्‌में कोई भी बचानेवाला नहीं है॥ ३॥

जौं न चलब हम कहे तुम्हारें। होउ नास नहिं सोच हमारें॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥

यदि मैं आपके कथनके अनुसार नहीं चलूँगा, तो [भले ही] मेरा नाश हो जाय। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मेरा मन तो हे प्रभो! [केवल] एक ही डरसे डर रहा है कि ब्राह्मणोंका शाप बड़ा भयानक होता है॥ ४॥

दो०— होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउँ कोउ॥ १६६॥

वे ब्राह्मण किस प्रकारसे वशमें हो सकते हैं, कृपा करके वह भी बताइये। हे दीनदयालु! आपको छोड़कर और किसीको मैं अपना हितू नहीं देखता॥ १६६॥

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई॥

[तपस्वीने कहा—] हे राजन्! सुनो, संसारमें उपाय तो बहुत हैं; पर वे कष्टसाध्य हैं

(बड़ी कठिनतासे बननेमें आते हैं) और इसपर भी सिद्ध हों या न हों (उनकी सफलता निश्चित नहीं है) हाँ, एक उपाय बहुत सहज है; परन्तु उसमें भी एक कठिनता है॥ १॥

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ। काहू के गृह ग्राम न गयऊँ॥

हे राजन्! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगरमें हो नहीं सकता। जबसे पैदा हुआ हूँ, तबसे आजतक मैं किसीके घर अथवा गाँव नहीं गया॥ २॥

जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥

परन्तु यदि नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा काम बिगड़ता है। आज यह बड़ा असमंजस आ पड़ा है। यह सुनकर राजा कोमल वाणीसे बोला, हे नाथ! वेदोंमें ऐसी नीति कही है कि— ॥ ३॥

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥

बड़े लोग छोटोंपर स्नेह करते ही हैं। पर्वत अपने सिरोंपर सदा तृण (घास) को धारण किये रहते हैं। अगाध समुद्र अपने मस्तकपर फेनको धारण करता है, और धरती अपने सिरपर सदा धूलिको धारण किये रहती है॥ ४॥

दो०— अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल॥ १६७॥

ऐसा कहकर राजाने मुनिके चरण पकड़ लिये। [और कहा—] हे स्वामी! कृपा कीजिये। आप संत हैं। दीनदयालु हैं। [अतः] हे प्रभो! मेरे लिये इतना कष्ट [अवश्य] सहिये॥ १६७॥

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही॥

राजाको अपने अधीन जानकर कपटमें प्रवीण तपस्वी बोला—हे राजन्! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, जगत्में मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ १॥

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ॥

मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा; [क्योंकि] तुम मन, वाणी और शरीर [तीनों] से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मन्त्रका प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपाकर किये जाते हैं॥ २॥

जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥

हे नरपति! मैं यदि रसोई बनाऊँ और तुम उसे परोसो और मुझे कोई जानने न पावे, तो उस अन्नको जो-जो खायगा, सो-सो तुम्हारा आज्ञाकारी बन जायगा॥ ३॥

पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप करेहू॥

यही नहीं, उन (भोजन करनेवालों) के घर भी जो कोई भोजन करेगा, हे राजन्! सुनो, वह भी तुम्हारे अधीन हो जायगा। हे राजन्! जाकर यही उपाय करो और वर्षभर [भोजन कराने] का सङ्कल्प कर लेना॥ ४॥

दो०— नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार॥१६८॥

नित्य नये एक लाख ब्राह्मणोंको कुटुम्बसहित निमन्त्रित करना। मैं तुम्हारे सङ्कल्प [के काल अर्थात् एक वर्ष] तक प्रतिदिन भोजन बना दिया करूँगा॥ १६८॥

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें॥
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा॥

हे राजन्! इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रमसे सब ब्राह्मण तुम्हारे वशमें हो जायँगे। ब्राह्मण हवन, यज्ञ और सेवा-पूजा करेंगे, तो उस प्रसंग (सम्बन्ध) से देवता भी सहज ही वशमें हो जायँगे॥ १॥

और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥

मैं एक और पहचान तुमको बताये देता हूँ कि मैं इस रूपमें कभी न आऊँगा। हे राजन्! मैं अपनी मायासे तुम्हारे पुरोहितको हर लाऊँगा॥ २॥

तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परवाना॥
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा॥

तपके बलसे उसे अपने समान बनाकर एक वर्षतक यहाँ रखूँगा और हे राजन्! सुनो, मैं उसका रूप बनाकर सब प्रकारसे तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा॥ ३॥

गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता॥

हे राजन्! रात बहुत बीत गयी, अब सो जाओ। आजसे तीसरे दिन मुझसे तुम्हारी भेंट होगी। तपके बलसे मैं घोड़ेसहित तुमको सोतेहीमें घर पहुँचा दूँगा॥ ४॥

दो०— मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि॥१६९॥

मैं वही (पुरोहितका) वेष धरकर आऊँगा। जब एकान्तमें तुमको बुलाकर सब

कथा सुनाऊँगा, तब तुम मुझे पहचान लेना॥ १६९॥

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥

राजाने आज्ञा मानकर शयन किया और वह कपट-ज्ञानी आसनपर जा बैठा। राजा थका था, [उसे] खूब (गहरी) नींद आ गयी। पर वह कपटी कैसे सोता। उसे तो बहुत चिन्ता हो रही थी॥ १॥

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥

[उसी समय] वहाँ कालकेतु राक्षस आया, जिसने सूअर बनकर राजाको भटकाया था। वह तपस्वी राजाका बड़ा मित्र था और खूब छल-प्रपञ्च जानता था॥ २॥

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे॥

उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बड़े ही दुष्ट, किसीसे न जीते जानेवाले और देवताओंको दुःख देनेवाले थे। ब्राह्मणों, संतों और देवताओंको दुःखी देखकर राजाने उन सबको पहले ही युद्धमें मार डाला था॥ ३॥

तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥

उस दुष्टने पिछला वैर याद करके तपस्वी राजासे मिलकर सलाह विचारी (षड्यन्त्र किया) और जिस प्रकार शत्रुका नाश हो, वही उपाय रचा। भावीवश राजा (प्रतापभानु) कुछ भी न समझ सका॥ ४॥

दो०— रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥ १७०॥

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिये। जिसका सिरमात्र बचा था, वह राहु आजतक सूर्य-चन्द्रमाको दुःख देता है॥ १७०॥

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥

तपस्वी राजा अपने मित्रको देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ। उसने मित्रको सब कथा कह सुनायी, तब राक्षस आनन्दित होकर बोला॥ १॥

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥

हे राजन्! सुनो, जब तुमने मेरे कहनेके अनुसार [इतना] काम कर लिया, तो

अब मैंने शत्रुको काबूमें कर ही लिया [समझो]। तुम अब चिन्ता त्याग सो रहो। विधाताने बिना ही दवाके रोग दूर कर दिया॥ २॥

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥

कुलसहित शत्रुको जड़-मूलसे उखाड़-बहाकर, [आजसे] चौथे दिन मैं तुमसे आ मिलूँगा। [इस प्रकार] तपस्वी राजाको खूब दिलासा देकर वह महामायावी और अत्यन्त क्रोधी राक्षस चला॥ ३॥

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई॥

उसने प्रतापभानु राजाको घोड़ेसहित क्षणभरमें घर पहुँचा दिया। राजाको रानीके पास सुलाकर घोड़ेको अच्छी तरहसे घुड़सालमें बाँध दिया॥ ४॥

दो०— राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि॥ १७१॥

फिर वह राजाके पुरोहितको उठा ले गया और मायासे उसकी बुद्धिको भ्रममें डालकर उसे उसने पहाड़की खोहमें ला रखा॥ १७१॥

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥

वह आप पुरोहितका रूप बनाकर उसकी सुन्दर सेजपर जा लेटा। राजा सबेरा होनेसे पहले ही जागा और अपना घर देखकर उसने बड़ा ही आश्चर्य माना॥ १॥

मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं जेहिं जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं॥

मनमें मुनिकी महिमाका अनुमान करके वह धीरेसे उठा, जिसमें रानी न जान पावे। फिर उसी घोड़ेपर चढ़कर वनको चला गया। नगरके किसी भी स्त्री-पुरुषने नहीं जाना॥ २॥

गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥

दो पहर बीत जानेपर राजा आया। घर-घर उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा। जब राजाने पुरोहितको देखा, तब वह [अपने] उसी कार्यका स्मरणकर उसे आश्चर्यसे देखने लगा॥ ३॥

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

राजाको तीन दिन युगके समान बीते। उसकी बुद्धि कपटी मुनिके चरणोंमें लगी

थी। निश्चित समय जानकर पुरोहित [बना हुआ राक्षस] आया और राजाके साथ की हुई गुप्त सलाहके अनुसार [उसने अपने] सब विचार उसे समझाकर कह दिये॥ ४॥

दो०— नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत॥ १७२॥

[संकेतके अनुसार] गुरुको [उस रूपमें] पहचानकर राजा प्रसन्न हुआ। भ्रमवश उसे चेत न रहा [कि यह तापस मुनि है या कालकेतु राक्षस]। उसने तुरंत एक लाख उत्तम ब्राह्मणोंको कुटुम्बसहित निमन्त्रण दे दिया॥ १७२॥

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥

पुरोहितने छः रस और चार प्रकारके भोजन, जैसा कि वेदोंमें वर्णन है, बनाये। उसने मायामयी रसोई तैयार की और इतने व्यञ्जन बनाये जिन्हें कोई गिन नहीं सकता॥ १॥

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥

अनेक प्रकारके पशुओंका मांस पकाया और उसमें उस दुष्टने ब्राह्मणोंका मांस मिला दिया। सब ब्राह्मणोंको भोजनके लिये बुलाया और चरण धोकर आदरसहित बैठाया॥ २॥

परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥

ज्यों ही राजा परोसने लगा, उसी काल [कालकेतुकृत] आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मणो! उठ-उठकर अपने घर जाओ; यह अन्न मत खाओ। इस [के खाने] में बड़ी हानि है॥ ३॥

भयउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

रसोईमें ब्राह्मणोंका मांस बना है। [आकाशवाणीका] विश्वास मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा व्याकुल हो गया। [परन्तु] उसकी बुद्धि मोहमें भूली हुई थी। होनहारवश उसके मुँहसे [एक] बात [भी] न निकली॥ ४॥

दो०— बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥ १७३॥

तब ब्राह्मण क्रोधसहित बोल उठे—उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया—अरे मूर्ख राजा! तू जाकर परिवारसहित राक्षस हो॥ १७३॥

छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥

रे नीच क्षत्रिय! तूने तो परिवारसहित ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें नष्ट करना चाहा था, ईश्वरने हमारे धर्मकी रक्षा की। अब तू परिवारसहित नष्ट होगा॥ १॥

संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥

एक वर्षके भीतर तेरा नाश हो जाय, तेरे कुलमें कोई पानी देनेवालातक न रहेगा। शाप सुनकर राजा भयके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया। फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई—॥ २॥

बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी॥

हे ब्राह्मणो! तुमने विचारकर शाप नहीं दिया। राजाने कुछ भी अपराध नहीं किया। आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गये। तब राजा वहाँ गया, जहाँ भोजन बना था॥ ३॥

तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥

[देखा तो] वहाँ न भोजन था, न रसोइया ब्राह्मण ही था। तब राजा मनमें अपार चिन्ता करता हुआ लौटा। उसने ब्राह्मणोंको सब वृत्तान्त सुनाया और [बड़ा ही] भयभीत और व्याकुल होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४॥

दो०— भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर॥ १७४॥

हे राजन्! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणोंका शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता॥ १७४॥

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं॥

ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। नगरवासियोंने [जब] यह समाचार पाया, तो वे चिन्ता करने और विधाताका दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया (ऐसे पुण्यात्मा राजाको देवता बनाना चाहिये था, सो राक्षस बना दिया)॥ १॥

उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥

पुरोहितको उसके घर पहुँचाकर असुर (कालकेतु) ने [कपटी] तपस्वीको खबर दी। उस दुष्टने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब [वैरी] राजा सेना सजा-सजाकर [चढ़] दौड़े॥ २॥

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥

और उन्होंने डंका बजाकर नगरको घेर लिया। नित्यप्रति अनेक प्रकारसे लड़ाई होने लगी। [प्रतापभानुके] सब योद्धा [शूरवीरोंकी] करनी करके रणमें जूझ मरे। राजा भी भाईसहित खेत रहा॥ ३॥

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥

सत्यकेतुके कुलमें कोई नहीं बचा। ब्राह्मणोंका शाप झूठा कैसे हो सकता था। शत्रुको जीतकर, नगरको [फिरसे] बसाकर सब राजा विजय और यश पाकर अपने-अपने नगरको चले गये॥ ४॥

दो०— भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम॥ १७५॥

[याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—] हे भरद्वाज! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं, तब उसके लिये धूल सुमेरुपर्वतके समान (भारी और कुचल डालनेवाली), पिता यमके समान (कालरूप) और रस्सी साँपके समान (काट खानेवाली) हो जाती है॥ १७५॥

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥

हे मुनि! सुनो, समय पाकर वही राजा परिवारसहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचण्ड शूरवीर था॥ १॥

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥

अरिमर्दन नामक जो राजाका छोटा भाई था, वह बलका धाम कुम्भकर्ण हुआ। उसका जो मन्त्री था, जिसका नाम धर्मरुचि था, वह रावणका सौतेला छोटा भाई हुआ॥ २॥

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥

उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जगत् जानता है। वह विष्णुभक्त और ज्ञान-विज्ञानका भण्डार था और जो राजाके पुत्र और सेवक थे, वे सभी बड़े भयानक राक्षस हुए॥ ३॥

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी॥

वे सब अनेकों जातिके, मनमाना रूप धारण करनेवाले, दुष्ट, कुटिल, भयंकर,

विवेकरहित, निर्दयी, हिंसक, पापी और संसारभरको दुःख देनेवाले हुए; उनका वर्णन नहीं हो सकता॥ ४॥

दो०— उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप॥ १७६॥

यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषिके पवित्र, निर्मल और अनुपम कुलमें उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणोंके शापके कारण वे सब पापरूप हुए॥ १७६॥

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥

तीनों भाइयोंने अनेकों प्रकारकी बड़ी ही कठिन तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। [उनका उग्र] तप देखकर ब्रह्माजी उनके पास गये और बोले—हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो॥ १॥

करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥

रावणने विनय करके और चरण पकड़कर कहा—हे जगदीश्वर! सुनिये, वानर और मनुष्य—इन दो जातियोंको छोड़कर हम और किसीके मारे न मरें [यह वर दीजिये]॥ २॥

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥

[शिवजी कहते हैं कि—] मैंने और ब्रह्माने मिलकर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है। फिर ब्रह्माजी कुम्भकर्णके पास गये। उसे देखकर उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ॥ ३॥

जौं एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी॥

जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार ही उजाड़ हो जायगा। [ऐसा विचारकर] ब्रह्माजीने सरस्वतीको प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी। [जिससे] उसने छः महीनेकी नींद माँगी॥ ४॥

दो०— गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु॥ १७७॥

फिर ब्रह्माजी विभीषणके पास गये और बोले—हे पुत्र! वर माँगो। उसने भगवान्‌के चरणकमलोंमें निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगा॥ १७७॥

तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥

उनको वर देकर ब्रह्माजी चले गये और वे (तीनों भाई) हर्षित होकर अपने घर लौट

आये। मय दानवकी मन्दोदरी नामकी कन्या परम सुन्दरी और स्त्रियोंमें शिरोमणि थी॥ १॥

सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥

मयने उसे लाकर रावणको दिया। उसने जान लिया कि यह राक्षसोंका राजा होगा। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयोंका विवाह कर दिया॥ २॥

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनिभवन अपारा॥

समुद्रके बीचमें त्रिकूट नामक पर्वतपर ब्रह्माका बनाया हुआ एक बड़ा भारी किला था। [महान् मायावी और निपुण कारीगर] मय दानवने उसको फिरसे सजा दिया। उसमें मणियोंसे जड़े हुए सोनेके अनगिनत महल थे॥ ३॥

भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥

जैसी नागकुलके रहनेकी [पाताललोकमें] भोगावती पुरी है और इन्द्रके रहनेकी [स्वर्गलोकमें] अमरावती पुरी है, उनसे भी अधिक सुन्दर और बाँका वह दुर्ग था। जगत्‌में उसका नाम लङ्का प्रसिद्ध हुआ॥ ४॥

दो०— **खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव।**
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥ १७८ (क)॥

उसे चारों ओरसे समुद्रकी अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए है। उस [दुर्ग] के मणियोंसे जड़ा हुआ सोनेका मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरीका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ १७८ (क)॥

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ॥ १७८ (ख)॥

भगवान्‌की प्रेरणासे जिस कल्पमें जो राक्षसोंका राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान् अपनी सेनासहित उस पुरीमें बसता है॥ १७८ (ख)॥

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥

[पहले] वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस रहते थे। देवताओंने उन सबको युद्धमें मार डाला। अब इन्द्रकी प्रेरणासे वहाँ कुबेरके एक करोड़ रक्षक (यक्ष लोग) रहते हैं—॥ १॥

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥

रावणको कहीं ऐसी खबर मिली तब उसने सेना सजाकर किलेको जा घेरा।

उस बड़े विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेनाको देखकर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गये॥ २॥

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥

तब रावणने घूम-फिरकर सारा नगर देखा, उसकी [स्थानसम्बन्धी] चिन्ता मिट गयी और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरीको स्वाभाविक ही सुन्दर और [बाहरवालोंके लिये] दुर्गम अनुमान करके रावणने वहाँ अपनी राजधानी कायम की॥ ३॥

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥

योग्यताके अनुसार घरोंको बाँटकर रावणने सब राक्षसोंको सुखी किया। एक बार वह कुबेरपर चढ़ दौड़ा और उससे पुष्पकविमानको जीतकर ले आया॥ ४॥

दो०— कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥ १७९॥

फिर उसने जाकर [एक बार] खिलवाड़हीमें कैलास पर्वतको उठा लिया और मानो अपनी भुजाओंका बल तौलकर, बहुत सुख पाकर वह वहाँसे चला आया॥ १७९॥

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥

सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई—ये सब उसके नित्य नये [वैसे ही] बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभपर लोभ बढ़ता है॥ १॥

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥

अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण-सा उसका भाई था, जिसके जोड़का योद्धा जगत्‌में पैदा ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छः महीने सोया करता था। उसके जागते ही तीनों लोकोंमें तहलका मच जाता था॥ २॥

जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना॥

यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (खाली) हो जाता। रणधीर ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। [लङ्कामें] उसके ऐसे असंख्य बलवान् वीर थे॥ ३॥

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥

मेघनाद रावणका बड़ा लड़का था, जिसका जगत्‌के योद्धाओंमें पहला नंबर था।

रणमें कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वर्गमें तो [उसके भयसे] नित्य भगदड़ मची रहती थी॥ ४॥

दो०— कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥ १८०॥

[इनके अतिरिक्त] दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे, जो अकेले ही सारे जगत्‌को जीत सकते थे॥ १८०॥

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥

सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और [आसुरी] माया जानते थे। उनके दया-धर्म स्वप्नमें भी नहीं था। एक बार सभामें बैठे हुए रावणने अपने अगणित परिवारको देखा—॥ १॥

सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥

पुत्र-पौत्र, कुटुम्बी और सेवक ढेर-के-ढेर थे। [सारी] राक्षसोंकी जातियोंको तो गिन ही कौन सकता था? अपनी सेनाको देखकर स्वभावसे ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्वमें सनी हुई वाणी बोला—॥ २॥

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥

हे समस्त राक्षसोंके दलो! सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर युद्ध नहीं करते। बलवान् शत्रुको देखकर भाग जाते हैं॥ ३॥

तिन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥

उनका मरण एक ही उपायसे हो सकता है, मैं समझाकर कहता हूँ। अब उसे सुनो। [उनके बलको बढ़ानेवाले] ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध—इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो॥ ४॥

दो०— छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ॥ १८१॥

भूखसे दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहजहीमें आ मिलेंगे। तब उनको मैं मार डालूँगा अथवा भलीभाँति अपने अधीन करके [सर्वथा पराधीन करके] छोड़ दूँगा॥ १८१॥

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्हीं सिख बलु बयरु बढ़ावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥

फिर उसने मेघनादको बुलवाया और सिखा-पढ़ाकर उसके बल और [देवताओंके

प्रति] वैरभावको उत्तेजना दी। [फिर कहा—] हे पुत्र! जो देवता रणमें धीर और बलवान् हैं और जिन्हें लड़नेका अभिमान है॥ १॥

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥
एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥

उन्हें युद्धमें जीतकर बाँध लाना। बेटेने उठकर पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथमें गदा लेकर चल दिया॥ २॥

चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥

रावणके चलनेसे पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जनासे देवरमणियोंके गर्भ गिरने लगे। रावणको क्रोधसहित आते हुए सुनकर देवताओंने सुमेरु पर्वतकी गुफाएँ तकीं (भागकर सुमेरुकी गुफाओंका आश्रय लिया)॥ ३॥

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥

दिक्पालोंके सारे सुन्दर लोकोंको रावणने सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंहगर्जना करके देवताओंको ललकार-ललकारकर गालियाँ देता था॥ ४॥

रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥

रणके मदमें मतवाला होकर वह अपनी जोड़ीका योद्धा खोजता हुआ जगत्‌भरमें दौड़ता फिरा, परन्तु उसे ऐसा योद्धा कहीं नहीं मिला। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी,॥ ५॥

किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥

किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग—सभीके पीछे वह हठपूर्वक पड़ गया (किसीको भी उसने शान्तिपूर्वक नहीं बैठने दिया)। ब्रह्माजीकी सृष्टिमें जहाँतक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे, सभी रावणके अधीन हो गये॥ ६॥

आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥

डरके मारे सभी उसकी आज्ञाका पालन करते थे और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणोंमें सिर नवाते थे॥ ७॥

दो०— भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥ १८२ (क)॥

उसने भुजाओंके बलसे सारे विश्वको वशमें कर लिया, किसीको स्वतन्त्र नहीं रहने दिया। [इस प्रकार] मण्डलीक राजाओंका शिरोमणि (सार्वभौम सम्राट्) रावण अपने इच्छानुसार राज्य करने लगा॥ १८२ (क)॥

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि॥ १८२ (ख)॥

देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागोंकी कन्याओं तथा बहुत-सी अन्य सुन्दरी और उत्तम स्त्रियोंको उसने अपनी भुजाओंके बलसे जीतकर ब्याह लिया॥ १८२ (ख)॥

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा॥

मेघनादसे उसने जो कुछ कहा, उसे उसने (मेघनादने) मानो पहलेसे ही कर रखा था (अर्थात् रावणके कहनेभरकी देर थी, उसने आज्ञापालनमें तनिक भी देर नहीं की)। जिनको [रावणने मेघनादसे] पहले ही आज्ञा दे रखी थी, उन्होंने जो करतूतें की उन्हें सुनो॥ १॥

देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥

सब राक्षसोंके समूह देखनेमें बड़े भयानक, पापी और देवताओंको दुःख देनेवाले थे। वे असुरोंके समूह उपद्रव करते थे और मायासे अनेकों प्रकारके रूप धरते थे॥ २॥

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥

जिस प्रकार धर्मकी जड़ कटे, वे वही सब वेदविरुद्ध काम करते थे। जिस-जिस स्थानमें वे गौ और ब्राह्मणोंको पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवेमें आग लगा देते थे॥ ३॥

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना॥

[उनके डरसे] कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, श्राद्ध आदि) नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरुको कोई नहीं मानता था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्नमें भी सुननेको नहीं मिलते थे॥ ४॥

छं०— जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥

जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञमें [देवताओंके] भाग पानेकी बात रावण कहीं कानोंसे सुन पाता, तो [उसी समय] स्वयं उठ दौड़ता। कुछ भी रहने नहीं पाता, वह सबको पकड़कर विध्वंस कर डालता था। संसारमें ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल

गया कि धर्म तो कानोंमें भी सुननेमें नहीं आता था; जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरहसे त्रास देता और देशसे निकाल देता था।

सो०— बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥ १८३॥

राक्षसलोग जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसापर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापोंका क्या ठिकाना!॥ १८३॥

मासपारायण, छठा विश्राम

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥

पराये धन और परायी स्त्रीपर मन चलानेवाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गये। लोग माता-पिता और देवताओंको नहीं मानते थे और साधुओं [की सेवा करना तो दूर रहा, उलटे उन] से सेवा करवाते थे॥ १॥

जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥

[श्रीशिवजी कहते हैं कि—] हे भवानी! जिनके ऐसे आचरण हैं, उन सब प्राणियोंको राक्षस ही समझना। इस प्रकार धर्मके प्रति [लोगोंकी] अतिशय ग्लानि (अरुचि, अनास्था) देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो गयी॥ २॥

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता॥

[वह सोचने लगी कि] पर्वतों, नदियों और समुद्रोंका बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता, जितना भारी मुझे एक परद्रोही (दूसरोंका अनिष्ट करनेवाला) लगता है। पृथ्वी सारे धर्मोंको विपरीत देख रही है, पर रावणसे भयभीत हुई वह कुछ बोल नहीं सकती॥ ३॥

धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥

[अन्तमें] हृदयमें सोच-विचारकर, गौका रूप धारण कर धरती वहाँ गयी, जहाँ सब देवता और मुनि [छिपे] थे। पृथ्वीने रोकर उनको अपना दुःख सुनाया, पर किसीसे कुछ काम न बना॥ ४॥

छं०— सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥

तब देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्माजीके लोक (सत्यलोक) को गये। भय और शोकसे अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौका शरीर धारण किये हुए उनके साथ थी। ब्रह्माजी सब जान गये। उन्होंने मनमें अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ भी वश नहीं चलनेका। [तब उन्होंने पृथ्वीसे कहा कि—] जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनोंका सहायक है।

सो०— धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥ १८४॥

ब्रह्माजीने कहा—हे धरती! मनमें धीरज धारण करके श्रीहरिके चरणोंका स्मरण करो। प्रभु अपने दासोंकी पीड़ाको जानते हैं, ये तुम्हारी कठिन विपत्तिका नाश करेंगे॥ १८४॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥

सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभुको कहाँ पावें ताकि उनके सामने पुकार (फर्याद) करें। कोई वैकुण्ठपुरी जानेको कहता था और कोई कहता था कि वही प्रभु क्षीरसमुद्रमें निवास करते हैं॥ १॥

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥

जिसके हृदयमें जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (उसके लिये) सदा उसी रीतिसे प्रकट होते हैं। हे पार्वती! उस समाजमें मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही—॥ २॥

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं। देश, काल, दिशा, विदिशामें बताओ, ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु न हों॥ ३॥

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥

वे चराचरमय (चराचरमें व्याप्त) होते हुए ही सबसे रहित हैं और विरक्त हैं (उनकी कहीं आसक्ति नहीं है); वे प्रेमसे प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि। (अग्नि अव्यक्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु जहाँ उसके लिये अरणिमन्थनादि साधन किये जाते हैं, वहाँ वह प्रकट होती है। इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान् भी प्रेमसे प्रकट होते हैं।) मेरी बात सबको प्रिय लगी। ब्रह्माजीने 'साधु, साधु' कहकर बड़ाई की॥ ४॥

दो०— सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर॥ १८५॥

मेरी बात सुनकर ब्रह्माजीके मनमें बड़ा हर्ष हुआ; उनका तन पुलकित हो गया और नेत्रोंसे [प्रेमके] आँसू बहने लगे। तब वे धीरबुद्धि ब्रह्माजी सावधान होकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—॥ १८५॥

छं०— जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥

हे देवताओंके स्वामी, सेवकोंको सुख देनेवाले, शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान्! आपकी जय हो! जय हो!! हे गो-ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, असुरोंका विनाश करनेवाले, समुद्रकी कन्या (श्रीलक्ष्मीजी)के प्रिय स्वामी! आपकी जय हो। हे देवता और पृथ्वीका पालन करनेवाले! आपकी लीला अद्भुत है,उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभावसे ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हमपर कृपा करें॥ १॥

जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥

हे अविनाशी, सबके हृदयमें निवास करनेवाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक परम आनन्दस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियोंसे परे, पवित्रचरित्र, मायासे रहित मुकुन्द (मोक्षदाता)! आपकी जय हो! जय हो!! [इस लोक और परलोकके सब भोगोंसे] विरक्त तथा मोहसे सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणोंके समूहका गान करते हैं, उन सच्चिदानन्दकी जय हो॥ २॥

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥

जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी अथवा सहायकके अकेले ही [या स्वयं अपनेको त्रिगुणरूप—ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप—बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारणके अर्थात् स्वयं ही सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर] तीन प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की, वे पापोंका नाश करनेवाले भगवान् हमारी सुधि लें। हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा।

जो संसारके (जन्म-मृत्युके) भयका नाश करनेवाले, मुनियोंके मनको आनन्द देनेवाले और विपत्तियोंके समूहको नष्ट करनेवाले हैं। हम सब देवताओंके समूह मन, वचन और कर्मसे चतुराई करनेकी बान छोड़कर उन (भगवान्) की शरण [आये] हैं॥ ३॥

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥

सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकारकर कहते हैं, वे ही श्रीभगवान् हमपर दया करें। हे संसाररूपी समुद्रके [मथनेके] लिये मन्दराचलरूप, सब प्रकारसे सुन्दर, गुणोंके धाम और सुखोंकी राशि नाथ! आपके चरणकमलोंमें मुनि, सिद्ध और सारे देवता भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं॥ ४॥

दो०— जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥ १८६॥

देवता और पृथ्वीको भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और सन्देहको हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई— ॥ १८६॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंशमें अंशोंसहित मनुष्यका अवतार लूँगा॥ १॥

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा॥

कश्यप और अदितिने बड़ा भारी तप किया था। मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्याके रूपमें मनुष्योंके राजा होकर श्रीअयोध्यापुरीमें प्रकट हुए हैं॥ २॥

तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

उन्हींके घर जाकर मैं रघुकुलमें श्रेष्ठ चार भाइयोंके रूपमें अवतार लूँगा। नारदके सब वचन मैं सत्य करूँगा और अपनी पराशक्तिके सहित अवतार लूँगा॥ ३॥

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥

मैं पृथ्वीका सब भार हर लूँगा। हे देववृन्द! तुम निर्भय हो जाओ। आकाशमें

ब्रह्म (भगवान्)की वाणीको कानसे सुनकर देवता तुरंत लौट गये। उनका हृदय शीतल हो गया॥ ४॥

तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥

तब ब्रह्माजीने पृथ्वीको समझाया। वह भी निर्भय हुई और उसके जीमें भरोसा (ढाढ़स) आ गया॥ ५॥

दो०— निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ॥ १८७॥

देवताओंको यही सिखाकर कि वानरोंका शरीर धर-धरकर तुमलोग पृथ्वीपर जाकर भगवान्के चरणोंकी सेवा करो, ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये॥ १८७॥

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥

सब देवता अपने-अपने लोकको गये। पृथ्वीसहित सबके मनको शान्ति मिली। ब्रह्माजीने जो कुछ आज्ञा दी, उससे देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने [वैसा करनेमें] देर नहीं की॥ १॥

बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥

पृथ्वीपर उन्होंने वानरदेह धारण की। उनमें अपार बल और प्रताप था। सभी शूरवीर थे; पर्वत, वृक्ष और नख ही उनके शस्त्र थे। वे धीर बुद्धिवाले [वानररूप देवता] भगवान्के आनेकी राह देखने लगे॥ २॥

गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा॥

वे [वानर] पर्वतों और जंगलोंमें जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी सुन्दर सेना बनाकर भरपूर छा गये। यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा। अब वह चरित्र सुनो जिसे बीचहीमें छोड़ दिया था॥ ३॥

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारँगपानी॥

अवधपुरीमें रघुकुलशिरोमणि दशरथ नामके राजा हुए, जिनका नाम वेदोंमें विख्यात है। वे धर्मधुरन्धर, गुणोंके भण्डार और ज्ञानी थे। उनके हृदयमें शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान्की भक्ति थी, और उनकी बुद्धि भी उन्हींमें लगी रहती थी॥ ४॥

दो०— कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत॥ १८८॥

उनकी कौसल्या आदि प्रिय रानियाँ सभी पवित्र आचरणवाली थीं। वे [बड़ी]

विनीत और पतिके अनुकूल [चलनेवाली] थीं और श्रीहरिके चरणकमलोंमें उनका दृढ़ प्रेम था॥ १८८॥

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥

एक बार राजाके मनमें बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है। राजा तुरंत ही गुरुके घर गये और चरणोंमें प्रणाम कर बहुत विनय की॥ १॥

निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥

राजाने अपना सारा दुःख-सुख गुरुको सुनाया। गुरु वसिष्ठजीने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया [और कहा—] धीरज धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध और भक्तोंके भयको हरनेवाले होंगे॥ २॥

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥

वसिष्ठजीने शृङ्गी ऋषिको बुलवाया और उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया। मुनिके भक्तिसहित आहुतियाँ देनेपर अग्निदेव हाथमें चरु (हविष्यान्न खीर) लिये प्रकट हुए॥ ३॥

जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥

[और दशरथसे बोले—] वसिष्ठने हृदयमें जो कुछ विचारा था, तुम्हारा वह सब काम सिद्ध हो गया। हे राजन्! [अब] तुम जाकर इस हविष्यान्न (पायस) को, जिसको जैसा उचित हो, वैसा भाग बनाकर बाँट दो॥ ४॥

दो०— **तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।**
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ॥ १८९॥

तदनन्तर अग्निदेव सारी सभाको समझाकर अन्तर्धान हो गये। राजा परमानन्दमें मग्न हो गये, उनके हृदयमें हर्ष समाता न था॥ १८९॥

तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥

उसी समय राजाने अपनी प्यारी पत्नियोंको बुलाया। कौसल्या आदि सब [रानियाँ] वहाँ चली आयीं। राजाने [पायसका] आधा भाग कौसल्याको दिया, [और शेष] आधेके दो भाग किये॥ १॥

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

वह (उनमेंसे एक भाग) राजाने कैकेयीको दिया। शेष जो बच रहा उसके

फिर दो भाग हुए और राजाने उनको कौसल्या और कैकेयीके हाथपर रखकर (अर्थात् उनकी अनुमति लेकर) और इस प्रकार उनका मन प्रसन्न करके सुमित्राको दिया॥ २॥

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥

इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदयमें बहुत हर्षित हुईं। उन्हें बड़ा सुख मिला। जिस दिनसे श्रीहरि [लीलासे ही] गर्भमें आये, सब लोकोंमें सुख और सम्पत्ति छा गयी॥ ३॥

मंदिर महँ सब राजहिं रानीं। सोभा सील तेज की खानीं॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥

शोभा, शील और तेजकी खान [बनी हुई] सब रानियाँ महलमें सुशोभित हुईं। इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया जिसमें प्रभुको प्रकट होना था॥ ४॥

दो०— जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥ १९०॥

योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हो गये। जड और चेतन सब हर्षसे भर गये। [क्योंकि] श्रीरामका जन्म सुखका मूल है॥ १९०॥

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥

पवित्र चैत्रका महीना था, नवमी तिथि थी। शुक्लपक्ष और भगवान्‌का प्रिय अभिजित् मुहूर्त था। दोपहरका समय था। न बहुत सरदी थी, न धूप (गरमी) थी। वह पवित्र समय सब लोकोंको शान्ति देनेवाला था॥ १॥

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्त्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥

शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन बह रहा था। देवता हर्षित थे और संतोंके मनमें [बड़ा] चाव था। वन फूले हुए थे, पर्वतोंके समूह मणियोंसे जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृतकी धारा बहा रही थीं॥ २॥

सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥

जब ब्रह्माजीने वह (भगवान्‌के प्रकट होनेका) अवसर जाना तब [उनके समेत] सारे देवता विमान सजा-सजाकर चले। निर्मल आकाश देवताओंके समूहोंसे भर गया। गन्धर्वोंके दल गुणोंका गान करने लगे॥ ३॥

बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा॥

और सुन्दर अञ्जलियोंमें सजा-सजाकर पुष्प बरसाने लगे। आकाशमें घमाघम नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकारसे अपनी-अपनी सेवा (उपहार) भेंट करने लगे॥ ४॥

दो०— सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥ १९१॥

देवताओंके समूह विनती करके अपने-अपने लोकमें जा पहुँचे। समस्त लोकोंको शान्ति देनेवाले, जगदाधार प्रभु प्रकट हुए॥ १९१॥

छं०— भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

दीनोंपर दया करनेवाले, कौसल्याजीके हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियोंके मनको हरनेवाले उनके अद्भुत रूपका विचार करके माता हर्षसे भर गयी। नेत्रोंको आनन्द देनेवाला मेघके समान श्यामशरीर था; चारों भुजाओंमें अपने (खास) आयुध [धारण किये हुए] थे; [दिव्य] आभूषण और वनमाला पहने थे; बड़े-बड़े नेत्र थे। इस प्रकार शोभाके समुद्र तथा खर राक्षसको मारनेवाले भगवान् प्रकट हुए॥ १॥

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥

दोनों हाथ जोड़कर माता कहने लगी—हे अनन्त! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति करूँ। वेद और पुराण तुमको माया, गुण और ज्ञानसे परे और परिमाणरहित बतलाते हैं। श्रुतियाँ और संतजन दया और सुखका समुद्र, सब गुणोंका धाम कहकर जिनका गान करते हैं, वही भक्तोंपर प्रेम करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान् मेरे कल्याणके लिये प्रकट हुए हैं॥ २॥

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥

वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रोममें मायाके रचे हुए अनेकों ब्रह्माण्डोंके समूह [भरे] हैं। वे तुम मेरे गर्भमें रहे—इस हँसीकी बातके सुननेपर धीर (विवेकी) पुरुषोंकी बुद्धि भी स्थिर नहीं रहती (विचलित हो जाती है)। जब माताको ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब प्रभु मुसकराये। वे बहुत प्रकारके चरित्र करना चाहते हैं। अतः उन्होंने [पूर्वजन्मकी] सुन्दर कथा कहकर माताको समझाया, जिससे उन्हें पुत्रका (वात्सल्य) प्रेम प्राप्त हो (भगवान्‌के प्रति पुत्रभाव हो जाय)॥ ३॥

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

माताकी वह बुद्धि बदल गयी, तब वह फिर बोली—हे तात! यह रूप छोड़कर अत्यन्त प्रिय बाललीला करो, [मेरे लिये] यह सुख परम अनुपम होगा। [माताका] यह वचन सुनकर देवताओंके स्वामी सुजान भगवान्‌ने बालक [रूप] होकर रोना शुरू कर दिया। [तुलसीदासजी कहते हैं—] जो इस चरित्रका गान करते हैं, वे श्रीहरिका पद पाते हैं और [फिर] संसाररूपी कूपमें नहीं गिरते॥ ४॥

दो०— बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥ १९२॥

ब्राह्मण, गौ, देवता और संतोंके लिये भगवान्‌ने मनुष्यका अवतार लिया। वे [अज्ञानमयी, मलिना] माया और उसके गुण (सत्, रज, तम) और [बाहरी तथा भीतरी] इन्द्रियोंसे परे हैं। उनका [दिव्य] शरीर अपनी इच्छासे ही बना है [किसी कर्मबन्धनसे परवश होकर त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थोंके द्वारा नहीं]॥ १९२॥

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी॥

बच्चेके रोनेकी बहुत ही प्यारी ध्वनि सुनकर सब रानियाँ उतावली होकर दौड़ी चली आयीं। दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ीं। सारे पुरवासी आनन्दमें मग्न हो गये॥ १॥

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥

राजा दशरथजी पुत्रका जन्म कानोंसे सुनकर मानो ब्रह्मानन्दमें समा गये। मनमें अतिशय प्रेम है, शरीर पुलकित हो गया। [आनन्दमें अधीर हुई] बुद्धिको धीरज देकर [और प्रेममें शिथिल हुए शरीरको सँभालकर] वे उठना चाहते हैं॥ २॥

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥

जिनका नाम सुननेसे ही कल्याण होता है, वही प्रभु मेरे घर आये हैं। [यह सोचकर] राजाका मन परम आनन्दसे पूर्ण हो गया। उन्होंने बाजेवालोंको बुलाकर कहा कि बाजा बजाओ॥ ३॥

गुर बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥

गुरु वसिष्ठजीके पास बुलावा गया। वे ब्राह्मणोंको साथ लिये राजद्वारपर आये। उन्होंने जाकर अनुपम बालकको देखा, जो रूपकी राशि है और जिसके गुण कहनेसे समाप्त नहीं होते॥ ४॥

दो०— नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥ १९३॥

फिर राजाने नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म-संस्कार आदि किये और ब्राह्मणोंको सोना, गौ, वस्त्र और मणियोंका दान दिया॥ १९३॥

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥
सुमनबृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥

ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगर छा गया। जिस प्रकारसे वह सजाया गया, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। आकाशसे फूलोंकी वर्षा हो रही है, सब लोग ब्रह्मानन्दमें मग्न हैं॥ १॥

बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज सिंगार किएँ उठि धाईं॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥

स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं। स्वाभाविक शृंगार किये ही वे उठ दौड़ीं। सोनेका कलश लेकर और थालोंमें मङ्गल द्रव्य भरकर गाती हुई राजद्वारमें प्रवेश करती हैं॥ २॥

करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं॥
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥

वे आरती करके निछावर करती हैं और बार-बार बच्चेके चरणोंपर गिरती हैं। मागध, सूत, वन्दीजन और गवैये रघुकुलके स्वामीके पवित्र गुणोंका गान करते हैं॥ ३॥

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥

राजाने सब किसीको भरपूर दान दिया। जिसने पाया उसने भी नहीं रखा (लुटा दिया)। [नगरकी] सभी गलियोंके बीच-बीचमें कस्तूरी, चन्दन और केसरकी कीच मच गयी॥ ४॥

दो०— गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद॥ १९४॥

घर-घर मङ्गलमय बधावा बजने लगा, क्योंकि शोभाके मूल भगवान् प्रकट हुए हैं। नगरके स्त्री-पुरुषोंके झुंड-के-झुंड जहाँ-तहाँ आनन्दमग्न हो रहे हैं॥ १९४॥

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा॥

कैकेयी और सुमित्रा—इन दोनोंने भी सुन्दर पुत्रोंको जन्म दिया। उस सुख, सम्पत्ति, समय और समाजका वर्णन सरस्वती और सर्पोंके राजा शेषजी भी नहीं कर सकते॥ १॥

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥

अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो रात्रि प्रभुसे मिलने आयी हो और सूर्यको देखकर मानो मनमें सकुचा गयी हो, परन्तु फिर भी मनमें विचारकर वह मानो सन्ध्या बन [कर रह] गयी हो॥ २॥

अगर धूप बहु जनु अँधिआरी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥

अगरकी धूपका बहुत-सा धुआँ मानो [सन्ध्याका] अन्धकार है और जो अबीर उड़ रहा है, वह उसकी ललाई है। महलोंमें जो मणियोंके समूह हैं, वे मानो तारागण हैं। राजमहलका जो कलश है, वही मानो श्रेष्ठ चन्द्रमा है॥ ३॥

भवन बेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥

राजभवनमें जो अति कोमल वाणीसे वेदध्वनि हो रही है, वही मानो समयसे (समयानुकूल) सनी हुई पक्षियोंकी चहचहाहट है। यह कौतुक देखकर सूर्य भी [अपनी चाल] भूल गये। एक महीना उन्होंने जाता हुआ न जाना (अर्थात् उन्हें एक महीना वहीं बीत गया)॥ ४॥

दो०— मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥ १९५॥

महीनेभरका दिन हो गया। इस रहस्यको कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथसहित वहीं रुक गये, फिर रात किस तरह होती॥ १९५॥

यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥

यह रहस्य किसीने नहीं जाना। सूर्यदेव [भगवान् श्रीरामजीका] गुणगान करते हुए चले। यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाग अपने भाग्यकी सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले॥ १॥

औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥

हे पार्वती! तुम्हारी बुद्धि [श्रीरामजीके चरणोंमें] बहुत दृढ़ है, इसलिये मैं और भी अपनी एक चोरी (छिपाव) की बात कहता हूँ, सुनो। काकभुशुण्डि और मैं दोनों वहाँ साथ-साथ थे, परन्तु मनुष्यरूपमें होनेके कारण हमें कोई जान न सका॥ २॥

परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥

परम आनन्द और प्रेमके सुखमें फूले हुए हम दोनों मगन मनसे (मस्त हुए) गलियोंमें [तन-मनकी सुधि] भूले हुए फिरते थे। परन्तु यह शुभ चरित्र वही जान सकता है, जिसपर श्रीरामजीकी कृपा हो॥ ३॥

तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नानाबिधि चीरा॥

उस अवसरपर जो जिस प्रकार आया और जिसके मनको जो अच्छा लगा, राजाने उसे वही दिया। हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गौएँ, हीरे और भाँति-भाँतिके वस्त्र राजाने दिये॥ ४॥

दो०— मन संतोषे सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस॥ १९६॥

राजाने सबके मनको सन्तुष्ट किया। [इसीसे] सब लोग जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे थे कि तुलसीदासके स्वामी सब पुत्र (चारों राजकुमार) चिरजीवी (दीर्घायु) हों॥ १९६॥

कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। दिन और रात जाते हुए जान नहीं पड़ते। तब नामकरण-संस्कारका समय जानकर राजाने ज्ञानी मुनि श्रीवसिष्ठजीको बुला भेजा॥ १॥

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥

मुनिकी पूजा करके राजाने कहा—हे मुनि! आपने मनमें जो विचार रखे हों, वे नाम रखिये। [मुनिने कहा—] हे राजन्! इनके अनेक अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहूँगा॥ २॥

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

ये जो आनन्दके समुद्र और सुखकी राशि हैं, जिस (आनन्दसिन्धु) के एक कणसे तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का नाम 'राम'

है, जो सुखका भवन और सम्पूर्ण लोकोंको शान्ति देनेवाला है॥ ३॥

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

जो संसारका भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम 'भरत' होगा। जिनके स्मरणमात्रसे शत्रुका नाश होता है, उनका वेदोंमें प्रसिद्ध 'शत्रुघ्न' नाम है॥ ४॥

दो०— लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥ १९७॥

जो शुभ लक्षणोंके धाम, श्रीरामजीके प्यारे और सारे जगत्के आधार हैं, गुरु वसिष्ठजीने उनका 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठ नाम रखा॥ १९७॥

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥

गुरुजीने हृदयमें विचारकर ये नाम रखे [और कहा—] हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेदके तत्त्व (साक्षात् परात्पर भगवान्) हैं। जो मुनियोंके धन, भक्तोंके सर्वस्व और शिवजीके प्राण हैं, उन्होंने [इस समय तुम लोगोंके प्रेमवश] बाललीलाके रसमें सुख माना है॥ १॥

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥

बचपनसे ही श्रीरामचन्द्रजीको अपना परम हितैषी स्वामी जानकर लक्ष्मणजीने उनके चरणोंमें प्रीति जोड़ ली। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयोंमें स्वामी और सेवककी जिस प्रीतिकी प्रशंसा है वैसी प्रीति हो गयी॥ २॥

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥

श्याम और गौर शरीरवाली दोनों सुन्दर जोड़ियोंकी शोभाको देखकर माताएँ तृण तोड़ती हैं [जिसमें दीठ न लग जाय]। यों तो चारों ही पुत्र शील, रूप और गुणके धाम हैं, तो भी सुखके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी सबसे अधिक हैं॥ ३॥

हृदयँ अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना॥

उनके हृदयमें कृपारूपी चन्द्रमा प्रकाशित है। उनकी मनको हरनेवाली हँसी उस (कृपारूपी चन्द्रमा) की किरणोंको सूचित करती है। कभी गोदमें [लेकर] और कभी उत्तम पालनेमें [लिटाकर] माता 'प्यारे ललना!' कहकर दुलार करती है॥ ४॥

दो०— ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥ १९८॥

जो सर्वव्यापक, निरञ्जन (मायारहित), निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म हैं, वही प्रेम और भक्तिके वश कौसल्याजीकी गोदमें [खेल रहे] हैं॥ १९८॥

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥

उनके नील कमल और गम्भीर (जलसे भरे हुए) मेघके समान श्याम शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी शोभा है। लाल-लाल चरणकमलोंके नखोंकी [शुभ्र] ज्योति ऐसी मालूम होती है जैसे [लाल] कमलके पत्तोंपर मोती स्थिर हो गये हों॥ १॥

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥

[चरणतलोंमें] वज्र, ध्वजा और अङ्कुशके चिह्न शोभित हैं। नूपुर (पैंजनी) की ध्वनि सुनकर मुनियोंका भी मन मोहित हो जाता है। कमरमें करधनी और पेटपर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभिकी गम्भीरताको तो वही जानते हैं जिन्होंने उसे देखा है॥ २॥

भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥

बहुत-से आभूषणोंसे सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदयपर बाघके नखकी बहुत ही निराली छटा है। छातीपर रत्नोंसे युक्त मणियोंके हारकी शोभा और ब्राह्मण (भृगु) के चरणचिह्नको देखते ही मन लुभा जाता है॥ ३॥

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥

कण्ठ शङ्खके समान (उतार-चढ़ाववाला, तीन रेखाओंसे सुशोभित) है और ठोड़ी बहुत ही सुन्दर है। मुखपर असंख्य कामदेवोंकी छटा छा रही है। दो-दो सुन्दर दँतुलियाँ हैं, लाल-लाल ओठ हैं। नासिका और तिलक [के सौन्दर्य] का तो वर्णन ही कौन कर सकता है॥ ४॥

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥

सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं, मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्मके समयसे रखे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माताने बहुत प्रकारसे बनाकर सँवार दिया है॥ ५॥

पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥

शरीरपर पीली झँगुली पहनायी हुई है। उनका घुटनों और हाथोंके बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। उनके रूपका वर्णन वेद और शेषजी भी नहीं कर सकते। उसे वही जानता है जिसने कभी स्वप्नमें भी देखा हो॥ ६॥

दो०— सुख संदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत॥ १९९॥

जो सुखके पुञ्ज, मोहसे परे तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे अतीत हैं, वे भगवान् दशरथ-कौसल्याके अत्यन्त प्रेमके वश होकर पवित्र बाललीला करते हैं॥ १९९॥

एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी॥

इस प्रकार [सम्पूर्ण] जगत्के माता-पिता श्रीरामजी अवधपुरके निवासियोंको सुख देते हैं। जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति जोड़ी है, हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है [कि भगवान् उनके प्रेमवश बाललीला करके उन्हें आनन्द दे रहे हैं]॥ १॥

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे॥

श्रीरघुनाथजीसे विमुख रहकर मनुष्य चाहे करोड़ों उपाय करे, परन्तु उसका संसारबन्धन कौन छुड़ा सकता है। जिसने सब चराचर जीवोंको अपने वशमें कर रखा है, वह माया भी प्रभुसे भय खाती है॥ २॥

भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही॥
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥

भगवान् उस मायाको भौंहके इशारेपर नचाते हैं। ऐसे प्रभुको छोड़कर कहो, [और] किसका भजन किया जाय। मन, वचन और कर्मसे चतुराई छोड़कर भजते ही श्रीरघुनाथजी कृपा करेंगे॥ ३॥

एहि बिधि सिसुबिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा॥
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै॥

इस प्रकारसे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने बालक्रीड़ा की और समस्त नगरनिवासियोंको सुख दिया। कौसल्याजी कभी उन्हें गोदमें लेकर हिलाती-डुलाती और कभी पालनेमें लिटाकर झुलाती थीं॥ ४॥

दो०— प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान॥ २००॥

प्रेममें मग्न कौसल्याजी रात और दिनका बीतना नहीं जानती थीं। पुत्रके स्नेहवश माता उनके बालचरित्रोंका गान किया करतीं॥ २००॥

एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥

एक बार माताने श्रीरामचन्द्रजीको स्नान कराया और शृंगार करके पालनेपर पौढ़ा दिया। फिर अपने कुलके इष्टदेव भगवान्‌की पूजाके लिये स्नान किया॥ १॥

करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥

पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और स्वयं वहाँ गयी, जहाँ रसोई बनायी गयी थी। फिर माता वहीं (पूजाके स्थानमें) लौट आयी, और वहाँ आनेपर पुत्रको [इष्टदेव भगवान्‌के लिये चढ़ाये हुए नैवेद्यका] भोजन करते देखा॥ २॥

गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥

माता भयभीत होकर (पालनेमें सोया था, यहाँ किसने लाकर बैठा दिया, इस बातसे डरकर) पुत्रके पास गयी, तो वहाँ बालकको सोया हुआ देखा। फिर [पूजा-स्थानमें लौटकर] देखा कि वही पुत्र वहाँ [भोजन कर रहा] है। उनके हृदयमें कम्प होने लगा और मनको धीरज नहीं होता॥ ३॥

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

[वह सोचने लगी कि] यहाँ और वहाँ मैंने दो बालक देखे। यह मेरी बुद्धिका भ्रम है या और कोई विशेष कारण है? प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने माताको घबड़ायी हुई देखकर मधुर मुसकानसे हँस दिया॥ ४॥

दो०— देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥ २०१॥

फिर उन्होंने माताको अपना अखण्ड अद्भुत रूप दिखलाया, जिसके एक-एक रोममें करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं॥ २०१॥

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ॥

अगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, बहुत-से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव देखे। और वे पदार्थ भी देखे जो कभी सुने भी न थे॥ १॥

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही॥

सब प्रकारसे बलवती मायाको देखा कि वह [भगवान्‌के सामने] अत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े खड़ी है। जीवको देखा, जिसे वह माया नचाती है और [फिर] भक्तिको देखा, जो उस जीवको [मायासे] छुड़ा देती है॥ २॥

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा॥
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥

[माताका] शरीर पुलकित हो गया, मुखसे वचन नहीं निकलता। तब आँखें मूँदकर उसने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाया। माताको आश्चर्यचकित देखकर खरके शत्रु श्रीरामजी फिर बालरूप हो गये॥ ३॥

अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥

[मातासे] स्तुति भी नहीं की जाती। वह डर गयी कि मैंने जगत्पिता परमात्माको पुत्र करके जाना। श्रीहरिने माताको बहुत प्रकारसे समझाया [और कहा—] हे माता! सुनो, यह बात कहींपर कहना नहीं॥ ४॥

दो०— बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥ २०२॥

कौसल्याजी बार-बार हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि हे प्रभो! मुझे आपकी माया अब कभी न व्यापे॥ २०२॥

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा॥
कछुक काल बीतें सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई॥

भगवान्‌ने बहुत प्रकारसे बाललीलाएँ कीं और अपने सेवकोंको अत्यन्त आनन्द दिया। कुछ समय बीतनेपर चारों भाई बड़े होकर कुटुम्बियोंको सुख देनेवाले हुए॥ १॥

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥

तब गुरुजीने जाकर चूड़ाकर्म-संस्कार किया। ब्राह्मणोंने फिर बहुत-सी दक्षिणा पायी। चारों सुन्दर राजकुमार बड़े ही मनोहर अपार चरित्र करते फिरते हैं॥ २॥

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

जो मन, वचन और कर्मसे अगोचर हैं, वही प्रभु दशरथजीके आँगनमें विचर रहे हैं। भोजन करनेके समय जब राजा बुलाते हैं, तब वे अपने बालसखाओंके समाजको छोड़कर नहीं आते॥ ३॥

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

कौसल्याजी जब बुलाने जाती हैं, तब प्रभु ठुमुक-ठुमुक भाग चलते हैं। जिनका वेद 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर निरूपण करते हैं और शिवजीने जिनका अन्त नहीं पाया, माता उन्हें हठपूर्वक पकड़नेके लिये दौड़ती हैं॥ ४॥

धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए॥

वे शरीरमें धूल लपेटे हुए आये और राजाने हँसकर उन्हें गोदमें बैठा लिया॥ ५॥

दो०— भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥ २०३॥

भोजन करते हैं पर चित्त चञ्चल है। अवसर पाकर मुँहमें दही-भात लपटाये किलकारी मारते हुए इधर-उधर भाग चले॥ २०३॥

बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता॥

श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत ही सरल (भोली) और सुन्दर (मनभावनी) बाललीलाओंका सरस्वती, शेषजी, शिवजी और वेदोंने गान किया है। जिनका मन इन लीलाओंमें अनुरक्त नहीं हुआ, विधाताने उन मनुष्योंको वञ्चित कर दिया (नितान्त भाग्यहीन बनाया)॥ १॥

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

ज्यों ही सब भाई कुमारावस्थाके हुए, त्यों ही गुरु, पिता और माताने उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया। श्रीरघुनाथजी [भाइयोंसहित] गुरुके घरमें विद्या पढ़ने गये और थोड़े ही समयमें उनको सब विद्याएँ आ गयीं॥ २॥

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥

चारों वेद जिनके स्वाभाविक श्वास हैं, वे भगवान् पढ़ें यह बड़ा कौतुक (अचरज) है। चारों भाई विद्या, विनय, गुण और शीलमें [बड़े] निपुण हैं और सब राजाओंकी लीलाओंके ही खेल खेलते हैं॥ ३॥

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

हाथोंमें बाण और धनुष बहुत ही शोभा देते हैं। रूप देखते ही चराचर (जड-चेतन) मोहित हो जाते हैं। वे सब भाई जिन गलियोंमें खेलते [हुए निकलते] हैं, उन गलियोंके सभी स्त्री-पुरुष उनको देखकर स्नेहसे शिथिल हो जाते हैं अथवा ठिठककर रह जाते हैं॥ ४॥

दो०— कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥ २०४॥

कोसलपुरके रहनेवाले स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बालक सभीको कृपालु श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय लगते हैं॥ २०४॥

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी॥

श्रीरामचन्द्रजी भाइयों और इष्ट-मित्रोंको बुलाकर साथ ले लेते हैं और नित्य

वनमें जाकर शिकार खेलते हैं। मनमें पवित्र समझकर मृगोंको मारते हैं और प्रतिदिन लाकर राजा (दशरथजी) को दिखलाते हैं॥ १॥

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥

जो मृग श्रीरामजीके बाणसे मारे जाते थे, वे शरीर छोड़कर देवलोकको चले जाते थे। श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाइयों और सखाओंके साथ भोजन करते हैं और माता-पिताकी आज्ञाका पालन करते हैं॥ २॥

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥

जिस प्रकार नगरके लोग सुखी हों, कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी वही संयोग (लीला) करते हैं। वे मन लगाकर वेद-पुराण सुनते हैं और फिर स्वयं छोटे भाइयोंको समझाकर कहते हैं॥ ३॥

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

श्रीरघुनाथजी प्रात:काल उठकर माता-पिता और गुरुको मस्तक नवाते हैं और आज्ञा लेकर नगरका काम करते हैं। उनके चरित्र देख-देखकर राजा मनमें बड़े हर्षित होते हैं॥ ४॥

दो०— ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥ २०५॥

जो व्यापक, अकल (निरवयव), इच्छारहित, अजन्मा और निर्गुण हैं; तथा जिनका न नाम है न रूप, वही भगवान् भक्तोंके लिये नाना प्रकारके अनुपम (अलौकिक) चरित्र करते हैं॥ २०५॥

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥
बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥

यह सब चरित्र मैंने गाकर (बखानकर) कहा। अब आगेकी कथा मन लगाकर सुनो। ज्ञानी महामुनि विश्वामित्रजी वनमें शुभ आश्रम (पवित्र स्थान) जानकर बसते थे,॥ १॥

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

जहाँ वे मुनि जप, यज्ञ और योग करते थे, परन्तु मारीच और सुबाहुसे बहुत डरते थे। यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि [बहुत] दुःख पाते थे॥ २॥

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी॥
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥

गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीके मनमें चिन्ता छा गयी कि ये पापी राक्षस भगवान्‌के [मारे] बिना न मरेंगे। तब श्रेष्ठ मुनिने मनमें विचार किया कि प्रभुने पृथ्वीका भार हरनेके लिये अवतार लिया है॥ ३॥

एहूँ मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

इसी बहाने जाकर मैं उनके चरणोंका दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाइयोंको ले आऊँ। [अहा!] जो ज्ञान, वैराग्य और सब गुणोंके धाम हैं, उन प्रभुको मैं नेत्र भरकर देखूँगा॥ ४॥

दो०— बहुबिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार॥ २०६॥

बहुत प्रकारसे मनोरथ करते हुए जानेमें देर नहीं लगी। सरयूजीके जलमें स्नान करके वे राजाके दरवाजेपर पहुँचे॥ २०६॥

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥

राजाने जब मुनिका आना सुना, तब वे ब्राह्मणोंके समाजको साथ लेकर मिलने गये और दण्डवत् करके मुनिका सम्मान करते हुए उन्हें लाकर अपने आसनपर बैठाया॥ १॥

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा॥

चरणोंको धोकर बहुत पूजा की और कहा—मेरे समान धन्य आज दूसरा कोई नहीं है। फिर अनेक प्रकारके भोजन करवाये, जिससे श्रेष्ठ मुनिने अपने हृदयमें बहुत ही हर्ष प्राप्त किया॥ २॥

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

फिर राजाने चारों पुत्रोंको मुनिके चरणोंपर डाल दिया (उनसे प्रणाम कराया)। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मुनि अपनी देहकी सुधि भूल गये। वे श्रीरामजीके मुखकी शोभा देखते ही ऐसे मग्न हो गये, मानो चकोर पूर्ण चन्द्रमाको देखकर लुभा गया हो॥ ३॥

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

तब राजाने मनमें हर्षित होकर ये वचन कहे—हे मुनि! इस प्रकार कृपा तो

आपने कभी नहीं की। आज किस कारणसे आपका शुभागमन हुआ? कहिये, मैं उसे पूरा करनेमें देर नहीं लगाऊँगा॥ ४॥

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

[मुनिने कहा—] हे राजन्! राक्षसोंके समूह मुझे बहुत सताते हैं। इसीलिये मैं तुमसे कुछ माँगने आया हूँ। छोटे भाईसहित श्रीरघुनाथजीको मुझे दो। राक्षसोंके मारे जानेपर मैं सनाथ (सुरक्षित) हो जाऊँगा॥ ५॥

दो०— देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान॥ २०७॥

हे राजन्! प्रसन्न मनसे इनको दो, मोह और अज्ञानको छोड़ दो। हे स्वामी! इससे तुमको धर्म और सुयशकी प्राप्ति होगी और इनका परम कल्याण होगा॥ २०७॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥

इस अत्यन्त अप्रिय वाणीको सुनकर राजाका हृदय काँप उठा और उनके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी। [उन्होंने कहा—] हे ब्राह्मण! मैंने चौथेपनमें चार पुत्र पाये हैं, आपने विचारकर बात नहीं कही॥ १॥

मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥

हे मुनि! आप पृथ्वी, गौ, धन और खजाना माँग लीजिये, मैं आज बड़े हर्षके साथ अपना सर्वस्व दे दूँगा। देह और प्राणसे अधिक प्यारा कुछ भी नहीं होता, मैं उसे भी एक पलमें दे दूँगा॥ २॥

सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा॥

सभी पुत्र मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं; उनमें भी हे प्रभो! रामको तो [किसी प्रकार भी] देते नहीं बनता। कहाँ अत्यन्त डरावने और क्रूर राक्षस और कहाँ परम किशोर अवस्थाके (बिलकुल सुकुमार) मेरे सुन्दर पुत्र!॥ ३॥

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी॥
तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥

प्रेम-रसमें सनी हुई राजाकी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि विश्वामित्रजीने हृदयमें बड़ा हर्ष माना। तब वसिष्ठजीने राजाको बहुत प्रकारसे समझाया, जिससे राजाका सन्देह नाशको प्राप्त हुआ॥ ४॥

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

राजाने बड़े ही आदरसे दोनों पुत्रोंको बुलाया और हृदयसे लगाकर बहुत प्रकारसे उन्हें शिक्षा दी। [फिर कहा—] हे नाथ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं। हे मुनि! [अब] आप ही इनके पिता हैं, दूसरा कोई नहीं॥ ५॥

दो०— सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥ २०८ (क)॥

राजाने बहुत प्रकारसे आशीर्वाद देकर पुत्रोंको ऋषिके हवाले कर दिया। फिर प्रभु माताके महलमें गये और उनके चरणोंमें सिर नवाकर चले॥ २०८ (क)॥

सो०— पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥ २०८ (ख)॥

पुरुषोंमें सिंहरूप दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) मुनिका भय हरनेके लिये प्रसन्न होकर चले। वे कृपाके समुद्र, धीरबुद्धि और सम्पूर्ण विश्वके कारणके भी कारण हैं॥ २०८ (ख)॥

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसें बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥

भगवान्‌के लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं, नील कमल और तमालके वृक्षकी तरह श्याम शरीर है, कमरमें पीताम्बर [पहने] और सुन्दर तरकस कसे हुए हैं। दोनों हाथोंमें [क्रमशः] सुन्दर धनुष और बाण हैं॥ १॥

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥

श्याम और गौर वर्णके दोनों भाई परम सुन्दर हैं। विश्वामित्रजीको महान् निधि प्राप्त हो गयी। [वे सोचने लगे—] मैं जान गया कि प्रभु ब्रह्मण्यदेव (ब्राह्मणोंके भक्त) हैं। मेरे लिये भगवान्‌ने अपने पिताको भी छोड़ दिया॥ २॥

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

मार्गमें चले जाते हुए मुनिने ताड़काको दिखलाया। शब्द सुनते ही वह क्रोध करके दौड़ी। श्रीरामजीने एक ही बाणसे उसके प्राण हर लिये और दीन जानकर उसको निजपद (अपना दिव्य स्वरूप) दिया॥ ३॥

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥

तब ऋषि विश्वामित्रने प्रभुको मनमें विद्याका भण्डार समझते हुए भी [लीलाको

पूर्ण करनेके लिये] ऐसी विद्या दी, जिससे भूख-प्यास न लगे और शरीरमें अतुलित बल और तेजका प्रकाश हो ॥ ४ ॥

दो०— आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि ॥ २०९ ॥

सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके मुनि प्रभु श्रीरामजीको अपने आश्रममें ले आये; और उन्हें परम हितू जानकर भक्तिपूर्वक कन्द, मूल और फलका भोजन कराया ॥ २०९ ॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई ॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी ॥

सबेरे श्रीरघुनाथजीने मुनिसे कहा—आप जाकर निडर होकर यज्ञ कीजिये। यह सुनकर सब मुनि हवन करने लगे। आप (श्रीरामजी) यज्ञकी रखवालीपर रहे ॥ १ ॥

सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही ॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा ॥

यह समाचार सुनकर मुनियोंका शत्रु क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायकोंको लेकर दौड़ा। श्रीरामजीने बिना फलवाला बाण उसको मारा, जिससे वह सौ योजनके विस्तारवाले समुद्रके पार जा गिरा ॥ २ ॥

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी ॥

फिर सुबाहुको अग्निबाण मारा। इधर छोटे भाई लक्ष्मणजीने राक्षसोंकी सेनाका संहार कर डाला। इस प्रकार श्रीरामजीने राक्षसोंको मारकर ब्राह्मणोंको निर्भय कर दिया। तब सारे देवता और मुनि स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया ॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना ॥

श्रीरघुनाथजीने वहाँ कुछ दिन और रहकर ब्राह्मणोंपर दया की। भक्तिके कारण ब्राह्मणोंने उन्हें पुराणोंकी बहुत-सी कथाएँ कहीं, यद्यपि प्रभु सब जानते थे ॥ ४ ॥

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई ॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा ॥

तदनन्तर मुनिने आदरपूर्वक समझाकर कहा—हे प्रभो! चलकर एक चरित्र देखिये। रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी धनुषयज्ञ [की बात] सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीके साथ प्रसन्न होकर चले ॥ ५ ॥

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी ॥

मार्गमें एक आश्रम दिखायी पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी, कोई भी जीव-जन्तु नहीं था।

पत्थरकी एक शिलाको देखकर प्रभुने पूछा, तब मुनिने विस्तारपूर्वक सब कथा कही॥ ६॥

दो०— गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥ २१०॥

गौतम मुनिकी स्त्री अहल्या शापवश पत्थरकी देह धारण किये बड़े धीरजसे आपके चरणकमलोंकी धूलि चाहती है। हे रघुवीर! इसपर कृपा कीजिये॥ २१०॥

छं०— परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥

श्रीरामजीके पवित्र और शोकको नाश करनेवाले चरणोंका स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी। भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजीको देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी। अत्यन्त प्रेमके कारण वह अधीर हो गयी। उसका शरीर पुलकित हो उठा; मुखसे वचन कहनेमें नहीं आते थे। वह अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभुके चरणोंसे लिपट गयी और उसके दोनों नेत्रोंसे जल (प्रेम और आनन्दके आँसुओं) की धारा बहने लगी॥ १॥

धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥

फिर उसने मनमें धीरज धरकर प्रभुको पहचाना और श्रीरघुनाथजीकी कृपासे भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणीसे उसने [इस प्रकार] स्तुति प्रारम्भ की—हे ज्ञानसे जानने योग्य श्रीरघुनाथजी! आपकी जय हो! मैं [सहज ही] अपवित्र स्त्री हूँ; और हे प्रभो! आप जगत्‌को पवित्र करनेवाले, भक्तोंको सुख देनेवाले और रावणके शत्रु हैं। हे कमलनयन! हे संसार (जन्म-मृत्यु) के भयसे छुड़ानेवाले! मैं आपकी शरण आयी हूँ, [मेरी] रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ २॥

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

मुनिने जो मुझे शाप दिया, सो बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे अत्यन्त अनुग्रह [करके] मानती हूँ कि जिसके कारण मैंने संसारसे छुड़ानेवाले श्रीहरि (आप) को

नेत्र भरकर देखा। इसी (आपके दर्शन) को शंकरजी सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभो! मैं बुद्धिकी बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है। हे नाथ! मैं और कोई वर नहीं माँगती, केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मनरूपी भौंरा आपके चरणकमलकी रजके प्रेमरूपी रसका सदा पान करता रहे॥ ३॥

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनंद भरी॥

जिन चरणोंसे परमपवित्र देवनदी गङ्गाजी प्रकट हुईं, जिन्हें शिवजीने सिरपर धारण किया और जिन चरणकमलोंको ब्रह्माजी पूजते हैं, कृपालु हरि (आप) ने उन्हींको मेरे सिरपर रखा। इस प्रकार [स्तुति करती हुई] बार-बार भगवान्‌के चरणोंमें गिरकर, जो मनको बहुत ही अच्छा लगा, उस वरको पाकर गौतमकी स्त्री अहल्या आनन्दमें भरी हुई पतिलोकको चली गयी॥ ४॥

दो०— अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥ २११॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दीनबन्धु और बिना ही कारण दया करनेवाले हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, हे शठ [मन]! तू कपट-जंजाल छोड़कर उन्हींका भजन कर॥ २११॥

मासपारायण, सातवाँ विश्राम

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

श्रीरामजी और लक्ष्मणजी मुनिके साथ चले। वे वहाँ गये, जहाँ जगत्‌को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी थीं। महाराज गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीने वह सब कथा कह सुनायी जिस प्रकार देवनदी गङ्गाजी पृथ्वीपर आयी थीं॥ १॥

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन्हि पाए॥
हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर निअराया॥

तब प्रभुने ऋषियोंसहित [गङ्गाजीमें] स्नान किया। ब्राह्मणोंने भाँति-भाँतिके दान पाये। फिर मुनिवृन्दके साथ वे प्रसन्न होकर चले और शीघ्र ही जनकपुरके निकट पहुँच गये॥ २॥

पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥
बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥

श्रीरामजीने जब जनकपुरकी शोभा देखी, तब वे छोटे भाई लक्ष्मणसहित अत्यन्त हर्षित हुए। वहाँ अनेकों बावलियाँ, कुएँ, नदी और तालाब हैं, जिनमें अमृतके समान

जल है और मणियोंकी सीढ़ियाँ [बनी हुई] हैं॥ ३॥

गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता॥

मकरन्द-रससे मतवाले होकर भौंरे सुन्दर गुंजार कर रहे हैं। रंग-बिरंगे [बहुत-से] पक्षी मधुर शब्द कर रहे हैं। रंग-रंगके कमल खिले हैं। सदा (सब ऋतुओंमें) सुख देनेवाला शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन बह रहा है॥ ४॥

दो०— सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास॥ २१२॥

पुष्पवाटिका (फुलवारी), बाग और वन, जिनमें बहुत-से पक्षियोंका निवास है, फूलते, फलते और सुन्दर पत्तोंसे लदे हुए नगरके चारों ओर सुशोभित हैं॥ २१२॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई॥
चारु बजारु बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी॥

नगरकी सुन्दरताका वर्णन करते नहीं बनता। मन जहाँ जाता है; वहीं लुभा जाता (रम जाता) है। सुन्दर बाजार है, मणियोंसे बने हुए विचित्र छज्जे हैं, मानो ब्रह्माने उन्हें अपने हाथोंसे बनाया है॥ १॥

धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना॥
चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥

कुबेरके समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी सब प्रकारकी अनेक वस्तुएँ लेकर [दूकानोंमें] बैठे हैं। सुन्दर चौराहे और सुहावनी गलियाँ सदा सुगन्धसे सिंची रहती हैं॥ २॥

मंगलमय मंदिर सब केरें। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता॥

सबके घर मङ्गलमय हैं और उनपर चित्र कढ़े हुए हैं, जिन्हें मानो कामदेवरूपी चित्रकारने अंकित किया है। नगरके [सभी] स्त्री-पुरुष सुन्दर, पवित्र, साधु-स्वभाववाले, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान् हैं॥ ३॥

अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥

जहाँ जनकजीका अत्यन्त अनुपम (सुन्दर) निवासस्थान (महल) है, वहाँके विलास (ऐश्वर्य)को देखकर देवता भी थकित (स्तम्भित) हो जाते हैं [मनुष्योंकी तो बात ही क्या!]। कोट (राजमहलके परकोटे) को देखकर चित्त चकित हो जाता है, [ऐसा मालूम होता है] मानो उसने समस्त लोकोंकी शोभाको रोक (घेर) रखा है॥ ४॥

दो०— धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति॥ २१३॥

उज्ज्वल महलोंमें अनेक प्रकारके सुन्दर रीतिसे बने हुए मणिजटित सोनेकी जरीके परदे लगे हैं। सीताजीके रहनेके सुन्दर महलकी शोभाका वर्णन किया ही कैसे जा सकता है॥ २१३॥

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला॥

राजमहलके सब दरवाजे (फाटक) सुन्दर हैं, जिनमें वज्रके (मजबूत अथवा हीरोंके चमकते हुए) किवाड़ लगे हैं। वहाँ [मातहत] राजाओं, नटों, मागधों और भाटोंकी भीड़ लगी रहती है। घोड़ों और हाथियोंके लिये बहुत बड़ी-बड़ी घुड़शालें और गजशालाएँ (फीलखाने) बनी हुई हैं; जो सब समय घोड़े, हाथी और रथोंसे भरी रहती हैं॥ १॥

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥

बहुत-से शूरवीर, मन्त्री और सेनापति हैं। उन सबके घर भी राजमहल-सरीखे ही हैं। नगरके बाहर तालाब और नदीके निकट जहाँ-तहाँ बहुत-से राजालोग उतरे हुए (डेरा डाले हुए) हैं॥ २॥

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना॥

[वहीं] आमोंका एक अनुपम बाग देखकर, जहाँ सब प्रकारके सुभीते थे और जो सब तरहसे सुहावना था, विश्वामित्रजीने कहा—हे सुजान रघुवीर! मेरा मन कहता है कि यहीं रहा जाय॥ ३॥

भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनिबृंद समेता॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥

कृपाके धाम श्रीरामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा स्वामिन्!' कहकर वहीं मुनियोंके समूहके साथ ठहर गये। मिथिलापति जनकजीने जब यह समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्र आये हैं,॥ ४॥

दो०— संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति॥ २१४॥

तब उन्होंने पवित्र हृदयके (ईमानदार, स्वामिभक्त) मन्त्री, बहुत-से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु (शतानन्दजी) और अपनी जातिके श्रेष्ठ लोगोंको साथ लिया और इस प्रकार प्रसन्नताके साथ राजा मुनियोंके स्वामी विश्वामित्रजीसे मिलने चले॥ २१४॥

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥

राजाने मुनिके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। मुनियोंके स्वामी विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। फिर सारी ब्राह्मणमण्डलीको आदरसहित प्रणाम किया और अपना बड़ा भाग्य जानकर राजा आनन्दित हुए॥ १॥

कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई॥

बार-बार कुशलप्रश्न करके विश्वामित्रजीने राजाको बैठाया। उसी समय दोनों भाई आ पहुँचे, जो फुलवाड़ी देखने गये थे॥ २॥

स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए॥

सुकुमार किशोर अवस्थावाले, श्याम और गौर वर्णके दोनों कुमार नेत्रोंको सुख देनेवाले और सारे विश्वके चित्तको चुरानेवाले हैं। जब रघुनाथजी आये तब सभी [उनके रूप एवं तेजसे प्रभावित होकर] उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्रजीने उनको अपने पास बैठा लिया॥ ३॥

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

दोनों भाइयोंको देखकर सभी सुखी हुए। सबके नेत्रोंमें जल भर आया (आनन्द और प्रेमके आँसू उमड़ पड़े) और शरीर रोमाञ्चित हो उठे। रामजीकी मधुर मनोहर मूर्तिको देखकर विदेह (जनक) विशेषरूपसे विदेह (देहकी सुध-बुधसे रहित) हो गये॥ ४॥

दो०— प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥ २१५॥

मनको प्रेममें मग्न जान राजा जनकने विवेकका आश्रय लेकर धीरज धारण किया और मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर गद्‌गद (प्रेमभरी) गम्भीर वाणीसे कहा—॥ २१५॥

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥

हे नाथ! कहिये, ये दोनों सुन्दर बालक मुनिकुलके आभूषण हैं या किसी राजवंशके पालक? अथवा जिसका वेदोंने 'नेति' कहकर गान किया है कहीं वह ब्रह्म तो युगलरूप धरकर नहीं आया है?॥ १॥

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥

मेरा मन जो स्वभावसे ही वैराग्यरूप [बना हुआ] है, [इन्हें देखकर] इस तरह मुग्ध हो रहा है जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर। हे प्रभो! इसलिये मैं आपसे सत्य (निश्छल) भावसे पूछता हूँ। हे नाथ! बताइये, छिपाव न कीजिये॥ २॥

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥

इनको देखते ही अत्यन्त प्रेमके वश होकर मेरे मनने जबर्दस्ती ब्रह्मसुखको त्याग दिया है। मुनिने हँसकर कहा—हे राजन्! आपने ठीक (यथार्थ ही) कहा। आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता॥ ३॥

ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी॥
रघुकुल मनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए॥

जगत्में जहाँतक (जितने भी) प्राणी हैं, ये सभीको प्रिय हैं। मुनिकी [रहस्यभरी] वाणी सुनकर श्रीरामजी मन-ही-मन मुसकराते हैं (हँसकर मानो संकेत करते हैं कि रहस्य खोलिये नहीं)। [तब मुनिने कहा—] ये रघुकुलमणि महाराज दशरथके पुत्र हैं। मेरे हितके लिये राजाने इन्हें मेरे साथ भेजा है॥ ४॥

दो०— रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥ २१६॥

ये राम और लक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील और बलके धाम हैं। सारा जगत् [इस बातका] साक्षी है कि इन्होंने युद्धमें असुरोंको जीतकर मेरे यज्ञकी रक्षा की है॥ २१६॥

मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँद दाता॥

राजाने कहा—हे मुनि! आपके चरणोंके दर्शन कर मैं अपना पुण्य-प्रभाव कह नहीं सकता। ये सुन्दर श्याम और गौर वर्णके दोनों भाई आनन्दको भी आनन्द देनेवाले हैं॥ १॥

इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥

इनकी आपसकी प्रीति बड़ी पवित्र और सुहावनी है, वह मनको बहुत भाती है, पर [वाणीसे] कही नहीं जा सकती। विदेह (जनकजी) आनन्दित होकर कहते हैं—हे नाथ! सुनिये, ब्रह्म और जीवकी तरह इनमें स्वाभाविक प्रेम है॥ २॥

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू॥

राजा बार-बार प्रभुको देखते हैं (दृष्टि वहाँसे हटना ही नहीं चाहती)। [प्रेमसे] शरीर पुलकित हो रहा है और हृदयमें बड़ा उत्साह है। [फिर] मुनिकी प्रशंसा करके और उनके चरणोंमें सिर नवाकर राजा उन्हें नगरमें लिवा चले॥ ३॥

सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई॥

एक सुन्दर महल जो सब समय (सभी ऋतुओंमें) सुखदायक था, वहाँ राजाने उन्हें ले जाकर ठहराया। तदनन्तर सब प्रकारसे पूजा और सेवा करके राजा विदा माँगकर अपने घर गये॥ ४॥

दो०— रिषय संग रघुबंस मनि करि भोजनु बिश्रामु।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु॥ २१७॥

रघुकुलके शिरोमणि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऋषियोंके साथ भोजन और विश्राम करके भाई लक्ष्मणसमेत बैठे। उस समय पहरभर दिन रह गया था॥ २१७॥

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥

लक्ष्मणजीके हृदयमें विशेष लालसा है कि जाकर जनकपुर देख आवें। परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका डर है और फिर मुनिसे भी सकुचाते हैं। इसलिये प्रकटमें कुछ नहीं कहते; मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं॥ १॥

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियँ हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥

[अन्तर्यामी] श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाईके मनकी दशा जान ली, [तब] उनके हृदयमें भक्तवत्सलता उमड़ आयी। वे गुरुकी आज्ञा पाकर बहुत ही विनयके साथ सकुचाते हुए मुसकराकर बोले—॥ २॥

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥

हे नाथ! लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं, किन्तु प्रभु (आप) के डर और संकोचके कारण स्पष्ट नहीं कहते। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं इनको नगर दिखलाकर तुरंत ही [वापस] ले आऊँ॥ ३॥

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥

यह सुनकर मुनीश्वर विश्वामित्रजीने प्रेमसहित वचन कहे—हे राम! तुम नीतिकी रक्षा कैसे न करोगे; हे तात! तुम धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाले और प्रेमके वशीभूत होकर सेवकोंको सुख देनेवाले हो॥ ४॥

दो०— जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥ २१८॥

सुखके निधान दोनों भाई जाकर नगर देख आओ। अपने सुन्दर मुख दिखलाकर सब [नगर-निवासियों] के नेत्रोंको सफल करो॥ २१८॥

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥
बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा॥

सब लोकोंके नेत्रोंको सुख देनेवाले दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंकी वन्दना करके चले। बालकोंके झुंड इन [के सौन्दर्य] की अत्यन्त शोभा देखकर साथ लग गये। उनके नेत्र और मन [इनकी माधुरीपर] लुभा गये॥ १॥

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥

[दोनों भाइयोंके] पीले रंगके वस्त्र हैं, कमरके [पीले] दुपट्टोंमें तरकस बँधे हैं। हाथोंमें सुन्दर धनुष-बाण सुशोभित हैं। [श्याम और गौर वर्णके] शरीरोंके अनुकूल (अर्थात् जिसपर जिस रंगका चन्दन अधिक फबे उसपर उसी रंगके) सुन्दर चन्दनकी खौर लगी है। साँवरे और गोरे [रंग] की मनोहर जोड़ी है॥ २॥

केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नागमनि माला॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय मोचन॥

सिंहके समान (पुष्ट) गर्दन (गलेका पिछला भाग) है; विशाल भुजाएँ हैं। [चौड़ी] छातीपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ताकी माला है। सुन्दर लाल कमलके समान नेत्र हैं। तीनों तापोंसे छुड़ानेवाला चन्द्रमाके समान मुख है॥ ३॥

कानन्हि कनक फूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी॥

कानोंमें सोनेके कर्णफूल [अत्यन्त] शोभा दे रहे हैं और देखते ही [देखनेवालेके] चित्तको मानो चुरा लेते हैं। उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है और भौंहें तिरछी एवं सुन्दर हैं। [माथेपर] तिलककी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं मानो [मूर्तिमती] शोभापर मुहर लगा दी गयी है॥ ४॥

दो०— रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस॥ २१९॥

सिरपर सुन्दर चौकोनी टोपियाँ [दिये] हैं, काले और घुँघराले बाल हैं। दोनों भाई नखसे लेकर शिखातक (एड़ीसे चोटीतक) सुन्दर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिये वैसी ही है॥ २१९॥

देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

जब पुरवासियोंने यह समाचार पाया कि दोनों राजकुमार नगर देखनेके लिये आये हैं, तब वे सब घर-बार और सब काम-काज छोड़कर ऐसे दौड़े मानो दरिद्री [धनका] खजाना लूटने दौड़े हों॥ १॥

निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई॥
जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥

स्वभावहीसे सुन्दर दोनों भाइयोंको देखकर वे लोग नेत्रोंका फल पाकर सुखी हो रहे हैं। युवती स्त्रियाँ घरके झरोखोंसे लगी हुई प्रेमसहित श्रीरामचन्द्रजीके रूपको देख रही हैं॥ २॥

कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥

वे आपसमें बड़े प्रेमसे बातें कर रही हैं—हे सखी! इन्होंने करोड़ों कामदेवोंकी छबिको जीत लिया है। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियोंमें ऐसी शोभा तो कहीं सुननेमें भी नहीं आती॥ ३॥

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥

भगवान् विष्णुके चार भुजाएँ हैं, ब्रह्माजीके चार मुख हैं, शिवजीका विकट (भयानक) वेष है और उनके पाँच मुँह हैं। हे सखी! दूसरा देवता भी कोई ऐसा नहीं है जिसके साथ इस छबिकी उपमा दी जाय॥ ४॥

दो०— **बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।**
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥ २२०॥

इनकी किशोर अवस्था है, ये सुन्दरताके घर, साँवले और गोरे रंगके तथा सुखके धाम हैं। इनके अङ्ग-अङ्गपर करोड़ों-अरबों कामदेवोंको निछावर कर देना चाहिये॥ २२०॥

कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी॥

हे सखी! [भला] कहो तो ऐसा कौन शरीरधारी होगा जो इस रूपको देखकर मोहित न हो जाय (अर्थात् यह रूप जड़-चेतन सबको मोहित करनेवाला है)। [तब] कोई दूसरी सखी प्रेमसहित कोमल वाणीसे बोली—हे सयानी! मैंने जो सुना है उसे सुनो—॥ १॥

ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे॥

ये दोनों [राजकुमार] महाराज दशरथजीके पुत्र हैं! बाल राजहंसोंका-सा सुन्दर जोड़ा है। ये मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाले हैं, इन्होंने युद्धके मैदानमें राक्षसोंको मारा है॥ २॥

स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मदु मोचन॥
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी॥

जिनका श्याम शरीर और सुन्दर कमल-जैसे नेत्र हैं, जो मारीच और सुबाहुके मदको चूर करनेवाले और सुखकी खान हैं और जो हाथमें धनुष-बाण लिये हुए हैं, वे कौसल्याजीके पुत्र हैं; इनका नाम राम है॥ ३॥

गौर किसोर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें॥
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥

जिनका रंग गोरा और किशोर अवस्था है और जो सुन्दर वेष बनाये और हाथमें धनुष-बाण लिये श्रीरामजीके पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे इनके छोटे भाई हैं; उनका नाम लक्ष्मण है। हे सखी! सुनो, उनकी माता सुमित्रा हैं॥ ४॥

दो०— बिप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि।
आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि॥ २२१॥

दोनों भाई ब्राह्मण विश्वामित्रका काम करके और रास्तेमें मुनि गौतमकी स्त्री अहल्याका उद्धार करके यहाँ धनुषयज्ञ देखने आये हैं। यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं॥ २२१॥

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥

श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखकर कोई एक (दूसरी सखी) कहने लगी—यह वर जानकीके योग्य है। हे सखी! यदि कहीं राजा इन्हें देख ले, तो प्रतिज्ञा छोड़कर हठपूर्वक इन्हींसे विवाह कर देगा॥ १॥

कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई॥

किसीने कहा—राजाने इन्हें पहचान लिया है और मुनिके सहित इनका आदरपूर्वक सम्मान किया है। परन्तु हे सखी! राजा अपना प्रण नहीं छोड़ता। वह होनहारके वशीभूत होकर हठपूर्वक अविवेकका ही आश्रय लिये हुए है (प्रणपर अड़े रहनेकी मूर्खता नहीं छोड़ता)॥ २॥

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहाँ संदेहू॥

कोई कहती है—यदि विधाता भले हैं और सुना जाता है कि वे सबको उचित फल देते हैं, तो जानकीजीको यही वर मिलेगा। हे सखी! इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥
सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं एहि नातें॥

जो दैवयोगसे ऐसा संयोग बन जाय, तो हम सब लोग कृतार्थ हो जायँ। हे सखी! मेरे तो इसीसे इतनी अधिक आतुरता हो रही है कि इसी नाते कभी ये यहाँ आवेंगे॥ ४॥

दो०— **नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि।**
यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि॥ २२२॥

नहीं तो (विवाह न हुआ तो) हे सखी! सुनो, हमको इनके दर्शन दुर्लभ हैं। यह संयोग तभी हो सकता है जब हमारे पूर्वजन्मोंके बहुत पुण्य हों॥ २२२॥

बोली अपर कहेहु सखि नीका। एहिं बिआह अति हित सबही का॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा। ए स्यामल मृदु गात किसोरा॥

दूसरीने कहा—हे सखी! तुमने बहुत अच्छा कहा। इस विवाहसे सभीका परम हित है। किसीने कहा—शङ्करजीका धनुष कठोर है और ये साँवले राजकुमार कोमल शरीरके बालक हैं॥ १॥

सबु असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी॥
सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं॥

हे सयानी! सब असमंजस ही है। यह सुनकर दूसरी सखी कोमल वाणीसे कहने लगी—हे सखी! इनके सम्बन्धमें कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि ये देखनेमें तो छोटे हैं, पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है॥ २॥

परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें॥

जिनके चरणकमलोंकी धूलिका स्पर्श पाकर अहल्या तर गयी, जिसने बड़ा भारी पाप किया था, वे क्या शिवजीका धनुष बिना तोड़े रहेंगे। इस विश्वासको भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिये॥ ३॥

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं॥

जिस ब्रह्माने सीताको सँवारकर (बड़ी चतुराईसे) रचा है, उसीने विचारकर साँवला वर भी रच रखा है। उसके ये वचन सुनकर सब हर्षित हुईं और कोमल वाणीसे कहने लगीं—ऐसा ही हो॥ ४॥

दो०— **हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।**
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद॥ २२३॥

सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ समूह-की-समूह हृदयमें हर्षित होकर फूल बरसा रही हैं। जहाँ-जहाँ दोनों भाई जाते हैं, वहाँ-वहाँ परम आनन्द छा जाता है॥ २२३॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥

दोनों भाई नगरके पूरब ओर गये; जहाँ धनुषयज्ञके लिये [रंग] भूमि बनायी

गयी थी। बहुत लंबा-चौड़ा सुन्दर ढाला हुआ पक्का आँगन था, जिसपर सुन्दर और निर्मल वेदी सजायी गयी थी॥ १॥

चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछें समीप चहुँ पासा। अपर मंच मंडली बिलासा॥

चारों ओर सोनेके बड़े-बड़े मंच बने थे, जिनपर राजा लोग बैठेंगे। उनके पीछे समीप ही चारों ओर दूसरे मचानोंका मण्डलाकार घेरा सुशोभित था॥ २॥

कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई॥
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहुबरन बनाए॥

वह कुछ ऊँचा था और सब प्रकारसे सुन्दर था, जहाँ जाकर नगरके लोग बैठेंगे। उन्हींके पास विशाल एवं सुन्दर सफेद मकान अनेक रंगोंके बनाये गये हैं, ॥ ३॥

जहँ बैठें देखहिं सब नारी। जथाजोगु निज कुल अनुहारी॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥

जहाँ अपने-अपने कुलके अनुसार सब स्त्रियाँ यथायोग्य (जिसको जहाँ बैठना उचित है) बैठकर देखेंगी। नगरके बालक कोमल वचन कह-कहकर आदरपूर्वक प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको [यज्ञशालाकी] रचना दिखला रहे हैं॥ ४॥

दो०— सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात॥ २२४॥

सब बालक इसी बहाने प्रेमके वश होकर श्रीरामजीके मनोहर अङ्गोंको छूकर शरीरसे पुलकित हो रहे हैं और दोनों भाइयोंको देख-देखकर उनके हृदयमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है॥ २२४॥

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब बालकोंको प्रेमके वश जानकर [यज्ञभूमिके] स्थानोंकी प्रेमपूर्वक प्रशंसा की। [इससे बालकोंका उत्साह, आनन्द और प्रेम और भी बढ़ गया, जिससे] वे सब अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उन्हें बुला लेते हैं और [प्रत्येकके बुलानेपर] दोनों भाई प्रेमसहित उनके पास चले जाते हैं॥ १॥

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥

कोमल, मधुर और मनोहर वचन कहकर श्रीरामजी अपने छोटे भाई लक्ष्मणको [यज्ञभूमिकी] रचना दिखलाते हैं। जिनकी आज्ञा पाकर माया लव निमेष (पलक गिरनेके चौथाई समय) में ब्रह्माण्डोंके समूह रच डालती है, ॥ २॥

भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥

वही दीनोंपर दया करनेवाले श्रीरामजी भक्तिके कारण धनुषयज्ञशालाको चकित होकर (आश्चर्यके साथ) देख रहे हैं। इस प्रकार सब कौतुक (विचित्र रचना) देखकर वे गुरुके पास चले। देर हुई जानकर उनके मनमें डर है॥ ३॥

जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

जिनके भयसे डरको भी डर लगता है, वही प्रभु भजनका प्रभाव [जिसके कारण ऐसे महान् प्रभु भी भयका नाट्य करते हैं] दिखला रहे हैं। उन्होंने कोमल, मधुर और सुन्दर बातें कहकर बालकोंको जबर्दस्ती विदा किया॥ ४॥

दो०— सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥ २२५॥

फिर भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोचके साथ दोनों भाई गुरुके चरणकमलोंमें सिर नवाकर आज्ञा पाकर बैठे॥ २२५॥

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥

रात्रिका प्रवेश होते ही (सन्ध्याके समय) मुनिने आज्ञा दी, तब सबने सन्ध्यावन्दन किया। फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास कहते-कहते सुन्दर रात्रि दो पहर बीत गयी॥ १॥

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥

तब श्रेष्ठ मुनिने जाकर शयन किया। दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे जिनके चरणकमलोंके [दर्शन एवं स्पर्शके] लिये वैराग्यवान् पुरुष भी भाँति-भाँतिके जप और योग करते हैं,॥ २॥

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

वे ही दोनों भाई मानो प्रेमसे जीते हुए प्रेमपूर्वक गुरुजीके चरणकमलोंको दबा रहे हैं। मुनिने बार-बार आज्ञा दी, तब श्रीरघुनाथजीने जाकर शयन किया॥ ३॥

चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

श्रीरामजीके चरणोंको हृदयसे लगाकर भय और प्रेमसहित परम सुखका अनुभव करते हुए लक्ष्मणजी उनको दबा रहे हैं। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने बार-बार कहा—हे तात! [अब] सो जाओ। तब वे उन चरणकमलोंको हृदयमें धरकर लेट रहे॥ ४॥

दो०— उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥ २२६॥

रात बीतनेपर, मुर्गेका शब्द कानोंसे सुनकर लक्ष्मणजी उठे। जगत्‌के स्वामी सुजान श्रीरामचन्द्रजी भी गुरुसे पहले ही जाग गये॥ २२६॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहाये। फिर [सन्ध्या-अग्निहोत्रादि] नित्यकर्म समाप्त करके उन्होंने मुनिको मस्तक नवाया। [पूजाका] समय जानकर, गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले॥ १॥

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥

उन्होंने जाकर राजाका सुन्दर बाग देखा, जहाँ वसन्त-ऋतु लुभाकर रह गयी है। मनको लुभानेवाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगी उत्तम लताओंके मण्डप छाये हुए हैं॥ २॥

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥

नये पत्तों, फलों और फूलोंसे युक्त सुन्दर वृक्ष अपनी सम्पत्तिसे कल्पवृक्षको भी लजा रहे हैं। पपीहे, कोयल, तोते, चकोर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं और मोर सुन्दर नृत्य कर रहे हैं॥ ३॥

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

बागके बीचोबीच सुहावना सरोवर सुशोभित है, जिसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ विचित्र ढंगसे बनी हैं। उसका जल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगोंके कमल खिले हुए हैं, जलके पक्षी कलरव कर रहे हैं और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं॥ ४॥

दो०— बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत॥ २२७॥

बाग और सरोवरको देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भाई लक्ष्मणसहित हर्षित हुए। यह बाग [वास्तवमें] परम रमणीय है, जो [जगत्‌को सुख देनेवाले] श्रीरामचन्द्रजीको सुख दे रहा है॥ २२७॥

चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियोंसे पूछकर वे प्रसन्न मनसे पत्र-पुष्प लेने

लगे। उसी समय सीताजी वहाँ आयीं। माताने उन्हें गिरिजा (पार्वती) जीकी पूजा करनेके लिये भेजा था॥ १॥

संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥

साथमें सब सुन्दरी और सयानी सखियाँ हैं, जो मनोहर वाणीसे गीत गा रही हैं। सरोवरके पास गिरिजाजीका मन्दिर सुशोभित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता; देखकर मन मोहित हो जाता है॥ २॥

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥

सखियोंसहित सरोवरमें स्नान करके सीताजी प्रसन्न मनसे गिरिजाजीके मन्दिरमें गयीं। उन्होंने बड़े प्रेमसे पूजा की और अपने योग्य सुन्दर वर माँगा॥ ३॥

एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

एक सखी सीताजीका साथ छोड़कर फुलवाड़ी देखने चली गयी थी। उसने जाकर दोनों भाइयोंको देखा और प्रेममें विह्वल होकर वह सीताजीके पास आयी॥ ४॥

दो०— तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन॥ २२८॥

सखियोंने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर पुलकित है और नेत्रोंमें जल भरा है। सब कोमल वाणीसे पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नताका कारण बता॥ २२८॥

देखन बागु कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

[उसने कहा—] दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। किशोर अवस्थाके हैं और सब प्रकारसे सुन्दर हैं। वे साँवले और गोरे [रंगके] हैं; उनके सौन्दर्यको मैं कैसे बखानकर कहूँ। वाणी बिना नेत्रकी है और नेत्रोंके वाणी नहीं है॥ १॥

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली॥

यह सुनकर और सीताजीके हृदयमें बड़ी उत्कण्ठा जानकर सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हुईं। तब एक सखी कहने लगी—हे सखी! ये वही राजकुमार हैं जो सुना है कि कल विश्वामित्र मुनिके साथ आये हैं॥ २॥

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥

और जिन्होंने अपने रूपकी मोहिनी डालकर नगरके स्त्री-पुरुषोंको अपने वशमें

कर लिया है। जहाँ-तहाँ सब लोग उन्हींकी छबिका वर्णन कर रहे हैं। अवश्य [चलकर] उन्हें देखना चाहिये, वे देखने ही योग्य हैं॥ ३॥

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

उसके वचन सीताजीको अत्यन्त ही प्रिय लगे और दर्शनके लिये उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखीको आगे करके सीताजी चलीं। पुरानी प्रीतिको कोई लख नहीं पाता॥ ४॥

दो०— सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥ २२९॥

नारदजीके वचनोंका स्मरण करके सीताजीके मनमें पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। वे चकित होकर सब ओर इस तरह देख रही हैं मानो डरी हुई मृगछौनी इधर-उधर देख रही हो॥ २२९॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥

कंकण (हाथोंके कड़े), करधनी और पायजेबके शब्द सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हृदयमें विचारकर लक्ष्मणसे कहते हैं—[यह ध्वनि ऐसी आ रही है] मानो कामदेवने विश्वको जीतनेका संकल्प करके डंकेपर चोट मारी है॥ १॥

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

ऐसा कहकर श्रीरामजीने फिरकर उस ओर देखा। श्रीसीताजीके मुखरूपी चन्द्रमा [को निहारने] के लिये उनके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये (टकटकी लग गयी)। मानो निमि (जनकजीके पूर्वज) ने [जिनका सबकी पलकोंमें निवास माना गया है, लड़की-दामादके मिलन-प्रसङ्गको देखना उचित नहीं, इस भावसे] सकुचाकर पलकें छोड़ दीं, (पलकोंमें रहना छोड़ दिया, जिससे पलकोंका गिरना रुक गया)॥ २॥

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥

सीताजीकी शोभा देखकर श्रीरामजीने बड़ा सुख पाया। हृदयमें वे उसकी सराहना करते हैं, किन्तु मुखसे वचन नहीं निकलते। [वह शोभा ऐसी अनुपम है] मानो ब्रह्माने अपनी सारी निपुणताको मूर्तिमान् कर संसारको प्रकट करके दिखा दिया हो॥ ३॥

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी॥

वह (सीताजीकी शोभा) सुन्दरताको भी सुन्दर करनेवाली है [वह ऐसी मालूम होती है] मानो सुन्दरतारूपी घरमें दीपककी लौ जल रही हो। (अबतक सुन्दरतारूपी भवनमें अँधेरा था, वह भवन मानो सीताजीकी सुन्दरतारूपी दीपशिखाको पाकर जगमगा उठा है, पहलेसे भी अधिक सुन्दर हो गया है।) सारी उपमाओंको तो कवियोंने जूँठा कर रखा है। मैं जनकनन्दिनी श्रीसीताजीकी किससे उपमा दूँ॥ ४॥

दो०— सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि॥ २३०॥

[इस प्रकार] हृदयमें सीताजीकी शोभाका वर्णन करके और अपनी दशाको विचारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पवित्र मनसे अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे समयानुकूल वचन बोले—॥ २३०॥

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥

हे तात! यह वही जनकजीकी कन्या है जिसके लिये धनुषयज्ञ हो रहा है। सखियाँ इसे गौरीपूजनके लिये ले आयी हैं। यह फुलवाड़ीमें प्रकाश करती हुई फिर रही है॥ १॥

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥

जिसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर स्वभावसे ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है। वह सब कारण (अथवा उसका सब कारण) तो विधाता जानें। किन्तु हे भाई! सुनो, मेरे मङ्गलदायक (दाहिने) अंग फड़क रहे हैं॥ २॥

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

रघुवंशियोंका यह सहज (जन्मगत) स्वभाव है कि उनका मन कभी कुमार्गपर पैर नहीं रखता। मुझे तो अपने मनका अत्यन्त ही विश्वास है कि जिसने [जाग्रत्‌की कौन कहे] स्वप्नमें भी परायी स्त्रीपर दृष्टि नहीं डाली है॥ ३॥

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं॥

रणमें शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते (अर्थात् जो लड़ाईके मैदानसे भागते नहीं), परायी स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टिको नहीं खींच पातीं और भिखारी जिनके यहाँसे 'नाहीं' नहीं पाते (खाली हाथ नहीं लौटते), ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसारमें थोड़े हैं॥ ४॥

दो०— करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान॥ २३१॥

यों श्रीरामजी छोटे भाईसे बातें कर रहे हैं, पर मन सीताजीके रूपमें लुभाया हुआ उनके मुखरूपी कमलके छबिरूप मकरन्द-रसको भौंरेकी तरह पी रहा है॥ २३१॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता॥
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी॥

सीताजी चकित होकर चारों ओर देख रही हैं। मन इस बातकी चिन्ता कर रहा है कि राजकुमार कहाँ चले गये। बालमृग-नयनी (मृगके छौनेकी-सी आँखवाली) सीताजी जहाँ दृष्टि डालती हैं, वहाँ मानो श्वेत कमलोंकी कतार बरस जाती है॥ १॥

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

तब सखियोंने लताकी ओटमें सुन्दर श्याम और गौर कुमारोंको दिखलाया। उनके रूपको देखकर नेत्र ललचा उठे; वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो उन्होंने अपना खजाना पहचान लिया॥ २॥

थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

श्रीरघुनाथजीकी छबि देखकर नेत्र थकित (निश्चल) हो गये। पलकोंने भी गिरना छोड़ दिया। अधिक स्नेहके कारण शरीर विह्वल (बेकाबू) हो गया। मानो शरद् ऋतुके चन्द्रमाको चकोरी [बेसुध हुई] देख रही हो॥ ३॥

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥

नेत्रोंके रास्ते श्रीरामजीको हृदयमें लाकर चतुरशिरोमणि जानकीजीने पलकोंके किवाड़ लगा दिये (अर्थात् नेत्र मूँदकर उनका ध्यान करने लगीं)। जब सखियोंने सीताजीको प्रेमके वश जाना, तब वे मनमें सकुचा गयीं; कुछ कह नहीं सकती थीं॥ ४॥

दो०— लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥ २३२॥

उसी समय दोनों भाई लतामण्डप (कुञ्ज) मेंसे प्रकट हुए। मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलोंके पर्देको हटाकर निकले हों॥ २३२॥

सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥

दोनों सुन्दर भाई शोभाकी सीमा हैं। उनके शरीरकी आभा नीले और पीले कमलकी-सी है। सिरपर सुन्दर मोरपंख सुशोभित हैं। उनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियोंके गुच्छे लगे हैं॥ १॥

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए॥
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥

माथेपर तिलक और पसीनेकी बूँदें शोभायमान हैं। कानोंमें सुन्दर भूषणोंकी छबि छायी है। टेढ़ी भौंहें और घुँघराले बाल हैं। नये लाल कमलके समान रतनारे (लाल) नेत्र हैं॥ २॥

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥

ठोड़ी, नाक और गाल बड़े सुन्दर हैं, और हँसीकी शोभा मनको मोल लिये लेती है। मुखकी छबि तो मुझसे कही ही नहीं जाती, जिसे देखकर बहुत-से कामदेव लजा जाते हैं॥ ३॥

उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी सुठि लोना॥

वक्षःस्थलपर मणियोंकी माला है। शङ्खके सदृश सुन्दर गला है। कामदेवके हाथीके बच्चेकी सूँड़के समान (उतार-चढ़ाववाली एवं कोमल) भुजाएँ हैं, जो बलकी सीमा हैं। जिसके बायें हाथमें फूलोंसहित दोना है, हे सखि! वह साँवला कुँवर तो बहुत ही सलोना है॥ ४॥

दो०— केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥ २३३॥

सिंहकी-सी (पतली, लचीली) कमरवाले, पीताम्बर धारण किये हुए, शोभा और शीलके भण्डार, सूर्यकुलके भूषण श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सखियाँ अपने-आपको भूल गयीं॥ २३३॥

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू॥

एक चतुर सखी धीरज धरकर, हाथ पकड़कर सीताजीसे बोली—गिरिजाजीका ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजकुमारको क्यों नहीं देख लेतीं॥ १॥

सकुचि सीयँ तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा॥

तब सीताजीने सकुचाकर नेत्र खोले और रघुकुलके दोनों सिंहोंको अपने सामने [खड़े] देखा। नखसे शिखातक श्रीरामजीकी शोभा देखकर और फिर पिताका प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया॥ २॥

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥

जब सखियोंने सीताजीको परवश (प्रेमके वश) देखा, तब सब भयभीत होकर कहने लगीं—बड़ी देर हो गयी [अब चलना चाहिये]। कल इसी समय फिर आयेंगी, ऐसा कहकर एक सखी मनमें हँसी॥ ३॥

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातु भय मानी॥
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितुबस जाने॥

सखीकी यह रहस्यभरी वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयीं। देर हो गयी जान उन्हें माताका भय लगा। बहुत धीरज धरकर वे श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें ले आयीं, और [उनका ध्यान करती हुई] अपनेको पिताके अधीन जानकर लौट चलीं॥ ४॥

दो०— देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥ २३४॥

मृग, पक्षी और वृक्षोंको देखनेके बहाने सीताजी बार-बार घूम जाती हैं और श्रीरामजीकी छबि देख-देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है (अर्थात् बहुत ही बढ़ता जाता है)॥ २३४॥

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥

शिवजीके धनुषको कठोर जानकर वे विसूरती (मनमें विलाप करती) हुई हृदयमें श्रीरामजीकी साँवली मूर्तिको रखकर चलीं। (शिवजीके धनुषकी कठोरताका स्मरण आनेसे उन्हें चिन्ता होती थी कि ये सुकुमार रघुनाथजी उसे कैसे तोड़ेंगे, पिताके प्रणकी स्मृतिसे उनके हृदयमें क्षोभ था ही, इसलिये मनमें विलाप करने लगीं। प्रेमवश ऐश्वर्यकी विस्मृति हो जानेसे ही ऐसा हुआ; फिर भगवान्‌के बलका स्मरण आते ही वे हर्षित हो गयीं और साँवली छबिको हृदयमें धारण करके चलीं।) प्रभु श्रीरामजीने जब सुख, स्नेह, शोभा और गुणोंकी खान श्रीजानकीजीको जाती हुई जाना,॥ १॥

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥
गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥

तब परमप्रेमकी कोमल स्याही बनाकर उनके स्वरूपको अपने सुन्दर चित्तरूपी भित्तिपर चित्रित कर लिया। सीताजी पुनः भवानीजीके मन्दिरमें गयीं और उनके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर बोलीं—॥ २॥

जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता॥

हे श्रेष्ठ पर्वतोंके राजा हिमाचलकी पुत्री पार्वती! आपकी जय हो, जय हो; हे महादेवजीके मुखरूपी चन्द्रमाकी [ओर टकटकी लगाकर देखनेवाली] चकोरी! आपकी जय हो; हे हाथीके मुखवाले गणेशजी और छः मुखवाले स्वामिकार्तिकजीकी माता! हे जगज्जननी! हे बिजलीकी-सी कान्तियुक्त शरीरवाली! आपकी जय हो!॥ ३॥

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥

आपका न आदि है, न मध्य है और न अन्त है। आपके असीम प्रभावको वेद भी नहीं जानते। आप संसारको उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली हैं। विश्वको मोहित करनेवाली और स्वतन्त्ररूपसे विहार करनेवाली हैं॥ ४॥

दो०— **पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।**
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥ २३५॥

पतिको इष्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियोंमें हे माता! आपकी प्रथम गणना है। आपकी अपार महिमाको हजारों सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते॥ २३५॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी॥
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

हे [भक्तोंको मुँहमाँगा] वर देनेवाली! हे त्रिपुरके शत्रु शिवजीकी प्रिय पत्नी! आपकी सेवा करनेसे चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवि! आपके चरणकमलोंकी पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं॥ १॥

मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेहीं॥

मेरे मनोरथको आप भलीभाँति जानती हैं; क्योंकि आप सदा सबके हृदयरूपी नगरीमें निवास करती हैं। इसी कारण मैंने उसको प्रकट नहीं किया। ऐसा कहकर जानकीजीने उनके चरण पकड़ लिये॥ २॥

बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ॥

गिरिजाजी सीताजीके विनय और प्रेमके वशमें हो गयीं। उन (के गले) की माला खिसक पड़ी और मूर्ति मुसकरायी। सीताजीने आदरपूर्वक उस प्रसाद (माला) को सिरपर धारण किया। गौरीजीका हृदय हर्षसे भर गया और वे बोलीं— ॥ ३॥

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा॥

हे सीता! हमारी सच्ची आसीस सुनो, तुम्हारी मन:कामना पूरी होगी। नारदजीका वचन सदा पवित्र (संशय, भ्रम आदि दोषोंसे रहित) और सत्य है। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुमको मिलेगा॥ ४॥

छं०— **मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।**
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥

एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही स्वभावसे ही सुन्दर साँवला वर (श्रीरामचन्द्रजी) तुमको मिलेगा। वह दयाका खजाना और सुजान (सर्वज्ञ) है, तुम्हारे शील और स्नेहको जानता है। इस प्रकार श्रीगौरीजीका आशीर्वाद सुनकर जानकीजीसमेत सब सखियाँ हृदयमें हर्षित हुईं। तुलसीदासजी कहते हैं—भवानीजीको बार-बार पूजकर सीताजी प्रसन्न मनसे राजमहलको लौट चलीं।

सो०— जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥ २३६॥

गौरीजीको अनुकूल जानकर सीताजीके हृदयको जो हर्ष हुआ वह कहा नहीं जा सकता। सुन्दर मङ्गलोंके मूल उनके बायें अंग फड़कने लगे॥ २३६॥

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

हृदयमें सीताजीके सौन्दर्यकी सराहना करते हुए दोनों भाई गुरुजीके पास गये। श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रजीसे सब कुछ कह दिया। क्योंकि उनका सरल स्वभाव है, छल तो उसे छूता भी नहीं है॥ १॥

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे॥

फूल पाकर मुनिने पूजा की। फिर दोनों भाइयोंको आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। यह सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण सुखी हुए॥ २॥

करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥

श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी भोजन करके कुछ प्राचीन कथाएँ कहने लगे। [इतनेमें] दिन बीत गया और गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई सन्ध्या करने चले॥ ३॥

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥

[उधर] पूर्व दिशामें सुन्दर चन्द्रमा उदय हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने उसे सीताके मुखके समान देखकर सुख पाया। फिर मनमें विचार किया कि यह चन्द्रमा सीताजीके मुखके समान नहीं है॥ ४॥

दो०— जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक॥ २३७॥

खारे समुद्रमें तो इसका जन्म, फिर [उसी समुद्रसे उत्पन्न होनेके कारण] विष इसका भाई; दिनमें यह मलिन (शोभाहीन, निस्तेज) रहता है, और कलङ्की (काले दागसे युक्त) है। बेचारा गरीब चन्द्रमा सीताजीके मुखकी बराबरी कैसे पा सकता है?॥ २३७॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥

फिर यह घटता-बढ़ता है और विरहिणी स्त्रियोंको दुःख देनेवाला है; राहु अपनी सन्धिमें पाकर इसे ग्रस लेता है। चकवेको [चकवीके वियोगका] शोक देनेवाला और कमलका वैरी (उसे मुरझा देनेवाला) है। हे चन्द्रमा! तुझमें बहुत-से अवगुण हैं [जो सीताजीमें नहीं हैं]॥ १॥

बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी॥

अत: जानकीजीके मुखकी तुझे उपमा देनेमें बड़ा अनुचित कर्म करनेका दोष लगेगा। इस प्रकार चन्द्रमाके बहाने सीताजीके मुखकी छबिका वर्णन करके, बड़ी रात हो गयी जान, वे गुरुजीके पास चले॥ २॥

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥

मुनिके चरणकमलोंमें प्रणाम करके, आज्ञा पाकर उन्होंने विश्राम किया; रात बीतनेपर श्रीरघुनाथजी जागे और भाईको देखकर ऐसा कहने लगे—॥ ३॥

उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥
बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी॥

हे तात! देखो, कमल, चक्रवाक और समस्त संसारको सुख देनेवाला अरुणोदय हुआ है। लक्ष्मणजी दोनों हाथ जोड़कर प्रभुके प्रभावको सूचित करनेवाली कोमल वाणी बोले—॥ ४॥

दो०— अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन॥ २३८॥

अरुणोदय होनेसे कुमुदिनी सकुचा गयी और तारागणोंका प्रकाश फीका पड़ गया, जिस प्रकार आपका आना सुनकर सब राजा बलहीन हो गये हैं॥ २३८॥

नृप सब नखत करहिं उजिआरी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥

सब राजारूपी तारे उजाला (मन्द प्रकाश) करते हैं, पर वे धनुषरूपी महान् अन्धकारको हटा नहीं सकते। रात्रिका अन्त होनेसे जैसे कमल, चकवे, भौंरे और नाना प्रकारके पक्षी हर्षित हो रहे हैं॥ १॥

ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटें धनुष सुखारे॥
उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥

वैसे ही हे प्रभो! आपके सब भक्त धनुष टूटनेपर सुखी होंगे। सूर्य उदय हुआ, बिना ही परिश्रम अन्धकार नष्ट हो गया। तारे छिप गये, संसारमें तेजका प्रकाश हो गया॥ २॥

रबि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥

हे रघुनाथजी! सूर्यने अपने उदयके बहाने सब राजाओंको प्रभु (आप) का प्रताप दिखलाया है। आपकी भुजाओंके बलकी महिमाको उद्घाटित करने (खोलकर दिखाने) के लिये ही धनुष तोड़नेकी यह पद्धति प्रकट हुई है॥ ३॥

बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्यक्रिया करि गुरु पहिं आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए॥

भाईके वचन सुनकर प्रभु मुसकराये। फिर स्वभावसे ही पवित्र श्रीरामजीने शौचसे निवृत्त होकर स्नान किया और नित्यकर्म करके वे गुरुजीके पास आये। आकर उन्होंने गुरुजीके सुन्दर चरणकमलोंमें सिर नवाया॥ ४॥

सतानंदु तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए॥
जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई॥

तब जनकजीने शतानन्दजीको बुलाया और उन्हें तुरंत ही विश्वामित्र मुनिके पास भेजा। उन्होंने आकर जनकजीकी विनती सुनायी। विश्वामित्रजीने हर्षित होकर दोनों भाइयोंको बुलाया॥ ५॥

दो०— सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ॥ २३९॥

शतानन्दजीके चरणोंकी वन्दना करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गुरुजीके पास जा बैठे। तब मुनिने कहा—हे तात! चलो, जनकजीने बुला भेजा है॥ २३९॥

मासपारायण, आठवाँ विश्राम
नवाह्नपारायण, दूसरा विश्राम

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जस भाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥

चलकर सीताजीके स्वयंवरको देखना चाहिये। देखें ईश्वर किसको बड़ाई देते हैं। लक्ष्मणजीने कहा—हे नाथ! जिसपर आपकी कृपा होगी, वही बड़ाईका पात्र होगा (धनुष तोड़नेका श्रेय उसीको प्राप्त होगा)॥ १॥

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमख साला॥

इस श्रेष्ठ वाणीको सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए। सभीने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। फिर मुनियोंके समूहसहित कृपालु श्रीरामचन्द्रजी धनुषयज्ञशाला देखने चले॥ २॥

रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥

दोनों भाई रंगभूमिमें आये हैं, ऐसी खबर जब सब नगरनिवासियोंने पायी, तब बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी घर और काम-काजको भुलाकर चल दिये॥ ३॥

देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥

जब जनकजीने देखा कि बड़ी भीड़ हो गयी है, तब उन्होंने सब विश्वासपात्र सेवकोंको बुलवा लिया और कहा—तुमलोग तुरंत सब लोगोंके पास जाओ और सब किसीको यथायोग्य आसन दो॥ ४॥

दो०— कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥ २४०॥

उन सेवकोंने कोमल और नम्र वचन कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणीके) स्त्री-पुरुषोंको अपने-अपने योग्य स्थानपर बैठाया॥ २४०॥

राजकुअँर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए॥
गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा॥

उसी समय राजकुमार (राम और लक्ष्मण) वहाँ आये। [वे ऐसे सुन्दर हैं] मानो साक्षात् मनोहरता ही उनके शरीरोंपर छा रही हो। सुन्दर साँवला और गोरा उनका शरीर है। वे गुणोंके समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं॥ १॥

राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

वे राजाओंके समाजमें ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो तारागणोंके बीच दो पूर्ण चन्द्रमा हों। जिनकी जैसी भावना थी, प्रभुकी मूर्ति उन्होंने वैसी ही देखी॥ २॥

देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥

महान् रणधीर (राजालोग) श्रीरामचन्द्रजीके रूपको ऐसा देख रहे हैं, मानो स्वयं वीर-रस शरीर धारण किये हुए हो। कुटिल राजा प्रभुको देखकर डर गये, मानो बड़ी भयानक मूर्ति हो॥ ३॥

रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नर भूषन लोचन सुखदाई॥

छलसे जो राक्षस वहाँ राजाओंके वेषमें [बैठे] थे, उन्होंने प्रभुको प्रत्यक्ष कालके समान देखा। नगरनिवासियोंने दोनों भाइयोंको मनुष्योंके भूषणरूप और नेत्रोंको सुख देनेवाला देखा॥ ४॥

दो०— नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥ २४१॥

स्त्रियाँ हृदयमें हर्षित होकर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उन्हें देख रही हैं। मानो शृंगार-रस ही परम अनुपम मूर्ति धारण किये सुशोभित हो रहा हो॥ २४१॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥

विद्वानोंको प्रभु विराट्‌रूपमें दिखायी दिये, जिसके बहुत-से मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं। जनकजीके सजातीय (कुटुम्बी) प्रभुको किस तरह (कैसे प्रिय रूपमें) देख रहे हैं, जैसे सगे सजन (सम्बन्धी) प्रिय लगते हैं॥ १॥

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥

जनकसमेत रानियाँ उन्हें अपने बच्चेके समान देख रही हैं, उनकी प्रीतिका वर्णन नहीं किया जा सकता। योगियोंको वे शान्त, शुद्ध, सम और स्वतःप्रकाश परम तत्त्वके रूपमें दीखे॥ २॥

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥

हरिभक्तोंने दोनों भाइयोंको सब सुखोंके देनेवाले इष्टदेवके समान देखा। सीताजी जिस भावसे श्रीरामचन्द्रजीको देख रही हैं, वह स्नेह और सुख तो कहनेमें ही नहीं आता॥ ३॥

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥

उस (स्नेह और सुख) का वे हृदयमें अनुभव कर रही हैं, पर वे भी उसे कह नहीं सकतीं। फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है। इस प्रकार जिसका जैसा भाव था, उसने कोसलाधीश श्रीरामचन्द्रजीको वैसा ही देखा॥ ४॥

दो०— राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥ २४२॥

सुन्दर साँवले और गोरे शरीरवाले तथा विश्वभरके नेत्रोंको चुरानेवाले कोसलाधीशके

कुमार राजसमाजमें [इस प्रकार] सुशोभित हो रहे हैं॥ २४२॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥

दोनों मूर्तियाँ स्वभावसे ही (बिना किसी बनाव-शृंगारके) मनको हरनेवाली हैं। करोड़ों कामदेवोंकी उपमा भी उनके लिये तुच्छ है। उनके सुन्दर मुख शरद् [पूर्णिमा] के चन्द्रमाकी भी निन्दा करनेवाले (उसे नीचा दिखानेवाले) हैं और कमलके समान नेत्र मनको बहुत ही भाते हैं॥ १॥

चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥

सुन्दर चितवन [सारे संसारके मनको हरनेवाले] कामदेवके भी मनको हरनेवाली है। वह हृदयको बहुत ही प्यारी लगती है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर गाल हैं, कानोंमें चञ्चल (झूमते हुए) कुण्डल हैं। ठोड़ी और अधर (ओठ) सुन्दर हैं, कोमल वाणी है॥ २॥

कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥

हँसी चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करनेवाली है। भौंहें टेढ़ी और नासिका मनोहर है। [ऊँचे] चौड़े ललाटपर तिलक झलक रहे हैं (दीप्तिमान् हो रहे हैं)। [काले घुँघराले] बालोंको देखकर भौंरोंकी पंक्तियाँ भी लजा जाती हैं॥ ३॥

पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥

पीली चौकोनी टोपियाँ सिरोंपर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियाँ बनायी (काढ़ी) हुई हैं। शङ्खके समान सुन्दर (गोल) गलेमें मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो मानो तीनों लोकोंकी सुन्दरताकी सीमा [को बता रही] हैं॥ ४॥

दो०— कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥ २४३॥

हृदयोंपर गजमुक्ताओंके सुन्दर कण्ठे और तुलसीकी मालाएँ सुशोभित हैं। उनके कंधे बैलोंके कंधेकी तरह [ऊँचे तथा पुष्ट] हैं, ऐंड़ (खड़े होनेकी शान) सिंहकी-सी है और भुजाएँ विशाल एवं बलकी भण्डार हैं॥ २४३॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें॥
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥

कमरमें तरकस और पीताम्बर बाँधे हैं। [दाहिने] हाथोंमें बाण और बायें सुन्दर कंधोंपर धनुष तथा पीले यज्ञोपवीत (जनेऊ) सुशोभित हैं। नखसे लेकर शिखातक

सब अंग सुन्दर हैं, उनपर महान् शोभा छायी हुई है॥ १॥

देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥

उन्हें देखकर सब लोग सुखी हुए। नेत्र एकटक (निमेषशून्य) हैं और तारे (पुतलियाँ) भी नहीं चलते। जनकजी दोनों भाइयोंको देखकर हर्षित हुए। तब उन्होंने जाकर मुनिके चरणकमल पकड़ लिये॥ २॥

करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई॥
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ॥

विनती करके अपनी कथा सुनायी और मुनिको सारी रंगभूमि (यज्ञशाला) दिखलायी। [मुनिके साथ] दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब कोई आश्चर्यचकित हो देखने लगते हैं॥ ३॥

निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजाँ मुदित महासुख लहेऊ॥

सबने रामजीको अपनी-अपनी ओर ही मुख किये हुए देखा; परन्तु इसका कुछ भी विशेष रहस्य कोई नहीं जान सका। मुनिने राजासे कहा—रंगभूमिकी रचना बड़ी सुन्दर है। [विश्वामित्र-जैसे निःस्पृह, विरक्त और ज्ञानी मुनिसे रचनाकी प्रशंसा सुनकर] राजा प्रसन्न हुए और उन्हें बड़ा सुख मिला॥ ४॥

दो०— सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥ २४४॥

सब मञ्चोंसे एक मञ्च अधिक सुन्दर, उज्ज्वल और विशाल था। [स्वयं] राजाने मुनिसहित दोनों भाइयोंको उसपर बैठाया॥ २४४॥

प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे। जनु राकेस उदय भएँ तारे॥
असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥

प्रभुको देखकर सब राजा हृदयमें ऐसे हार गये (निराश एवं उत्साहहीन हो गये) जैसे पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेपर तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं। [उनके तेजको देखकर] सबके मनमें ऐसा विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी ही धनुषको तोड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं॥ १॥

बिनु भंजेहुँ भव धनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई॥

[इधर उनके रूपको देखकर सबके मनमें यह निश्चय हो गया कि] शिवजीके विशाल धनुषको [जो सम्भव है न टूट सके] बिना तोड़े भी सीताजी श्रीरामचन्द्रजीके ही गलेमें जयमाल डालेंगी (अर्थात् दोनों तरहसे ही हमारी हार होगी और विजय

श्रीरामचन्द्रजीके हाथ रहेगी)। [यों सोचकर वे कहने लगे—] हे भाई! ऐसा विचारकर यश, प्रताप, बल और तेज गँवाकर अपने-अपने घर चलो॥ २॥

बिहसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥
तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा॥

दूसरे राजा, जो अविवेकसे अंधे हो रहे थे और अभिमानी थे, यह बात सुनकर बहुत हँसे। [उन्होंने कहा—] धनुष तोड़नेपर भी विवाह होना कठिन है (अर्थात् सहजहीमें हम जानकीको हाथसे जाने नहीं देंगे), फिर बिना तोड़े तो राजकुमारीको ब्याह ही कौन सकता है॥ ३॥

एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥

काल ही क्यों न हो, एक बार तो सीताके लिये उसे भी हम युद्धमें जीत लेंगे। यह घमण्डकी बात सुनकर दूसरे राजा, जो धर्मात्मा, हरिभक्त और सयाने थे, मुसकराये॥ ४॥

सो०— सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे॥ २४५॥

[उन्होंने कहा—] राजाओंके गर्व दूर करके (जो धनुष किसीसे नहीं टूट सकेगा उसे तोड़कर) श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको ब्याहेंगे। [रही युद्धकी बात, सो] महाराज दशरथके रणमें बाँके पुत्रोंको युद्धमें तो जीत ही कौन सकता है॥ २४५॥

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई॥
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥

गाल बजाकर व्यर्थ ही मत मरो। मनके लड्डुओंसे भी कहीं भूख बुझती है? हमारी परम पवित्र (निष्कपट) सीखको सुनकर सीताजीको अपने जीमें साक्षात् जगज्जननी समझो (उन्हें पत्नीरूपमें पानेकी आशा एवं लालसा छोड़ दो), ॥ १॥

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥
सुंदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी॥

और श्रीरघुनाथजीको जगत्‌का पिता (परमेश्वर) विचारकर, नेत्र भरकर उनकी छबि देख लो [ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा]। सुन्दर, सुख देनेवाले और समस्त गुणोंकी राशि ये दोनों भाई शिवजीके हृदयमें बसनेवाले हैं (स्वयं शिवजी भी जिन्हें सदा हृदयमें छिपाये रखते हैं, वे तुम्हारे नेत्रोंके सामने आ गये हैं)॥ २॥

सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजलु निरखि मरहु कत धाई॥
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा॥

समीप आये हुए (भगवद्दर्शनरूप) अमृतके समुद्रको छोड़कर तुम [जगज्जननी

जानकीको पत्नीरूपमें पानेकी दुराशारूप मिथ्या] मृगजलको देखकर दौड़कर क्यों मरते हो? फिर [भाई!] जिसको जो अच्छा लगे वही जाकर करो। हमने तो [श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करके] आज जन्म लेनेका फल पा लिया (जीवन और जन्मको सफल कर लिया)॥ ३॥

अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहि सुमन करहिं कल गाना॥

ऐसा कहकर अच्छे राजा प्रेममग्न होकर श्रीरामजीका अनुपम रूप देखने लगे। [मनुष्योंकी तो बात ही क्या] देवता लोग भी आकाशसे विमानोंपर चढ़े हुए दर्शन कर रहे हैं और सुन्दर गान करते हुए फूल बरसा रहे हैं॥ ४॥

दो०— जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ॥ २४६॥

तब सुअवसर जानकर जनकजीने सीताजीको बुला भेजा। सब चतुर और सुन्दर सखियाँ आदरपूर्वक उन्हें लिवा चलीं॥ २४६॥

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥

रूप और गुणोंकी खान जगज्जननी जानकीजीकी शोभाका वर्णन नहीं हो सकता। उनके लिये मुझे [काव्यकी] सब उपमाएँ तुच्छ लगती हैं; क्योंकि वे लौकिक स्त्रियोंके अंगोंसे अनुराग रखनेवाली हैं (अर्थात् वे जगत्‌की स्त्रियोंके अंगोंको दी जाती हैं)। [काव्यकी उपमाएँ सब त्रिगुणात्मक, मायिक जगत्‌से ली गयी हैं, उन्हें भगवान्‌की स्वरूपाशक्ति श्रीजानकीजीके अप्राकृत, चिन्मय अंगोंके लिये प्रयुक्त करना उनका अपमान करना और अपनेको उपहासास्पद बनाना है]॥ १॥

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥

सीताजीके वर्णनमें उन्हीं उपमाओंको देकर कौन कुकवि कहलाये और अपयशका भागी बने (अर्थात् सीताजीके लिये उन उपमाओंका प्रयोग करना सुकविके पदसे च्युत होना और अपकीर्ति मोल लेना है, कोई भी सुकवि ऐसी नादानी एवं अनुचित कार्य नहीं करेगा)। यदि किसी स्त्रीके साथ सीताजीकी तुलना की जाय तो जगत्‌में ऐसी सुन्दर युवती है ही कहाँ [जिसकी उपमा उन्हें दी जाय]॥ २॥

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥

[पृथ्वीकी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या, देवताओंकी स्त्रियोंको भी यदि देखा जाय जो हमारी अपेक्षा कहीं अधिक दिव्य और सुन्दर हैं, तो उनमें] सरस्वती तो बहुत

बोलनेवाली हैं; पार्वती अर्द्धांगिनी हैं (अर्थात् अर्द्धनारीनटेश्वरके रूपमें उनका आधा ही अंग स्त्रीका है, शेष आधा अंग पुरुष—शिवजीका है), कामदेवकी स्त्री रति पतिको बिना शरीरका (अनंग) जानकर बहुत दु:खी रहती है और जिनके विष और मद्य-जैसे [समुद्रसे उत्पन्न होनेके नाते] प्रिय भाई हैं, उन लक्ष्मीके समान तो जानकीजीको कहा ही कैसे जाय॥ ३॥

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥

[जिन लक्ष्मीजीकी बात ऊपर कही गयी है वे निकली थीं खारे समुद्रसे, जिसको मथनेके लिये भगवान्‌ने अति कर्कश पीठवाले कच्छपका रूप धारण किया, रस्सी बनायी गयी महान् विषधर वासुकि नागकी, मथानीका कार्य किया अतिशय कठोर मन्दराचल पर्वतने और उसे मथा सारे देवताओं और दैत्योंने मिलकर। जिन लक्ष्मीको अतिशय शोभाकी खान और अनुपम सुन्दरी कहते हैं, उनको प्रकट करनेमें हेतु बने ये सब असुन्दर एवं स्वाभाविक ही कठोर उपकरण। ऐसे उपकरणोंसे प्रकट हुई लक्ष्मी श्रीजानकीजीकी समताको कैसे पा सकती हैं। हाँ, इसके विपरीत] यदि छबिरूपी अमृतका समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभारूप रस्सी हो, शृंगार [रस] पर्वत हो और [उस छबिके समुद्रको] स्वयं कामदेव अपने ही करकमलसे मथे, ॥ ४॥

दो०— एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥ २४७॥

इस प्रकार (का संयोग होनेसे) जब सुन्दरता और सुखकी मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो भी कवि लोग उसे (बहुत) संकोचके साथ सीताजीके समान कहेंगे॥ २४७॥

[जिस सुन्दरताके समुद्रको कामदेव मथेगा वह सुन्दरता भी प्राकृत, लौकिक सुन्दरता ही होगी; क्योंकि कामदेव स्वयं भी त्रिगुणमयी प्रकृतिका ही विकार है। अत: उस सुन्दरताको मथकर प्रकट की हुई लक्ष्मी भी उपर्युक्त लक्ष्मीकी अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर और दिव्य होनेपर भी होगी प्राकृत ही, अत: उसके साथ भी जानकीजीकी तुलना करना कविके लिये बड़े संकोचकी बात होगी। जिस सुन्दरतासे जानकीजीका दिव्यातिदिव्य परम दिव्य विग्रह बना है वह सुन्दरता उपर्युक्त सुन्दरतासे भिन्न अप्राकृत है—वस्तुत: लक्ष्मीजीका अप्राकृत रूप भी यही है। वह कामदेवके मथनेमें नहीं आ सकती और वह जानकीजीका स्वरूप ही है, अत: उनसे भिन्न नहीं, और उपमा दी जाती है भिन्न वस्तुके साथ। इसके अतिरिक्त जानकीजी प्रकट हुई हैं स्वयं अपनी महिमासे, उन्हें प्रकट करनेके लिये किसी भिन्न उपकरणकी अपेक्षा नहीं है। अर्थात् शक्ति शक्तिमान्‌से अभिन्न, अद्वैत-तत्त्व है,अतएव अनुपमेय है, यही गूढ़ दार्शनिक तत्त्व भक्तशिरोमणि कविने इस अभूतोपमालङ्कारके द्वारा बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त किया है।]

चलीं संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी॥

सयानी सखियाँ सीताजीको साथ लेकर मनोहर वाणीसे गीत गाती हुई चलीं। सीताजीके नवल शरीरपर सुन्दर साड़ी सुशोभित है। जगज्जननीकी महान् छबि अतुलनीय है॥ १॥

भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥

सब आभूषण अपनी-अपनी जगहपर शोभित हैं, जिन्हें सखियोंने अंग-अंगमें भलीभाँति सजाकर पहनाया है। जब सीताजीने रंगभूमिमें पैर रखा, तब उनका [दिव्य] रूप देखकर स्त्री-पुरुष—सभी मोहित हो गये॥ २॥

हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि प्रसून अपछरा गाईं॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥

देवताओंने हर्षित होकर नगाड़े बजाये और पुष्प बरसाकर अप्सराएँ गाने लगीं। सीताजीके करकमलोंमें जयमाला सुशोभित है। सब राजा चकित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे॥ ३॥

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

सीताजी चकित चित्तसे श्रीरामजीको देखने लगीं, तब सब राजालोग मोहके वश हो गये। सीताजीने मुनिके पास [बैठे हुए] दोनों भाइयोंको देखा तो उनके नेत्र अपना खजाना पाकर ललचाकर वहीं (श्रीरामजीमें) जा लगे (स्थिर हो गये)॥ ४॥

दो०— गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥ २४८॥

परन्तु गुरुजनोंकी लाजसे तथा बहुत बड़े समाजको देखकर सीताजी सकुचा गयीं। वे श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें लाकर सखियोंकी ओर देखने लगीं॥ २४८॥

राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं॥

श्रीरामचन्द्रजीका रूप और सीताजीकी छबि देखकर स्त्री-पुरुषोंने पलक मारना छोड़ दिया (सब एकटक उन्हींको देखने लगे)। सभी अपने मनमें सोचते हैं, पर कहते सकुचाते हैं। मन-ही-मन वे विधातासे विनय करते हैं—॥ १॥

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू॥

हे विधाता! जनककी मूढ़ताको शीघ्र हर लीजिये और हमारी ही ऐसी सुन्दर

बुद्धि उन्हें दीजिये कि जिससे बिना ही विचार किये राजा अपना प्रण छोड़कर सीताजीका विवाह रामजीसे कर दें॥ २॥

जगु भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हें अंतहुँ उर दाहू॥
एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥

संसार उन्हें भला कहेगा, क्योंकि यह बात सब किसीको अच्छी लगती है। हठ करनेसे अन्तमें भी हृदय जलेगा। सब लोग इसी लालसामें मग्न हो रहे हैं कि जानकीजीके योग्य वर तो यह साँवला ही है॥ ३॥

तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हियँ हरषु न थोरा॥

तब राजा जनकने बंदीजनों (भाटों) को बुलाया। वे विरुदावली (वंशकी कीर्ति) गाते हुए चले आये। राजाने कहा—जाकर मेरा प्रण सबसे कहो। भाट चले, उनके हृदयमें कम आनन्द न था॥ ४॥

दो०— बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥ २४९॥

भाटोंने श्रेष्ठ वचन कहा—हे पृथ्वीकी पालना करनेवाले सब राजागण! सुनिये। हम अपनी भुजा उठाकर जनकजीका विशाल प्रण कहते हैं॥ २४९॥

नृप भुजबलु बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥

राजाओंकी भुजाओंका बल चन्द्रमा है, शिवजीका धनुष राहु है, वह भारी है, कठोर है, यह सबको विदित है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुषको देखकर गौंसे (चुपके-से) चलते बने (उसे उठाना तो दूर रहा, छूनेतककी हिम्मत न हुई)॥ १॥

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥

उसी शिवजीके कठोर धनुषको आज इस राजसमाजमें जो भी तोड़ेगा, तीनों लोकोंकी विजयके साथ ही उसको जानकीजी बिना किसी विचारके हठपूर्वक वरण करेंगी॥ २॥

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई॥

प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जो वीरताके अभिमानी थे, वे मनमें बहुत ही तमतमाये। कमर कसकर अकुलाकर उठे और अपने इष्टदेवोंको सिर नवाकर चले॥ ३॥

तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

वे तमककर (बड़े तावसे) शिवजीके धनुषकी ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं, करोड़ों भाँतिसे जोर लगाते हैं, पर वह उठता ही नहीं। जिन राजाओंके मनमें कुछ विवेक है, वे धनुषके पास ही नहीं जाते॥ ४॥

दो०— तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ॥ २५०॥

वे मूर्ख राजा तमककर (किटकिटाकर) धनुषको पकड़ते हैं, परन्तु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं, मानो वीरोंकी भुजाओंका बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक भारी होता जाता है॥ २५०॥

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
डगइ न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें॥

तब दस हजार राजा एक ही बार धनुषको उठाने लगे, तो भी वह उनके टाले नहीं टलता। शिवजीका वह धनुष कैसे नहीं डिगता था, जैसे कामी पुरुषके वचनोंसे सतीका मन (कभी) चलायमान नहीं होता॥ १॥

सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग संन्यासी॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥

सब राजा उपहासके योग्य हो गये। जैसे वैराग्यके बिना संन्यासी उपहासके योग्य हो जाता है। कीर्ति, विजय, बड़ी वीरता—इन सबको वे धनुषके हाथों बरबस हारकर चले गये॥ २॥

श्रीहत भए हारि हियँ राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥

राजालोग हृदयसे हारकर श्रीहीन (हतप्रभ) हो गये और अपने-अपने समाजमें जा बैठे। राजाओंको (असफल) देखकर जनक अकुला उठे और ऐसे वचन बोले जो मानो क्रोधमें सने हुए थे॥ ३॥

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥

मैंने जो प्रण ठाना था, उसे सुनकर द्वीप-द्वीपके अनेकों राजा आये। देवता और दैत्य भी मनुष्यका शरीर धारण करके आये तथा और भी बहुत-से रणधीर वीर आये॥ ४॥

दो०— कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥ २५१॥

परन्तु धनुषको तोड़कर मनोहर कन्या, बड़ी विजय और अत्यन्त सुन्दर कीर्तिको पानेवाला मानो ब्रह्माने किसीको रचा ही नहीं॥ २५१॥

कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

कहिये, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता। परन्तु किसीने भी शङ्करजीका धनुष नहीं चढ़ाया। अरे भाई! चढ़ाना और तोड़ना तो दूर रहा, कोई तिलभर भूमि भी छुड़ा न सका॥ १॥

अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥

अब कोई वीरताका अभिमानी नाराज न हो। मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरोंसे खाली हो गयी। अब आशा छोड़कर अपने-अपने घर जाओ; ब्रह्माने सीताका विवाह लिखा ही नहीं॥ २॥

सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥

यदि प्रण छोड़ता हूँ तो पुण्य जाता है; इसलिये क्या करूँ, कन्या कुँआरी ही रहे। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरोंसे शून्य है, तो प्रण करके उपहासका पात्र न बनता॥ ३॥

जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥
माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥

जनकके वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष जानकीजीकी ओर देखकर दुःखी हुए, परन्तु लक्ष्मणजी तमतमा उठे, उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, ओठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोधसे लाल हो गये॥ ४॥

दो०— कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान॥ २५२॥

श्रीरघुवीरजीके डरसे कुछ कह तो सकते नहीं, पर जनकके वचन उन्हें बाण-से लगे। [जब न रह सके तब] श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें सिर नवाकर वे यथार्थ वचन बोले— ॥ २५२॥

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी॥

रघुवंशियोंमें कोई भी जहाँ होता है, उस समाजमें ऐसे वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन रघुकुलशिरोमणि श्रीरामजीको उपस्थित जानते हुए भी जनकजीने कहे हैं॥ १॥

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥

हे सूर्यकुलरूपी कमलके सूर्य! सुनिये, मैं स्वभावहीसे कहता हूँ, कुछ अभिमान करके नहीं, यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं ब्रह्माण्डको गेंदकी तरह उठा लूँ॥ २॥

काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥

और उसे कच्चे घड़ेकी तरह फोड़ डालूँ। मैं सुमेरु पर्वतको मूलीकी तरह तोड़ सकता हूँ, हे भगवन्! आपके प्रतापकी महिमासे यह बेचारा पुराना धनुष तो कौन चीज है॥ ३॥

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

ऐसा जानकर हे नाथ! आज्ञा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिये। धनुषको कमलकी डंडीकी तरह चढ़ाकर उसे सौ योजनतक दौड़ा लिये चला जाऊँ॥ ४॥

दो०— तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥ २५३॥

हे नाथ! आपके प्रतापके बलसे धनुषको कुकुरमुत्ते (बरसाती छत्ते) की तरह तोड़ दूँ। यदि ऐसा न करूँ तो प्रभुके चरणोंकी शपथ है, फिर मैं धनुष और तरकसको कभी हाथमें भी न लूँगा॥ २५३॥

लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥

ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोधभरे वचन बोले कि पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओंके हाथी काँप गये। सभी लोग और सब राजा डर गये। सीताजीके हृदयमें हर्ष हुआ और जनकजी सकुचा गये॥ १॥

गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

गुरु विश्वामित्रजी, श्रीरघुनाथजी और सब मुनि मनमें प्रसन्न हुए और बार-बार पुलकित होने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने इशारेसे लक्ष्मणको मना किया और प्रेमसहित अपने पास बैठा लिया॥ २॥

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी बोले—हे राम! उठो, शिवजीका धनुष तोड़ो और हे तात! जनकका सन्ताप मिटाओ॥ ३॥

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥

गुरुके वचन सुनकर श्रीरामजीने चरणोंमें सिर नवाया। उनके मनमें न हर्ष हुआ, न विषाद; और वे अपनी ऐंड़ (खड़े होनेकी शान) से जवान सिंहको भी लजाते हुए सहज स्वभावसे ही उठ खड़े हुए॥ ४॥

दो०— उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥ २५४॥

मञ्चरूपी उदयाचलपर रघुनाथजीरूपी बालसूर्यके उदय होते ही सब संतरूपी कमल खिल उठे और नेत्ररूपी भौंरे हर्षित हो गये॥ २५४॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥

राजाओंकी आशारूपी रात्रि नष्ट हो गयी। उनके वचनरूपी तारोंके समूहका चमकना बंद हो गया (वे मौन हो गये)। अभिमानी राजारूपी कुमुद संकुचित हो गये और कपटी राजारूपी उल्लू छिप गये॥ १॥

भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मागा॥

मुनि और देवतारूपी चकवे शोकरहित हो गये। वे फूल बरसाकर अपनी सेवा प्रकट कर रहे हैं। प्रेमसहित गुरुके चरणोंकी वन्दना करके श्रीरामचन्द्रजीने मुनियोंसे आज्ञा माँगी॥ २॥

सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥

समस्त जगत्के स्वामी श्रीरामजी सुन्दर मतवाले श्रेष्ठ हाथीकी-सी चालसे स्वाभाविक ही चले। श्रीरामचन्द्रजीके चलते ही नगरभरके सब स्त्री-पुरुष सुखी हो गये और उनके शरीर रोमाञ्चसे भर गये॥ ३॥

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं॥

उन्होंने पितर और देवताओंकी वन्दना करके अपने पुण्योंका स्मरण किया। यदि हमारे पुण्योंका कुछ भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाईं! रामचन्द्रजी शिवजीके धनुषको कमलकी डंडीकी भाँति तोड़ डालें॥ ४॥

दो०— रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥ २५५॥

श्रीरामचन्द्रजीको [वात्सल्य] प्रेमके साथ देखकर और सखियोंको समीप बुलाकर सीताजीकी माता स्नेहवश बिलखकर (विलाप करती हुई-सी) ये वचन बोलीं—॥ २५५॥

सखि सब कौतुकु देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥

हे सखी! ये जो हमारे हितू कहलाते हैं, वे भी सब तमाशा देखनेवाले हैं। कोई भी [इनके] गुरु विश्वामित्रजीको समझाकर नहीं कहता कि ये (रामजी) बालक

हैं, इनके लिये ऐसा हठ अच्छा नहीं। [जो धनुष रावण और बाण-जैसे जगद्विजयी वीरोंके हिलाये न हिल सका, उसे तोड़नेके लिये मुनि विश्वामित्रजीका रामजीको आज्ञा देना और रामजीका उसे तोड़नेके लिये चल देना रानीको हठ जान पड़ा, इसलिये वे कहने लगीं कि गुरु विश्वामित्रजीको कोई समझाता भी नहीं।] ॥ १ ॥

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥

रावण और बाणासुरने जिस धनुषको छुआतक नहीं और सब राजा घमंड करके हार गये, वही धनुष इस सुकुमार राजकुमारके हाथमें दे रहे हैं। हंसके बच्चे भी कहीं मन्दराचल पहाड़ उठा सकते हैं? ॥ २ ॥

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥

[और तो कोई समझाकर कहे या नहीं, राजा तो बड़े समझदार और ज्ञानी हैं, उन्हें तो गुरुको समझानेकी चेष्टा करनी चाहिये थी, परन्तु मालूम होता है] राजाका भी सारा सयानापन समाप्त हो गया। हे सखी! विधाताकी गति कुछ जाननेमें नहीं आती [यों कहकर रानी चुप हो रहीं]। तब एक चतुर (रामजीके महत्त्वको जाननेवाली) सखी कोमल वाणीसे बोली—हे रानी! तेजवान्‌को [देखनेमें छोटा होनेपर भी] छोटा नहीं गिनना चाहिये ॥ ३ ॥

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥
रबि मंडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥

कहाँ घड़ेसे उत्पन्न होनेवाले [छोटे-से] मुनि अगस्त्य और कहाँ अपार समुद्र? किन्तु उन्होंने उसे सोख लिया, जिसका सुयश सारे संसारमें छाया हुआ है। सूर्यमण्डल देखनेमें छोटा लगता है, पर उसके उदय होते ही तीनों लोकोंका अन्धकार भाग जाता है ॥ ४ ॥

दो०— मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥ २५६॥

जिसके वशमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता हैं, वह मन्त्र अत्यन्त छोटा होता है। महान् मतवाले गजराजको छोटा-सा अंकुश वशमें कर लेता है ॥ २५६ ॥

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
देबि तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी॥

कामदेवने फूलोंका ही धनुष-बाण लेकर समस्त लोकोंको अपने वशमें कर रखा है। हे देवी! ऐसा जानकर सन्देह त्याग दीजिये। हे रानी! सुनिये, रामचन्द्रजी धनुषको अवश्य ही तोड़ेंगे ॥ १ ॥

सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥

सखीके वचन सुनकर रानीको [श्रीरामजीके सामर्थ्यके सम्बन्धमें] विश्वास हो गया। उनकी उदासी मिट गयी और श्रीरामजीके प्रति उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सीताजी भयभीत हृदयसे जिस-तिस [देवता] से विनती कर रही हैं॥ २॥

मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥

वे व्याकुल होकर मन-ही-मन मना रही हैं—हे महेश-भवानी! मुझपर प्रसन्न होइये, मैंने आपकी जो सेवा की है, उसे सुफल कीजिये और मुझपर स्नेह करके धनुषके भारीपनको हर लीजिये॥ ३॥

गननायक बर दायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

हे गणोंके नायक, वर देनेवाले देवता गणेशजी! मैंने आजहीके लिये तुम्हारी सेवा की थी। बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुषका भारीपन बहुत ही कम कर दीजिये॥ ४॥

दो०— देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥ २५७॥

श्रीरघुनाथजीकी ओर देख-देखकर सीताजी धीरज धरकर देवताओंको मना रही हैं। उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भरे हैं और शरीरमें रोमाञ्च हो रहा है॥ २५७॥

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥

अच्छी तरह नेत्र भरकर श्रीरामजीकी शोभा देखकर, फिर पिताके प्रणका स्मरण करके सीताजीका मन क्षुब्ध हो उठा। [वे मन-ही-मन कहने लगीं—] अहो! पिताजीने बड़ा ही कठिन हठ ठाना है, वे लाभ-हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं॥ १॥

सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥

मन्त्री डर रहे हैं; इसलिये कोई उन्हें सीख भी नहीं देता, पण्डितोंकी सभामें यह बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ तो वज्रसे भी बढ़कर कठोर धनुष और कहाँ ये कोमलशरीर किशोर श्यामसुन्दर!॥ २॥

बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी॥

हे विधाता! मैं हृदयमें किस तरह धीरज धरूँ, सिरसके फूलके कणसे कहीं

हीरा छेदा जाता है। सारी सभाकी बुद्धि भोली (बावली) हो गयी है, अतः हे शिवजीके धनुष! अब तो मुझे तुम्हारा ही आसरा है ॥ ३ ॥

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥

तुम अपनी जड़ता लोगोंपर डालकर, श्रीरघुनाथजी [के सुकुमार शरीर] को देखकर [उतने ही] हलके हो जाओ। इस प्रकार सीताजीके मनमें बड़ा ही सन्ताप हो रहा है। निमेषका एक लव (अंश) भी सौ युगोंके समान बीत रहा है ॥ ४ ॥

दो०— प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ॥ २५८ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखकर फिर पृथ्वीकी ओर देखती हुई सीताजीके चञ्चल नेत्र इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो चन्द्रमण्डलरूपी डोलमें कामदेवकी दो मछलियाँ खेल रही हों ॥ २५८ ॥

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥

सीताजीकी वाणीरूपी भ्रमरीको उनके मुखरूपी कमलने रोक रखा है। लाजरूपी रात्रिको देखकर वह प्रकट नहीं हो रही है। नेत्रोंका जल नेत्रोंके कोने (कोये) में ही रह जाता है। जैसे बड़े भारी कंजूसका सोना कोनेमें ही गड़ा रह जाता है ॥ १ ॥

सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥

अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता जानकर सीताजी सकुचा गयीं और धीरज धरकर हृदयमें विश्वास ले आयीं कि यदि तन, मन और वचनसे मेरा प्रण सच्चा है और श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें मेरा चित्त वास्तवमें अनुरक्त है, ॥ २ ॥

तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

तो सबके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् मुझे रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीकी दासी अवश्य बनायेंगे। जिसका जिसपर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

प्रभुकी ओर देखकर सीताजीने शरीरके द्वारा प्रेम ठान लिया (अर्थात् यह निश्चय कर लिया कि यह शरीर इन्हींका होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं)। कृपानिधान श्रीरामजी सब जान गये। उन्होंने सीताजीको देखकर धनुषकी ओर कैसे ताका, जैसे

गरुड़जी छोटे-से साँपकी ओर देखते हैं॥ ४॥

दो०— लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु॥ २५९॥

इधर जब लक्ष्मणजीने देखा कि रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजीने शिवजीके धनुषकी ओर ताका है, तो वे शरीरसे पुलकित हो ब्रह्माण्डको चरणोंसे दबाकर निम्नलिखित वचन बोले—॥ २५९॥

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥

हे दिग्गजो! हे कच्छप! हे शेष! हे वाराह! धीरज धरकर पृथ्वीको थामे रहो, जिसमें यह हिलने न पावे। श्रीरामचन्द्रजी शिवजीके धनुषको तोड़ना चाहते हैं। मेरी आज्ञा सुनकर सब सावधान हो जाओ॥ १॥

चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥

श्रीरामचन्द्रजी जब धनुषके समीप आये, तब सब स्त्री-पुरुषोंने देवताओं और पुण्योंको मनाया। सबका सन्देह और अज्ञान, नीच राजाओंका अभिमान,॥ २॥

भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥

परशुरामजीके गर्वकी गुरुता, देवता और श्रेष्ठ मुनियोंकी कातरता (भय), सीताजीका सोच, जनकका पश्चात्ताप और रानियोंके दारुण दुःखका दावानल,॥ ३॥

संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू॥

ये सब शिवजीके धनुषरूपी बड़े जहाजको पाकर, समाज बनाकर उसपर जा चढ़े। ये श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलरूपी अपार समुद्रके पार जाना चाहते हैं, परन्तु कोई केवट नहीं है॥ ४॥

दो०— राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि॥ २६०॥

श्रीरामजीने सब लोगोंकी ओर देखा और उन्हें चित्रमें लिखे हुए-से देखकर फिर कृपाधाम श्रीरामजीने सीताजीकी ओर देखा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना॥ २६०॥

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥

उन्होंने जानकीजीको बहुत ही विकल देखा। उनका एक-एक क्षण कल्पके समान

बीत रहा था। यदि प्यासा आदमी पानीके बिना शरीर छोड़ दे, तो उसके मर जानेपर अमृतका तालाब भी क्या करेगा?॥ १॥

का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥

सारी खेतीके सूख जानेपर वर्षा किस कामकी? समय बीत जानेपर फिर पछतानेसे क्या लाभ? जीमें ऐसा समझकर श्रीरामजीने जानकीजीकी ओर देखा और उनका विशेष प्रेम लखकर वे पुलकित हो गये॥ २॥

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडलसम भयऊ॥

मन-ही-मन उन्होंने गुरुको प्रणाम किया और बड़ी फुर्तीसे धनुषको उठा लिया। जब उसे [हाथमें] लिया, तब वह धनुष बिजलीकी तरह चमका और फिर आकाशमें मण्डल-जैसा (मण्डलाकार) हो गया॥ ३॥

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

लेते, चढ़ाते और जोरसे खींचते हुए किसीने नहीं लखा (अर्थात् ये तीनों काम इतनी फुर्तीसे हुए कि धनुषको कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा, इसका किसीको पता नहीं लगा); सबने श्रीरामजीको [धनुष खींचे] खड़े देखा। उसी क्षण श्रीरामजीने धनुषको बीचसे तोड़ डाला। भयङ्कर कठोर ध्वनिसे [सब] लोक भर गये॥ ४॥

छं०—भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

घोर, कठोर शब्दसे [सब] लोक भर गये, सूर्यके घोड़े मार्ग छोड़कर चलने लगे। दिग्गज चिग्घाड़ने लगे, धरती डोलने लगी, शेष, वाराह और कच्छप कलमला उठे। देवता, राक्षस और मुनि कानोंपर हाथ रखकर सब व्याकुल होकर विचारने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं, जब [सबको निश्चय हो गया कि] श्रीरामजीने धनुषको तोड़ डाला, तब सब 'श्रीरामचन्द्रजीकी जय' बोलने लगे।

सो०—संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु।
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस॥ २६१॥

शिवजीका धनुष जहाज है और श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंका बल समुद्र है। [धनुष टूटनेसे] वह सारा समाज डूब गया, जो मोहवश पहले इस जहाजपर चढ़ा था [जिसका वर्णन ऊपर आया है]॥ २६१॥

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥

प्रभुने धनुषके दोनों टुकड़े पृथ्वीपर डाल दिये। यह देखकर सब लोग सुखी हुए। विश्वामित्ररूपी पवित्र समुद्रमें, जिसमें प्रेमरूपी सुन्दर अथाह जल भरा है, ॥ १ ॥

रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥

रामरूपी पूर्णचन्द्रको देखकर पुलकावलीरूपी भारी लहरें बढ़ने लगीं। आकाशमें बड़े जोरसे नगाड़े बजने लगे और देवाङ्गनाएँ गान करके नाचने लगीं॥ २ ॥

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध मुनीश्वरलोग प्रभुकी प्रशंसा कर रहे हैं और आशीर्वाद दे रहे हैं। वे रंग-बिरंगे फूल और मालाएँ बरसा रहे हैं। किन्नर लोग रसीले गीत गा रहे हैं॥ ३ ॥

रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी॥

सारे ब्रह्माण्डमें जय-जयकारकी ध्वनि छा गयी, जिसमें धनुष टूटनेकी ध्वनि जान ही नहीं पड़ती। जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर कह रहे हैं कि श्रीरामचन्द्रजीने शिवजीके भारी धनुषको तोड़ डाला॥ ४ ॥

दो०— बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥ २६२ ॥

धीर बुद्धिवाले, भाट, मागध और सूतलोग विरुदावली (कीर्ति) का बखान कर रहे हैं। सब लोग घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं॥ २६२ ॥

झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए॥

झाँझ, मृदंग, शङ्ख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े आदि बहुत प्रकारके सुन्दर बाजे बज रहे हैं। जहाँ-तहाँ युवतियाँ मङ्गलगीत गा रही हैं॥ १ ॥

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥

सखियोंसहित रानी अत्यन्त हर्षित हुई। मानो सूखते हुए धानपर पानी पड़ गया हो। जनकजीने सोच त्यागकर सुख प्राप्त किया। मानो तैरते-तैरते थके हुए पुरुषने थाह पा ली हो॥ २ ॥

श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

धनुष टूट जानेपर राजालोग ऐसे श्रीहीन (निस्तेज) हो गये, जैसे दिनमें दीपककी शोभा जाती रहती है। सीताजीका सुख किस प्रकार वर्णन किया जाय; जैसे चातकी स्वातीका जल पा गयी हो॥ ३॥

रामहि लखनु बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा॥

श्रीरामजीको लक्ष्मणजी किस प्रकार देख रहे हैं, जैसे चन्द्रमाको चकोरका बच्चा देख रहा हो। तब शतानन्दजीने आज्ञा दी और सीताजीने श्रीरामजीके पास गमन किया॥ ४॥

दो०— संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार॥ २६३॥

साथमें सुन्दर चतुर सखियाँ मङ्गलाचारके गीत गा रही हैं; सीताजी बालहंसिनीकी चालसे चलीं। उनके अङ्गोंमें अपार शोभा है॥ २६३॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥

सखियोंके बीचमें सीताजी कैसी शोभित हो रही हैं; जैसे बहुत-सी छबियोंके बीचमें महाछबि हो। करकमलमें सुन्दर जयमाला है, जिसमें विश्वविजयकी शोभा छायी हुई है॥ १॥

तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

सीताजीके शरीरमें संकोच है, पर मनमें परम उत्साह है। उनका यह गुप्त प्रेम किसीको जान नहीं पड़ रहा है। समीप जाकर, श्रीरामजीकी शोभा देखकर राजकुमारी सीताजी चित्रमें लिखी-सी रह गयीं॥ २॥

चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥

चतुर सखीने यह दशा देखकर समझाकर कहा— सुहावनी जयमाला पहनाओ। यह सुनकर सीताजीने दोनों हाथोंसे माला उठायी, पर प्रेमके विवश होनेसे पहनायी नहीं जाती॥ ३॥

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥

[उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं] मानो डंडियोंसहित दो कमल चन्द्रमाको डरते हुए जयमाला दे रहे हों। इस छबिको देखकर सखियाँ गाने लगीं। तब सीताजीने श्रीरामजीके गलेमें जयमाला पहना दी॥ ४॥

सो०— रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥ २६४॥

श्रीरघुनाथजीके हृदयपर जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे। समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गये मानो सूर्यको देखकर कुमुदोंका समूह सिकुड़ गया हो॥ २६४॥

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे॥
सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥

नगर और आकाशमें बाजे बजने लगे। दुष्टलोग उदास हो गये और सज्जनलोग सब प्रसन्न हो गये। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं॥ १॥

नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि छूटीं॥
जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं॥

देवताओंकी स्त्रियाँ नाचती-गाती हैं। बार-बार हाथोंसे पुष्पोंकी अञ्जलियाँ छूट रही हैं। जहाँ-तहाँ ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं और भाटलोग विरुदावली (कुलकीर्ति) बखान रहे हैं॥ २॥

महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकोंमें यश फैल गया कि श्रीरामचन्द्रजीने धनुष तोड़ दिया और सीताजीको वरण कर लिया। नगरके नर-नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत) को भुलाकर (सामर्थ्यसे बहुत अधिक) निछावर कर रहे हैं॥ ३॥

सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी॥
सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥

श्रीसीता-रामजीकी जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो सुन्दरता और शृंगार-रस एकत्र हो गये हों। सखियाँ कह रही हैं—सीते! स्वामीके चरण छुओ; किन्तु सीताजी अत्यन्त भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूतीं॥ ४॥

दो०— गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥ २६५॥

गौतमजीकी स्त्री अहल्याकी गतिका स्मरण करके सीताजी श्रीरामजीके चरणोंको हाथोंसे स्पर्श नहीं कर रही हैं। सीताजीकी अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मनमें हँसे॥ २६५॥

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥

उस समय सीताजीको देखकर कुछ राजा लोग ललचा उठे। वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा मनमें बहुत तमतमाये। वे अभागे उठ-उठकर, कवच पहनकर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे॥ १॥

लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ॥
तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई। जीवत हमहि कुअँरि को बरई॥

कोई कहते हैं, सीताको छीन लो और दोनों राजकुमारोंको पकड़कर बाँध लो। धनुष तोड़नेसे ही चाह नहीं सरेगी (पूरी होगी)। हमारे जीते-जी राजकुमारीको कौन ब्याह सकता है?॥ २॥

जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहि लाज लजानी॥

यदि जनक कुछ सहायता करे, तो युद्धमें दोनों भाइयोंसहित उसे भी जीत लो। ये वचन सुनकर साधु राजा बोले—इस [निर्लज्ज] राजसमाजको देखकर तो लाज भी लजा गयी॥ ३॥

बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुहँ मसि लाई॥

अरे! तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई और नाक (प्रतिष्ठा) तो धनुषके साथ ही चली गयी। वही वीरता थी कि अब कहींसे मिली है? ऐसी दुष्ट बुद्धि है, तभी तो विधाताने तुम्हारे मुखोंपर कालिख लगा दी॥ ४॥

दो०— देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु।
लखन रोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु॥ २६६॥

ईर्ष्या, घमंड और क्रोध छोड़कर नेत्र भरकर श्रीरामजी [की छबि] को देख लो। लक्ष्मणके क्रोधको प्रबल अग्नि जानकर उसमें पतंगे मत बनो॥ २६६॥

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिवद्रोही॥

जैसे गरुड़का भाग कौआ चाहे, सिंहका भाग खरगोश चाहे, बिना कारण ही क्रोध करनेवाला अपनी कुशल चाहे, शिवजीसे विरोध करनेवाला सब प्रकारकी सम्पत्ति चाहे,॥ १॥

लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥

लोभी-लालची सुन्दर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता [चाहे तो] क्या पा सकता है? और जैसे श्रीहरिके चरणोंसे विमुख मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, हे राजाओ! सीताके लिये तुम्हारा लालच भी वैसा ही व्यर्थ है॥ २॥

कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखीं लवाइ गईं जहँ रानी॥
रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥

कोलाहल सुनकर सीताजी शंकित हो गयीं। तब सखियाँ उन्हें वहाँ ले गयीं

जहाँ रानी (सीताजीकी माता) थीं। श्रीरामचन्द्रजी मनमें सीताजीके प्रेमका बखान करते हुए स्वाभाविक चालसे गुरुजीके पास चले॥ ३॥

रानिन्ह सहित सोचबस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥

रानियोंसहित सीताजी [दुष्ट राजाओंके दुर्वचन सुनकर] सोचके वश हैं कि न जाने विधाता अब क्या करनेवाले हैं। राजाओंके वचन सुनकर लक्ष्मणजी इधर-उधर ताकते हैं; किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके डरसे कुछ बोल नहीं सकते॥ ४॥

दो०— अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहि चोप॥ २६७॥

उनके नेत्र लाल और भौंहें टेढ़ी हो गयीं और वे क्रोधसे राजाओंकी ओर देखने लगे; मानो मतवाले हाथियोंका झुंड देखकर सिंहके बच्चेको जोश आ गया हो॥ २६७॥

खरभरु देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥
तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥

खलबली देखकर जनकपुरकी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं और सब मिलकर राजाओंको गालियाँ देने लगीं। उसी मौकेपर शिवजीके धनुषका टूटना सुनकर भृगुकुलरूपी कमलके सूर्य परशुरामजी आये॥ १॥

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥

इन्हें देखकर सब राजा सकुचा गये, मानो बाजके झपटनेपर बटेर लुक (छिप) गये हों। गोरे शरीरपर विभूति (भस्म) बड़ी फब रही है और विशाल ललाटपर त्रिपुण्ड्र विशेष शोभा दे रहा है॥ २॥

सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिसबस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥

सिरपर जटा है, सुन्दर मुखचन्द्र क्रोधके कारण कुछ लाल हो आया है। भौंहें टेढ़ी और आँखें क्रोधसे लाल हैं। सहज ही देखते हैं, तो भी ऐसा जान पड़ता है मानो क्रोध कर रहे हैं॥ ३॥

बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें॥

बैलके समान (ऊँचे और पुष्ट) कंधे हैं; छाती और भुजाएँ विशाल हैं। सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किये, माला पहने और मृगचर्म लिये हैं। कमरमें मुनियोंका वस्त्र (वल्कल) और दो तरकस बाँधे हैं। हाथमें धनुष-बाण और सुन्दर कंधेपर फरसा धारण किये हैं॥ ४॥

दो०— सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप॥ २६८॥

शान्त वेष है, परन्तु करनी बहुत कठोर है; स्वरूपका वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वीर-रस ही मुनिका शरीर धारण करके, जहाँ सब राजालोग हैं वहाँ आ गया हो॥ २६८॥

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥

परशुरामजीका भयानक वेष देखकर सब राजा भयसे व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पितासहित अपना नाम कह-कहकर सब दण्डवत्-प्रणाम करने लगे॥ १॥

जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥

परशुरामजी हित समझकर भी सहज ही जिसकी ओर देख लेते हैं, वह समझता है मानो मेरी आयु पूरी हो गयी। फिर जनकजीने आकर सिर नवाया और सीताजीको बुलाकर प्रणाम कराया॥ २॥

आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं। निज समाज लै गईं सयानीं॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥

परशुरामजीने सीताजीको आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं और [वहाँ अब अधिक देर ठहरना ठीक न समझकर] वे सयानी सखियाँ उनको अपनी मण्डलीमें ले गयीं। फिर विश्वामित्रजी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयोंको उनके चरणकमलोंपर गिराया॥ ३॥

रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

[विश्वामित्रजीने कहा—] ये राम और लक्ष्मण राजा दशरथके पुत्र हैं। उनकी सुन्दर जोड़ी देखकर परशुरामजीने आशीर्वाद दिया। कामदेवके भी मदको छुड़ानेवाले श्रीरामचन्द्रजीके अपार रूपको देखकर उनके नेत्र थकित (स्तम्भित) हो रहे॥ ४॥

दो०— बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर॥ २६९॥

फिर सब देखकर, जानते हुए भी अनजानकी तरह जनकजीसे पूछते हैं कि कहो, यह बड़ी भारी भीड़ कैसी है? उनके शरीरमें क्रोध छा गया॥ २६९॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥

जिस कारण सब राजा आये थे, राजा जनकने वे सब समाचार कह सुनाये।

जनकके वचन सुनकर परशुरामजीने फिरकर दूसरी ओर देखा तो धनुषके टुकड़े पृथ्वीपर पड़े हुए दिखायी दिये॥ १॥

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥

अत्यन्त क्रोधमें भरकर वे कठोर वचन बोले—रे मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा? उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़! आज मैं जहाँतक तेरा राज्य है, वहाँतककी पृथ्वी उलट दूँगा॥ २॥

अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥

राजाको अत्यन्त डर लगा, जिसके कारण वे उत्तर नहीं देते। यह देखकर कुटिल राजा मनमें बड़े प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग और नगरके स्त्री-पुरुष सभी सोच करने लगे, सबके हृदयमें बड़ा भय है॥ ३॥

मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥

सीताजीकी माता मनमें पछता रही हैं कि हाय! विधाताने अब बनी-बनायी बात बिगाड़ दी। परशुरामजीका स्वभाव सुनकर सीताजीको आधा क्षण भी कल्पके समान बीतने लगा॥ ४॥

दो०— सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु॥ २७०॥

तब श्रीरामचन्द्रजी सब लोगोंको भयभीत देखकर और सीताजीको डरी हुई जानकर बोले—उनके हृदयमें न कुछ हर्ष था, न विषाद— ॥ २७०॥

मासपारायण, नवाँ विश्राम

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥

हे नाथ! शिवजीके धनुषको तोड़नेवाला आपका कोई एक दास ही होगा। क्या आज्ञा है, मुझसे क्यों नहीं कहते? यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले— ॥ १॥

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥

सेवक वह है जो सेवाका काम करे। शत्रुका काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिये। हे राम! सुनो, जिसने शिवजीके धनुषको तोड़ा है, वह सहस्रबाहुके समान मेरा शत्रु है॥ २॥

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥

वह इस समाजको छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सभी राजा मारे जायँगे। मुनिके वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुसकराये और परशुरामजीका अपमान करते हुए बोले— ॥ ३ ॥

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥

हे गोसाईं! लड़कपनमें हमने बहुत-सी धनुहियाँ तोड़ डालीं। किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुषपर इतनी ममता किस कारणसे है? यह सुनकर भृगुवंशकी ध्वजास्वरूप परशुरामजी कुपित होकर कहने लगे— ॥ ४ ॥

दो०— रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार॥ २७१ ॥

अरे राजपुत्र! कालके वश होनेसे तुझे बोलनेमें कुछ भी होश नहीं है। सारे संसारमें विख्यात शिवजीका यह धनुष क्या धनुहीके समान है?॥ २७१ ॥

लखन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें॥

लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे देव! सुनिये, हमारे जानमें तो सभी धनुष एक-से ही हैं। पुराने धनुषके तोड़नेमें क्या हानि-लाभ! श्रीरामचन्द्रजीने तो इसे नवीनके धोखेसे देखा था॥ १ ॥

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥

फिर यह तो छूते ही टूट गया, इसमें रघुनाथजीका भी कोई दोष नहीं है। मुनि! आप बिना ही कारण किसलिये क्रोध करते हैं? परशुरामजी अपने फरसेकी ओर देखकर बोले—अरे दुष्ट! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना॥ २ ॥

बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही॥

मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ। अरे मूर्ख! क्या तू मुझे निरा मुनि ही जानता है? मैं बालब्रह्मचारी और अत्यन्त क्रोधी हूँ। क्षत्रियकुलका शत्रु तो विश्वभरमें विख्यात हूँ॥ ३ ॥

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा॥

अपनी भुजाओंके बलसे मैंने पृथ्वीको राजाओंसे रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणोंको दे डाला। हे राजकुमार! सहस्रबाहुकी भुजाओंको काटनेवाले मेरे इस फरसेको देख!॥ ४ ॥

दो०— मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर॥ २७२ ॥

अरे राजाके बालक! तू अपने माता-पिताको सोचके वश न कर। मेरा फरसा बड़ा भयानक है, यह गर्भोंके बच्चोंका भी नाश करनेवाला है॥ २७२॥

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥

लक्ष्मणजी हँसकर कोमल वाणीसे बोले—अहो, मुनीश्वर तो अपनेको बड़ा भारी योद्धा समझते हैं। बार-बार मुझे कुल्हाड़ी दिखाते हैं। फूँकसे पहाड़ उड़ाना चाहते हैं॥ १॥

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥

यहाँ कोई कुम्हड़ेकी बतिया (छोटा कच्चा फल) नहीं है, जो तर्जनी (सबसे आगेकी) उँगलीको देखते ही मर जाती हैं। कुठार और धनुष-बाण देखकर ही मैंने कुछ अभिमानसहित कहा था॥ २॥

भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥

भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर तो जो कुछ आप कहते हैं, उसे मैं क्रोधको रोककर सह लेता हूँ। देवता, ब्राह्मण, भगवान्‌के भक्त और गौ—इनपर हमारे कुलमें वीरता नहीं दिखायी जाती॥ ३॥

बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

क्योंकि इन्हें मारनेसे पाप लगता है और इनसे हार जानेपर अपकीर्ति होती है। इसलिये आप मारें तो भी आपके पैर ही पड़ना चाहिये। आपका एक-एक वचन ही करोड़ों वज्रोंके समान है। धनुष-बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण करते हैं॥ ४॥

दो०— जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गभीर॥ २७३॥

इन्हें (धनुष-बाण और कुठारको) देखकर मैंने कुछ अनुचित कहा हो, तो उसे हे धीर महामुनि! क्षमा कीजिये। यह सुनकर भृगुवंशमणि परशुरामजी क्रोधके साथ गम्भीर वाणी बोले—॥ २७३॥

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥

हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है, कालके वश होकर यह अपने कुलका घातक बन रहा है। यह सूर्यवंशरूपी पूर्णचन्द्रका कलङ्क है। यह बिलकुल उद्दण्ड, मूर्ख और निडर है॥ १॥

काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥

अभी क्षणभरमें यह कालका ग्रास हो जायगा। मैं पुकारकर कहे देता हूँ, फिर मुझे दोष नहीं है। यदि तुम इसे बचाना चाहते हो, तो हमारा प्रताप, बल और क्रोध बतलाकर इसे मना कर दो॥ २॥

लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥

लक्ष्मणजीने कहा—हे मुनि! आपका सुयश आपके रहते दूसरा कौन वर्णन कर सकता है? आपने अपने ही मुँहसे अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकारसे वर्णन की है॥ ३॥

नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥

इतनेपर भी सन्तोष न हुआ हो तो फिर कुछ कह डालिये। क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिये। आप वीरताका व्रत धारण करनेवाले, धैर्यवान् और क्षोभरहित हैं। गाली देते शोभा नहीं पाते॥ ४॥

दो०— सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥ २७४॥

शूरवीर तो युद्धमें करनी (शूरवीरताका कार्य) करते हैं, कहकर अपनेको नहीं जनाते। शत्रुको युद्धमें उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रतापकी डींग मारा करते हैं॥ २७४॥

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥

आप तो मानो कालको हाँक लगाकर बार-बार उसे मेरे लिये बुलाते हैं। लक्ष्मणजीके कठोर वचन सुनते ही परशुरामजीने अपने भयानक फरसेको सुधारकर हाथमें ले लिया॥ १॥

अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यहु मरनिहार भा साँचा॥

[और बोले—] अब लोग मुझे दोष न दें। यह कड़ुआ बोलनेवाला बालक मारे जानेके ही योग्य है। इसे बालक देखकर मैंने बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरनेको ही आ गया है॥ २॥

कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥

विश्वामित्रजीने कहा—अपराध क्षमा कीजिये। बालकोंके दोष और गुणको

साधुलोग नहीं गिनते। [परशुरामजी बोले—] तीखी धारका कुठार, मैं दयारहित और क्रोधी, और यह गुरुद्रोही और अपराधी मेरे सामने॥ ३॥

उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥

उत्तर दे रहा है। इतनेपर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, सो हे विश्वामित्र! केवल तुम्हारे शील (प्रेम) से। नहीं तो इसे इस कठोर कुठारसे काटकर थोड़े ही परिश्रमसे गुरुसे उऋण हो जाता॥ ४॥

दो०— गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥ २७५॥

विश्वामित्रजीने हृदयमें हँसकर कहा—मुनिको हरा-ही-हरा सूझ रहा है (अर्थात् सर्वत्र विजयी होनेके कारण ये श्रीराम-लक्ष्मणको भी साधारण क्षत्रिय ही समझ रहे हैं)। किन्तु यह लोहमयी (केवल फौलादकी बनी हुई) खाँड़ (खाँड़ा—खड्ग) है, ऊखकी (रसकी) खाँड़ नहीं है [जो मुँहमें लेते ही गल जाय। खेद है,] मुनि अब भी बेसमझ बने हुए हैं; इनके प्रभावको नहीं समझ रहे हैं॥ २७५॥

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जी कें॥

लक्ष्मणजीने कहा—हे मुनि! आपके शीलको कौन नहीं जानता? वह संसारभरमें प्रसिद्ध है। आप माता-पितासे तो अच्छी तरह उऋण हो ही गये, अब गुरुका ऋण रहा, जिसका जीमें बड़ा सोच लगा है॥ १॥

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥

वह मानो हमारे ही मत्थे काढ़ा था। बहुत दिन बीत गये, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब किसी हिसाब करनेवालेको बुला लाइये, तो मैं तुरंत थैली खोलकर दे दूँ॥ २॥

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही॥

लक्ष्मणजीके कड़ुवे वचन सुनकर परशुरामजीने कुठार सँभाला। सारी सभा हाय! हाय! करके पुकार उठी। [लक्ष्मणजीने कहा—] हे भृगुश्रेष्ठ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं? पर हे राजाओंके शत्रु! मैं ब्राह्मण समझकर बचा रहा हूँ (तरह दे रहा हूँ)॥ ३॥

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥

आपको कभी रणधीर बलवान् वीर नहीं मिले। हे ब्राह्मण देवता! आप घरहीमें

बड़े हैं। यह सुनकर 'अनुचित है, अनुचित है' कहकर सब लोग पुकार उठे। तब श्रीरघुनाथजीने इशारेसे लक्ष्मणजीको रोक दिया॥ ४॥

दो०— लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥ २७६॥

लक्ष्मणजीके उत्तरसे, जो आहुतिके समान थे, परशुरामजीके क्रोधरूपी अग्निको बढ़ते देखकर रघुकुलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजी जलके समान (शान्त करनेवाले) वचन बोले—॥ २७६॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना॥

हे नाथ! बालकपर कृपा कीजिये। इस सीधे और दुधमुँहे बच्चेपर क्रोध न कीजिये। यदि यह प्रभुका (आपका) कुछ भी प्रभाव जानता, तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता?॥ १॥

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी॥

बालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मनमें आनन्दसे भर जाते हैं। अतः इसे छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिये। आप तो समदर्शी, सुशील, धीर और ज्ञानी मुनि हैं॥ २॥

राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर वे कुछ ठंडे पड़े। इतनेमें लक्ष्मणजी कुछ कहकर फिर मुसकरा दिये। उनको हँसते देखकर परशुरामजीके नखसे शिखातक (सारे शरीरमें) क्रोध छा गया। उन्होंने कहा—हे राम! तेरा भाई बड़ा पापी है॥ ३॥

गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूटमुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही॥

यह शरीरसे गोरा, पर हृदयका बड़ा काला है। यह विषमुख है, दुधमुँहा नहीं। स्वभावसे ही टेढ़ा है, तेरा अनुसरण नहीं करता (तेरे-जैसा शीलवान् नहीं है)। यह नीच मुझे कालके समान नहीं देखता॥ ४॥

दो०— लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥ २७७॥

लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे मुनि! सुनिये, क्रोध पापका मूल है, जिसके वशमें होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्वभरके प्रतिकूल चलते (सबका अहित करते) हैं॥ २७७॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥

हे मुनिराज! मैं आपका दास हूँ। अब क्रोध त्यागकर दया कीजिये। टूटा हुआ धनुष क्रोध करनेसे जुड़ नहीं जायगा। खड़े-खड़े पैर दुखने लगे होंगे, बैठ जाइये॥ १॥

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥

यदि धनुष अत्यन्त ही प्रिय हो, तो कोई उपाय किया जाय और किसी बड़े गुणी (कारीगर)को बुलाकर जुड़वा दिया जाय। लक्ष्मणजीके बोलनेसे जनकजी डर जाते हैं और कहते हैं—बस, चुप रहिये, अनुचित बोलना अच्छा नहीं॥ २॥

थर थर काँपहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ होइ बल हानी॥

जनकपुरके स्त्री-पुरुष थर-थर काँप रहे हैं [और मन-ही-मन कह रहे हैं कि] छोटा कुमार बड़ा ही खोटा है। लक्ष्मणजीकी निर्भय वाणी सुन-सुनकर परशुरामजीका शरीर क्रोधसे जला जा रहा है और उनके बलकी हानि हो रही है (उनका बल घट रहा है)॥ ३॥

बोले रामहि देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा॥
मनु मलीन तनु सुंदर कैसें। बिष रस भरा कनक घटु जैसें॥

तब श्रीरामचन्द्रजीपर एहसान जनाकर परशुरामजी बोले—तेरा छोटा भाई समझकर मैं इसे बचा रहा हूँ। यह मनका मैला और शरीरका कैसा सुन्दर है, जैसे विषके रससे भरा हुआ सोनेका घड़ा!॥ ४॥

दो०— सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम॥ २७८॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी फिर हँसे। तब श्रीरामचन्द्रजीने तिरछी नजरसे उनकी ओर देखा, जिससे लक्ष्मणजी सकुचाकर, विपरीत बोलना छोड़कर, गुरुजीके पास चले गये॥ २७८॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहिं काना॥

श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयके साथ कोमल और शीतल वाणी बोले—हे नाथ! सुनिये, आप तो स्वभावसे ही सुजान हैं। आप बालकके वचनपर कान न कीजिये (उसे सुना-अनसुना कर दीजिये)॥ १॥

बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥

बर्रे और बालकका एक स्वभाव है। संतजन इन्हें कभी दोष नहीं लगाते। फिर

उसने (लक्ष्मणने) तो कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा है, हे नाथ! आपका अपराधी तो मैं हूँ॥ २॥

कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई॥

अतः हे स्वामी! कृपा, क्रोध, वध और बन्धन, जो कुछ करना हो, दासकी तरह (अर्थात् दास समझकर) मुझपर कीजिये। जिस प्रकारसे शीघ्र आपका क्रोध दूर हो, हे मुनिराज! बताइये, मैं वही उपाय करूँ॥ ३॥

कह मुनि राम जाइ रिस कैसें। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें॥
एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा॥

मुनिने कहा—हे राम! क्रोध कैसे जाय; अब भी तेरा छोटा भाई टेढ़ा ही ताक रहा है। इसकी गर्दनपर मैंने कुठार न चलाया, तो क्रोध करके किया ही क्या?॥ ४॥

दो०— गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउँ जिअत बैरी भूपकिसोर॥ २७९॥

मेरे जिस कुठारकी घोर करनी सुनकर राजाओंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर पड़ते हैं, उसी फरसेके रहते मैं इस शत्रु राजपुत्रको जीवित देख रहा हूँ॥ २७९॥

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ॥

हाथ चलता नहीं, क्रोधसे छाती जली जाती है। [हाय!] राजाओंका घातक यह कुठार भी कुण्ठित हो गया। विधाता विपरीत हो गया, इससे मेरा स्वभाव बदल गया, नहीं तो भला, मेरे हृदयमें किसी समय भी कृपा कैसी?॥ १॥

आजु दया दुखु दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥

आज दया मुझे यह दुःसह दुःख सहा रही है। यह सुनकर लक्ष्मणजीने मुसकराकर सिर नवाया [और कहा—] आपकी कृपारूपी वायु भी आपकी मूर्तिके अनुकूल ही है, वचन बोलते हैं, मानो फूल झड़ रहे हैं!॥ २॥

जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता। क्रोध भएँ तनु राख बिधाता॥
देखु जनक हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥

हे मुनि! यदि कृपा करनेसे आपका शरीर जला जाता है, तो क्रोध होनेपर तो शरीरकी रक्षा विधाता ही करेंगे। [परशुरामजीने कहा—] हे जनक! देख, यह मूर्ख बालक हठ करके यमपुरीमें घर (निवास) करना चाहता है॥ ३॥

बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। देखत छोट खोट नृपु ढोटा॥
बिहसे लखनु कहा मन माहीं। मूदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

इसको शीघ्र ही आँखोंकी ओट क्यों नहीं करते? यह राजपुत्र देखनेमें छोटा है, पर है बड़ा खोटा। लक्ष्मणजीने हँसकर मन-ही-मन कहा—आँख मूँद लेनेपर कहीं कोई नहीं है॥ ४॥

दो०— परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु॥ २८०॥

तब परशुरामजी हृदयमें अत्यन्त क्रोध भरकर श्रीरामजीसे बोले—अरे शठ! तू शिवजीका धनुष तोड़कर उलटा हमींको ज्ञान सिखाता है!॥ २८०॥

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥

तेरा यह भाई तेरी ही सम्मतिसे कटु वचन बोलता है और तू छलसे हाथ जोड़कर विनय करता है। या तो युद्धमें मेरा सन्तोष कर, नहीं तो राम कहलाना छोड़ दे॥ १॥

छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ॥

अरे शिवद्रोही! छल त्यागकर मुझसे युद्ध कर। नहीं तो भाईसहित तुझे मार डालूँगा। इस प्रकार परशुरामजी कुठार उठाये बक रहे हैं और श्रीरामचन्द्रजी सिर झुकाये मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं॥ २॥

गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥

[श्रीरामचन्द्रजीने मन-ही-मन कहा—] गुनाह (दोष) तो लक्ष्मणका और क्रोध मुझपर करते हैं! कहीं-कहीं सीधेपनमें भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा जानकर सब लोग किसीकी भी वन्दना करते हैं; टेढ़े चन्द्रमाको राहु भी नहीं ग्रसता॥ ३॥

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥

श्रीरामचन्द्रजीने [प्रकट] कहा—हे मुनीश्वर! क्रोध छोड़िये। आपके हाथमें कुठार है और मेरा यह सिर आगे है। जिस प्रकार आपका क्रोध जाय, हे स्वामी! वही कीजिये। मुझे अपना अनुचर (दास) जानिये॥ ४॥

दो०— प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु॥ २८१॥

स्वामी और सेवकमें युद्ध कैसा? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! क्रोधका त्याग कीजिये। आपका [वीरोंका-सा] वेष देखकर ही बालकने कुछ कह डाला था; वास्तवमें उसका भी कोई दोष नहीं है॥ २८१॥

देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥

आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किये देखकर और वीर समझकर बालकको क्रोध आ गया। वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं। अपने वंश (रघुवंश) के स्वभावके अनुसार उसने उत्तर दिया॥ १॥

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥

यदि आप मुनिकी तरह आते, तो हे स्वामी! बालक आपके चरणोंकी धूलि सिरपर रखता। अनजानेकी भूलको क्षमा कर दीजिये। ब्राह्मणोंके हृदयमें बहुत अधिक दया होनी चाहिये॥ २॥

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥

हे नाथ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी? कहिये न, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक! कहाँ मेरा राममात्र छोटा-सा नाम और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा नाम॥ ३॥

देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

हे देव! हमारे तो एक ही गुण धनुष है और आपके परम पवित्र [शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता—ये] नौ गुण हैं। हम तो सब प्रकारसे आपसे हारे हैं। हे विप्र! हमारे अपराधोंको क्षमा कीजिये॥ ४॥

दो०— बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधु सम बाम॥ २८२॥

श्रीरामचन्द्रजीने परशुरामजीको बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा। तब भृगुपति (परशुरामजी) कुपित होकर [अथवा क्रोधकी हँसी हँसकर] बोले—तू भी अपने भाईके समान ही टेढ़ा है॥ २८२॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्त्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥

तू मुझे निरा ब्राह्मण ही समझता है? मैं जैसा विप्र हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुषको स्त्रुवा, बाणको आहुति और मेरे क्रोधको अत्यन्त भयङ्कर अग्नि जान॥ १॥

समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥

चतुरंगिणी सेना सुन्दर समिधाएँ (यज्ञमें जलायी जानेवाली लकड़ियाँ) हैं। बड़े-बड़े राजा उसमें आकर बलिके पशु हुए हैं, जिनको मैंने इसी फरसेसे काटकर

बलि दिया है। ऐसे करोड़ों जपयुक्त रणयज्ञ मैंने किये हैं (अर्थात् जैसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक 'स्वाहा' शब्दके साथ आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैंने पुकार-पुकारकर राजाओंकी बलि दी है)॥ २॥

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥

मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं है, इसीसे तू ब्राह्मणके धोखे मेरा निरादर करके बोल रहा है। धनुष तोड़ डाला, इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। ऐसा अहंकार है, मानो संसारको जीतकर खड़ा है॥ ३॥

राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुनि! विचारकर बोलिये। आपका क्रोध बहुत बड़ा है। और मेरी भूल बहुत छोटी है। पुराना धनुष था, छूते ही टूट गया। मैं किस कारण अभिमान करूँ?॥ ४॥

दो०— जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥ २८३॥

हे भृगुनाथ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, तो यह सत्य सुनिये, फिर संसारमें ऐसा कौन योद्धा है जिसे हम डरके मारे मस्तक नवायें?॥ २८३॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥

देवता, दैत्य, राजा या और बहुत-से योद्धा, वे चाहे बलमें हमारे बराबर हों चाहे अधिक बलवान् हों, यदि रणमें हमें कोई भी ललकारे तो हम उससे सुखपूर्वक लड़ेंगे, चाहे काल ही क्यों न हो?॥ १॥

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना॥
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥

क्षत्रियका शरीर धरकर जो युद्धमें डर गया, उस नीचने अपने कुलपर कलङ्क लगा दिया। मैं स्वभावसे ही कहता हूँ, कुलकी प्रशंसा करके नहीं, कि रघुवंशी रणमें कालसे भी नहीं डरते॥ २॥

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥

ब्राह्मणवंशकी ऐसी ही प्रभुता (महिमा) है कि जो आपसे डरता है, वह सबसे निर्भय हो जाता है [अथवा जो भयरहित होता है वह भी आपसे डरता है]। श्रीरघुनाथजीके कोमल और रहस्यपूर्ण बचन सुनकर परशुरामजीकी बुद्धिके परदे खुल गये॥ ३॥

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

[परशुरामजीने कहा—] हे राम! हे लक्ष्मीपति ! धनुषको हाथमें [अथवा लक्ष्मीपति विष्णुका धनुष] लीजिये और इसे खींचिये, जिससे मेरा सन्देह मिट जाय। परशुरामजी धनुष देने लगे, तब वह आप ही चला गया। तब परशुरामजीके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ॥ ४॥

दो०— जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात॥ २८४॥

तब उन्होंने श्रीरामजीका प्रभाव जाना, [जिसके कारण] उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। वे हाथ जोड़कर वचन बोले—प्रेम उनके हृदयमें समाता न था— ॥ २८४॥

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥

हे रघुकुलरूपी कमलवनके सूर्य! हे राक्षसोंके कुलरूपी घने जंगलको जलानेवाले अग्नि! आपकी जय हो! हे देवता ब्राह्मण और गौका हित करनेवाले! आपकी जय हो। हे मद, मोह, क्रोध और भ्रमके हरनेवाले! आपकी जय हो॥ १॥

बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥

हे विनय, शील, कृपा आदि गुणोंके समुद्र और वचनोंकी रचनामें अत्यन्त चतुर! आपकी जय हो। हे सेवकोंको सुख देनेवाले, सब अङ्गोंसे सुन्दर और शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी छबि धारण करनेवाले! आपकी जय हो॥ २॥

करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

मैं एक मुखसे आपकी क्या प्रशंसा करूँ? हे महादेवजीके मनरूपी मानसरोवरके हंस! आपकी जय हो। मैंने अनजानमें आपको बहुत-से अनुचित वचन कहे। हे क्षमाके मन्दिर दोनों भाई! मुझे क्षमा कीजिये॥ ३॥

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने॥

हे रघुकुलके पताकास्वरूप श्रीरामचन्द्रजी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। ऐसा कहकर परशुरामजी तपके लिये वनको चले गये। [यह देखकर] दुष्ट राजालोग बिना ही कारणके (मन:कल्पित) डरसे (रामचन्द्रजीसे तो परशुरामजी भी हार गये, हमने इनका अपमान किया था, अब कहीं ये उसका बदला न लें, इस व्यर्थके डरसे) डर गये, वे कायर चुपकेसे जहाँ-तहाँ भाग गये॥ ४॥

दो०— देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल॥ २८५॥

देवताओंने नगाड़े बजाये, वे प्रभुके ऊपर फूल बरसाने लगे। जनकपुरके स्त्री-पुरुष सब हर्षित हो गये। उनका मोहमय (अज्ञानसे उत्पन्न) शूल मिट गया॥ २८५॥

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिलबयनीं॥

खूब जोरसे बाजे बजने लगे। सभीने मनोहर मङ्गल-साज सजे। सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली तथा कोयलके समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर सुन्दर गान करने लगीं॥ १॥

सुखु बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी॥

जनकजीके सुखका वर्णन नहीं किया जा सकता; मानो जन्मका दरिद्री धनका खजाना पा गया हो! सीताजीका भय जाता रहा; वे ऐसी सुखी हुईं जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे चकोरकी कन्या सुखी होती है॥ २॥

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं॥

जनकजीने विश्वामित्रजीको प्रणाम किया [और कहा—] प्रभुहीकी कृपासे श्रीरामचन्द्रजीने धनुष तोड़ा है। दोनों भाइयोंने मुझे कृतार्थ कर दिया। हे स्वामी! अब जो उचित हो सो कहिये॥ ३॥

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

मुनिने कहा—हे चतुर नरेश! सुनो, यों तो विवाह धनुषके अधीन था; धनुषके टूटते ही विवाह हो गया। देवता, मनुष्य और नाग सब किसीको यह मालूम है॥ ४॥

दो०— तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥ २८६॥

तथापि तुम जाकर अपने कुलका जैसा व्यवहार हो, ब्राह्मणों, कुलके बूढ़ों और गुरुओंसे पूछकर और वेदोंमें वर्णित जैसा आचार हो वैसा करो॥ २८६॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहि बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला॥

जाकर अयोध्याको दूत भेजो, जो राजा दशरथको बुला लावें। राजाने प्रसन्न होकर कहा—हे कृपालु! बहुत अच्छा! और उसी समय दूतोंको बुलाकर भेज दिया॥ १॥

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगरु सँवारहु चारिहुँ पासा॥

फिर सब महाजनोंको बुलाया और सबने आकर राजाको आदरपूर्वक सिर नवाया। [राजाने कहा—] बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगरको चारों ओरसे सजाओ॥ २॥

हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई॥

महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आये। फिर राजाने नौकरोंको बुला भेजा [और उन्हें आज्ञा दी कि] विचित्र मण्डप सजाकर तैयार करो। यह सुनकर वे सब राजाके वचन सिरपर धरकर और सुख पाकर चले॥ ३॥

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

उन्होंने अनेक कारीगरोंको बुला भेजा, जो मण्डप बनानेमें कुशल और चतुर थे। उन्होंने ब्रह्माकी वन्दना करके कार्य आरम्भ किया और [पहले] सोनेके केलेके खंभे बनाये॥ ४॥

दो०— हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥ २८७॥

हरी-हरी मणियों (पन्ने) के पत्ते और फल बनाये तथा पद्मराग मणियों (माणिक) के फूल बनाये। मण्डपकी अत्यन्त विचित्र रचना देखकर ब्रह्माका मन भी भूल गया॥ २८७॥

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई॥

बाँस सब हरी-हरी मणियों (पन्ने) के सीधे और गाँठोंसे युक्त ऐसे बनाये जो पहचाने नहीं जाते थे [कि मणियोंके हैं या साधारण]। सोनेकी सुन्दर नागबेलि (पानकी लता) बनायी, जो पत्तोंसहित ऐसी भली मालूम होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी॥ १॥

तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥

उसी नागबेलिके रचकर और पच्चीकारी करके बन्धन (बाँधनेकी रस्सी) बनाये। बीच-बीचमें मोतियोंकी सुन्दर झालरें हैं। माणिक, पन्ने, हीरे और फिरोजे, इन रत्नोंको चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके [लाल, हरे, सफेद और फिरोजी रंगके] कमल बनाये॥ २॥

किए भृंग बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं॥

भौंरे और बहुत रंगोंके पक्षी बनाये, जो हवाके सहारे गूँजते और कूजते थे। खंभोंपर देवताओंकी मूर्तियाँ गढ़कर निकालीं, जो सब मङ्गलद्रव्य लिये खड़ी थीं॥ ३॥

चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं॥

गजमुक्ताओंके सहज ही सुहावने अनेकों तरहके चौक पुराये॥ ४॥

दो०— सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि॥ २८८॥

नीलमणिको कोरकर अत्यन्त सुन्दर आमके पत्ते बनाये। सोनेके बौर (आमके फूल) और रेशमकी डोरीसे बँधे हुए पन्नेके बने फलोंके गुच्छे सुशोभित हैं॥ २८८॥

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए॥

ऐसे सुन्दर और उत्तम बंदनवार बनाये मानो कामदेवने फंदे सजाये हों। अनेकों मङ्गल-कलश और सुन्दर ध्वजा, पताका, परदे और चँवर बनाये॥ १॥

दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना॥
जेहिं मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही॥

जिसमें मणियोंके अनेकों सुन्दर दीपक हैं, उस विचित्र मण्डपका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। जिस मण्डपमें श्रीजानकीजी दुलहिन होंगी, किस कविकी ऐसी बुद्धि है जो उसका वर्णन कर सके॥ २॥

दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोक उजागर॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥

जिस मण्डपमें रूप और गुणोंके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी दूल्हे होंगे, वह मण्डप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होना ही चाहिये। जनकजीके महलकी जैसी शोभा है, वैसी ही शोभा नगरके प्रत्येक घरकी दिखायी देती है॥ ३॥

जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

उस समय जिसने तिरहुतको देखा, उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े। जनकपुरमें नीचके घर भी उस समय जो सम्पदा सुशोभित थी, उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो जाता था॥ ४॥

दो०— बसइ नगर जेहिं लच्छि करि कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु॥ २८९॥

जिस नगरमें साक्षात् लक्ष्मीजी कपटसे स्त्रीका सुन्दर वेष बनाकर बसती हैं, उस पुरकी शोभाका वर्णन करनेमें सरस्वती और शेष भी सकुचाते हैं॥ २८९॥

पहुँचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥

जनकजीके दूत श्रीरामचन्द्रजीकी पवित्र पुरी अयोध्यामें पहुँचे। सुन्दर नगर देखकर वे हर्षित हुए। राजद्वारपर जाकर उन्होंने खबर भेजी; राजा दशरथजीने सुनकर उन्हें बुला लिया॥ १॥

करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥

दूतोंने प्रणाम करके चिट्ठी दी। प्रसन्न होकर राजाने स्वयं उठकर उसे लिया। चिट्ठी बाँचते समय उनके नेत्रोंमें जल (प्रेम और आनन्दके आँसू) छा गया, शरीर पुलकित हो गया और छाती भर आयी॥ २॥

रामु लखनु उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥

हृदयमें राम और लक्ष्मण हैं, हाथमें सुन्दर चिट्ठी है, राजा उसे हाथमें लिये ही रह गये, खट्टी-मीठी कुछ भी कह न सके। फिर धीरज धरकर उन्होंने पत्रिका पढ़ी। सारी सभा सच्ची बात सुनकर हर्षित हो गयी॥ ३॥

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेहँ सकुचाई। तात कहाँ तें पाती आई॥

भरतजी अपने मित्रों और भाई शत्रुघ्नके साथ जहाँ खेलते थे, वहीं समाचार पाकर वे आ गये। बहुत प्रेमसे सकुचाते हुए पूछते हैं—पिताजी! चिट्ठी कहाँसे आयी है?॥ ४॥

दो०— कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहिं देस।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस॥ २९०॥

हमारे प्राणोंसे प्यारे दोनों भाई, कहिये सकुशल तो हैं और वे किस देशमें हैं? स्नेहसे सने ये वचन सुनकर राजाने फिरसे चिट्ठी पढ़ी॥ २९०॥

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभाँ सुखु लहेउ बिसेषी॥

चिट्ठी सुनकर दोनों भाई पुलकित हो गये। स्नेह इतना अधिक हो गया कि वह शरीरमें समाता नहीं। भरतजीका पवित्र प्रेम देखकर सारी सभाने विशेष सुख पाया॥ १॥

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीकें निज नयन निहारे॥

तब राजा दूतोंको पास बैठाकर मनको हरनेवाले मीठे वचन बोले—भैया! कहो,

दोनों बच्चे कुशलसे तो हैं? तुमने अपनी आँखोंसे उन्हें अच्छी तरह देखा है न?॥ २॥

स्यामल गौर धरें धनु भाथा। बय किसोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥

साँवले और गोरे शरीरवाले वे धनुष और तरकस धारण किये रहते हैं, किशोर अवस्था है, विश्वामित्र मुनिके साथ हैं। तुम उनको पहचानते हो तो उनका स्वभाव बताओ। राजा प्रेमके विशेष वश होनेसे बार-बार इस प्रकार कह (पूछ) रहे हैं॥ ३॥

जा दिन तें मुनि गए लवाई। तब तें आजु साँचि सुधि पाई॥
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने॥

[भैया!] जिस दिनसे मुनि उन्हें लिवा ले गये, तबसे आज ही हमने सच्ची खबर पायी है। कहो तो महाराज जनकने उन्हें कैसे पहचाना? ये प्रिय (प्रेमभरे) वचन सुनकर दूत मुसकराये॥ ४॥

दो०— सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम्ह सम धन्य न कोउ।
रामु लखनु जिन्ह के तनय बिस्व बिभूषन दोउ॥ २९१॥

[दूतोंने कहा—] हे राजाओंके मुकुटमणि! सुनिये, आपके समान धन्य और कोई नहीं है, जिनके राम-लक्ष्मण-जैसे पुत्र हैं, जो दोनों विश्वके विभूषण हैं॥ २९१॥

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंघ तिहु पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥

आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं। वे पुरुषसिंह तीनों लोकोंके प्रकाशस्वरूप हैं। जिनके यशके आगे चन्द्रमा मलिन और प्रतापके आगे सूर्य शीतल लगता है,॥ १॥

तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥

हे नाथ! उनके लिये आप कहते हैं कि उन्हें कैसे पहचाना! क्या सूर्यको हाथमें दीपक लेकर देखा जाता है? सीताजीके स्वयंवरमें अनेकों राजा और एक-से-एक बढ़कर योद्धा एकत्र हुए थे,॥ २॥

संभु सरासनु काहुँ न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥
तीनि लोक महँ जे भटमानी। सभ कै सकति संभु धनु भानी॥

परन्तु शिवजीके धनुषको कोई भी नहीं हटा सका। सारे बलवान् वीर हार गये। तीनों लोकोंमें जो वीरताके अभिमानी थे, शिवजीके धनुषने सबकी शक्ति तोड़ दी॥ ३॥

सकइ उठाइ सरासुर मेरू। सोउ हियँ हारि गयउ करि फेरू॥
जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा। सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा॥

बाणासुर, जो सुमेरुको भी उठा सकता था, वह भी हृदयमें हारकर परिक्रमा

करके चला गया; और जिसने खेलसे ही कैलासको उठा लिया था, वह रावण भी उस सभामें पराजयको प्राप्त हुआ॥ ४॥

दो०— तहाँ राम रघुबंसमनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥ २९२॥

हे महाराज! सुनिये, वहाँ (जहाँ ऐसे-ऐसे योद्धा हार मान गये) रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजीने बिना ही प्रयास शिवजीके धनुषको वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाथी कमलकी डंडीको तोड़ डालता है!॥ २९२॥

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा॥

धनुष टूटनेकी बात सुनकर परशुरामजी क्रोधभरे आये और उन्होंने बहुत प्रकारसे आँखें दिखलायीं। अन्तमें उन्होंने भी श्रीरामचन्द्रजीका बल देखकर उन्हें अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकारसे विनती करके वनको गमन किया॥ १॥

राजन रामु अतुलबल जैसें। तेज निधान लखनु पुनि तैसें॥
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताकें॥

हे राजन्! जैसे श्रीरामचन्द्रजी अतुलनीय बली हैं, वैसे ही तेजनिधान फिर लक्ष्मणजी भी हैं, जिनके देखनेमात्रसे राजालोग ऐसे काँप उठते थे, जैसे हाथी सिंहके बच्चेके ताकनेसे काँप उठते हैं॥ २॥

देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ॥
दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी॥

हे देव! आपके दोनों बालकोंको देखनेके बाद अब आँखोंके नीचे कोई आता ही नहीं (हमारी दृष्टिपर कोई चढ़ता ही नहीं)। प्रेम, प्रताप और वीर-रसमें पगी हुई दूतोंकी वचनरचना सबको बहुत प्रिय लगी॥ ३॥

सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूदहिं काना। धरमु बिचारि सबहिं सुखु माना॥

सभासहित राजा प्रेममें मग्न हो गये और दूतोंको निछावर देने लगे। [उन्हें निछावर देते देखकर] यह नीतिविरुद्ध है, ऐसा कहकर दूत अपने हाथोंसे कान मूँदने लगे। धर्मको विचारकर (उनका धर्मयुक्त बर्ताव देखकर) सभीने सुख माना॥ ४॥

दो०— तब उठि भूप बसिष्ट कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बोलाइ॥ २९३॥

तब राजाने उठकर वसिष्ठजीके पास जाकर उन्हें पत्रिका दी और आदरपूर्वक दूतोंको बुलाकर सारी कथा गुरुजीको सुना दी॥ २९३॥

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

सब समाचार सुनकर और अत्यन्त सुख पाकर गुरु बोले—पुण्यात्मा पुरुषके लिये पृथ्वी सुखोंसे छायी हुई है। जैसे नदियाँ समुद्रमें जाती हैं, यद्यपि समुद्रको नदीकी कामना नहीं होती॥ १॥

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेबी। तसि पुनीत कौसल्या देबी॥

वैसे ही सुख और सम्पत्ति बिना ही बुलाये स्वाभाविक ही धर्मात्मा पुरुषके पास जाती हैं। तुम जैसे गुरु, ब्राह्मण, गाय और देवताकी सेवा करनेवाले हो, वैसी ही पवित्र कौसल्या देवी भी हैं॥ २॥

सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥

तुम्हारे समान पुण्यात्मा जगत्‌में न कोई हुआ, न है और न होनेका ही है। हे राजन्! तुमसे अधिक पुण्य और किसका होगा, जिसके राम-सरीखे पुत्र हैं॥ ३॥

बीर बिनीत धरम ब्रत धारी। गुन सागर बर बालक चारी॥
तुम्ह कहुँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना॥

और जिसके चारों बालक वीर, विनम्र, धर्मका व्रत धारण करनेवाले और गुणोंके सुन्दर समुद्र हैं। तुम्हारे लिये सभी कालोंमें कल्याण है। अतएव डंका बजवाकर बारात सजाओ॥ ४॥

दो०— चलहु बेगि सुनि गुर बचन भलेहिं नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ॥ २९४॥

और जल्दी चलो। गुरुजीके ऐसे वचन सुनकर, 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर और सिर नवाकर तथा दूतोंको डेरा दिलवाकर राजा महलमें गये॥ २९४॥

राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाचि सुनाई॥
सुनि संदेसु सकल हरषानीं। अपर कथा सब भूप बखानीं॥

राजाने सारे रनिवासको बुलाकर जनकजीकी पत्रिका बाँचकर सुनायी। समाचार सुनकर सब रानियाँ हर्षसे भर गयीं। राजाने फिर दूसरी सब बातोंका (जो दूतोंके मुखसे सुनी थीं) वर्णन किया॥ १॥

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी॥
मुदित असीस देहिं गुर नारीं। अति आनंद मगन महतारीं॥

प्रेममें प्रफुल्लित हुई रानियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं जैसे मोरनी बादलोंकी गरज सुनकर प्रफुल्लित होती हैं। बड़ी-बूढ़ी [अथवा गुरुओंकी] स्त्रियाँ प्रसन्न होकर

आशीर्वाद दे रही हैं। माताएँ अत्यन्त आनन्दमें मग्न हैं॥ २॥

लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती॥
राम लखन कै कीरति करनी। बारहिं बार भूपबर बरनी॥

उस अत्यन्त प्रिय पत्रिकाको आपसमें लेकर सब हृदयसे लगाकर छाती शीतल करती हैं। राजाओंमें श्रेष्ठ दशरथजीने श्रीराम-लक्ष्मणकी कीर्ति और करनीका बारंबार वर्णन किया॥ ३॥

मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए॥
दिए दान आनंद समेता। चले बिप्रबर आसिष देता॥

'यह सब मुनिकी कृपा है' ऐसा कहकर वे बाहर चले आये। तब रानियोंने ब्राह्मणोंको बुलाया और आनन्दसहित उन्हें दान दिये। श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले॥ ४॥

सो०—जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रबर्ति दसरत्थ के॥ २९५॥

फिर भिक्षुकोंको बुलाकर करोड़ों प्रकारकी निछावरें उनको दीं। 'चक्रवर्ती महाराज दशरथके चारों पुत्र चिरंजीवी हों'॥ २९५॥

कहत चले पहिरें पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए॥

यों कहते हुए वे अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्र पहन-पहनकर चले। आनन्दित होकर नगाड़ेवालोंने बड़े जोरसे नगाड़ोंपर चोट लगायी। सब लोगोंने जब यह समाचार पाया, तब घर-घर बधावे होने लगे॥ १॥

भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गलीं सँवारन लागे॥

चौदहों लोकोंमें उत्साह भर गया कि जानकीजी और श्रीरघुनाथजीका विवाह होगा। यह शुभ समाचार पाकर लोग प्रेममग्न हो गये और रास्ते, घर तथा गलियाँ सजाने लगे॥ २॥

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। राम पुरी मंगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥

यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है, क्योंकि वह श्रीरामजीकी मङ्गलमयी पवित्र पुरी है, तथापि प्रीति-पर-प्रीति होनेसे वह सुन्दर मङ्गलरचनासे सजायी गयी॥ ३॥

ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥

ध्वजा, पताका, परदे और सुन्दर चँवरोंसे सारा बाजार बहुत ही अनूठा छाया

हुआ है। सोनेके कलश, तोरण, मणियोंकी झालरें, हलदी, दूब, दही, अक्षत और मालाओंसे— ॥ ४ ॥

दो०— मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सींचीं चतुरसम चौकें चारु पुराइ ॥ २९६ ॥

लोगोंने अपने-अपने घरोंको सजाकर मङ्गलमय बना लिया। गलियोंको चतुरसमसे सींचा और [द्वारोंपर] सुन्दर चौक पुराये। [चन्दन, केशर, कस्तूरी और कपूरसे बने हुए एक सुगन्धित द्रवको चतुरसम कहते हैं] ॥ २९६ ॥

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि ॥
बिधुबदनीं मृग सावक लोचनि। निज सरूप रति मानु बिमोचनि ॥

बिजलीकी-सी कान्तिवाली चन्द्रमुखी, हरिनके बच्चेके-से नेत्रवाली और अपने सुन्दर रूपसे कामदेवकी स्त्री रतिके अभिमानको छुड़ानेवाली सुहागिनी स्त्रियाँ सभी सोलहों शृंगार सजकर, जहाँ-तहाँ झुंड-की-झुंड मिलकर, ॥ १ ॥

गावहिं मंगल मंजुल बानीं। सुनि कल रव कलकंठि लजानीं ॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना ॥

मनोहर वाणीसे मङ्गलगीत गा रही हैं, जिनके सुन्दर स्वरको सुनकर कोयलें भी लजा जाती हैं। राजमहलका वर्णन कैसे किया जाय, जहाँ विश्वको विमोहित करनेवाला मण्डप बनाया गया है ॥ २ ॥

मंगल द्रब्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना ॥
कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं ॥

अनेकों प्रकारके मनोहर माङ्गलिक पदार्थ शोभित हो रहे हैं और बहुत-से नगाड़े बज रहे हैं। कहीं भाट विरुदावली (कुलकीर्ति) का उच्चारण कर रहे हैं और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं ॥ ३ ॥

गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता ॥
बहुत उछाहु भवनु अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहु ओरा ॥

सुन्दरी स्त्रियाँ श्रीरामजी और श्रीसीताजीका नाम ले-लेकर मङ्गलगीत गा रही हैं। उत्साह बहुत है और महल अत्यन्त ही छोटा है। इससे [उसमें न समाकर] मानो वह उत्साह (आनन्द) चारों ओर उमड़ चला है ॥ ४ ॥

दो०— सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार ॥ २९७ ॥

दशरथके महलकी शोभाका वर्णन कौन कवि कर सकता है, जहाँ समस्त देवताओंके शिरोमणि रामचन्द्रजीने अवतार लिया है ॥ २९७ ॥

भूप भरत पुनि लिए बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई ॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥

फिर राजाने भरतजीको बुला लिया और कहा कि जाकर घोड़े, हाथी और रथ सजाओ, जल्दी रामचन्द्रजीकी बारातमें चलो। यह सुनते ही दोनों भाई (भरतजी और शत्रुघ्नजी) आनन्दवश पुलकसे भर गये॥ १॥

भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥

भरतजीने सब साहनी (घुड़सालके अध्यक्ष) बुलाये और उन्हें [घोड़ोंको सजानेकी] आज्ञा दी, वे प्रसन्न होकर उठ दौड़े। उन्होंने रुचिके साथ (यथायोग्य) जीनें कसकर घोड़े सजाये। रंग-रंगके उत्तम घोड़े शोभित हो गये॥ २॥

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने॥

सब घोड़े बड़े ही सुन्दर और चञ्चल करनी (चाल) के हैं। वे धरतीपर ऐसे पैर रखते हैं जैसे जलते हुए लोहेपर रखते हों। अनेकों जातिके घोड़े हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। [ऐसी तेज चालके हैं] मानो हवाका निरादर करके उड़ना चाहते हैं॥ ३॥

तिन्ह सब छयल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥
सब सुंदर सब भूषनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी॥

उन सब घोड़ोंपर भरतजीके समान अवस्थावाले सब छैल-छबीले राजकुमार सवार हुए। वे सभी सुन्दर हैं और सब आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके हाथोंमें बाण और धनुष हैं तथा कमरमें भारी तरकस बँधे हैं॥ ४॥

दो०— छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रबीन॥ २९८॥

सभी चुने हुए छबीले छैल, शूरवीर, चतुर और नवयुवक हैं। प्रत्येक सवारके साथ दो पैदल सिपाही हैं, जो तलवार चलानेकी कलामें बड़े निपुण हैं॥ २९८॥

बाँधें बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना॥

शूरताका बाना धारण किये हुए रणधीर वीर सब निकलकर नगरके बाहर आ खड़े हुए। वे चतुर अपने घोड़ोंको तरह-तरहकी चालोंसे फेर रहे हैं और भेरी तथा नगाड़ेकी आवाज सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं॥ १॥

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं॥

सारथियोंने ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणोंको लगाकर रथोंको बहुत विलक्षण बना दिया है। उनमें सुन्दर चँवर लगे हैं और घंटियाँ सुन्दर शब्द कर रही हैं। वे रथ इतने सुन्दर हैं मानो सूर्यके रथकी शोभाको छीने लेते हैं॥ २॥

सावँकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥
सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे॥

अगणित श्यामकर्ण घोड़े थे। उनको सारथियोंने उन रथोंमें जोत दिया है, जो सभी देखनेमें सुन्दर और गहनोंसे सजाये हुए सुशोभित हैं, और जिन्हें देखकर मुनियोंके मन भी मोहित हो जाते हैं॥ ३॥

जे जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़ बेग अधिकाईं॥
अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥

जो जलपर भी जमीनकी तरह ही चलते हैं। वेगकी अधिकतासे उनकी टाप पानीमें नहीं डूबती। अस्त्र-शस्त्र और सब साज सजाकर सारथियोंने रथियोंको बुला लिया॥ ४॥

दो०— चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात॥ २९९॥

रथोंपर चढ़-चढ़कर बारात नगरके बाहर जुटने लगी। जो जिस कामके लिये जाता है, सभीको सुन्दर शकुन होते हैं॥ २९९॥

कलित करिबरन्हि परीं अँबारीं। कहि न जाहिं जेहि भाँति सँवारीं॥
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी॥

श्रेष्ठ हाथियोंपर सुन्दर अंबारियाँ पड़ी हैं। वे जिस प्रकार सजायी गयी थीं, सो कहा नहीं जा सकता। मतवाले हाथी घंटोंसे सुशोभित होकर (घंटे बजाते हुए) चले, मानो सावनके सुन्दर बादलोंके समूह [गरजते हुए] जा रहे हों॥ १॥

बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा॥

सुन्दर पालकियाँ, सुखसे बैठने योग्य तामजान (जो कुर्सीनुमा होते हैं) और रथ आदि और भी अनेकों प्रकारकी सवारियाँ हैं। उनपर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके समूह चढ़कर चले, मानो सब वेदोंके छन्द ही शरीर धारण किये हुए हों॥ २॥

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥

मागध, सूत, भाट और गुण गानेवाले सब, जो जिस योग्य थे, वैसी सवारीपर चढ़कर चले। बहुत जातियोंके खच्चर, ऊँट और बैल असंख्यों प्रकारकी वस्तुएँ लाद-लादकर चले॥ ३॥

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥

कहार करोड़ों काँवरें लेकर चले। उनमें अनेकों प्रकारकी इतनी वस्तुएँ थीं कि जिनका वर्णन कौन कर सकता है। सब सेवकोंके समूह अपना-अपना साज-समाज बनाकर चले॥ ४॥

दो०— सब कें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लखनु दोउ बीर॥ ३००॥

सबके हृदयमें अपार हर्ष है और शरीर पुलकसे भरे हैं। [सबको एक ही लालसा लगी है कि] हम श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको नेत्र भरकर कब देखेंगे॥ ३००॥

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहु ओरा॥
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिअ न काना॥

हाथी गरज रहे हैं, उनके घंटोंकी भीषण ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथोंकी घरघराहट और घोड़ोंकी हिनहिनाहट हो रही है। बादलोंका निरादर करते हुए नगाड़े घोर शब्द कर रहे हैं। किसीको अपनी-परायी कोई बात कानोंसे सुनायी नहीं देती॥ १॥

महा भीर भूपति के द्वारें। रज होइ जाइ पषान पबारें॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारीं। लिएँ आरती मंगल थारीं॥

राजा दशरथके दरवाजेपर इतनी भारी भीड़ हो रही है कि वहाँ पत्थर फेंका जाय तो वह भी पिसकर धूल हो जाय। अटारियोंपर चढ़ी स्त्रियाँ मङ्गल-थालोंमें आरती लिये देख रही हैं॥ २॥

गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी॥

और नाना प्रकारके मनोहर गीत गा रही हैं। उनके अत्यन्त आनन्दका बखान नहीं हो सकता। तब सुमन्त्रजीने दो रथ सजाकर उनमें सूर्यके घोड़ोंको भी मात करनेवाले घोड़े जोते॥ ३॥

दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने॥
राज समाजु एक रथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा॥

दोनों सुन्दर रथ वे राजा दशरथके पास ले आये, जिनकी सुन्दरताका वर्णन सरस्वतीसे भी नहीं हो सकता। एक रथपर राजसी सामान सजाया गया। और दूसरा जो तेजका पुंज और अत्यन्त ही शोभायमान था,॥ ४॥

दो०— तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥ ३०१॥

उस सुन्दर रथपर राजा वसिष्ठजीको हर्षपूर्वक चढ़ाकर फिर स्वयं शिव, गुरु, गौरी (पार्वती) और गणेशजीका स्मरण करके [दूसरे] रथपर चढ़े॥ ३०१॥

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुर गुर संग पुरंदर जैसें॥
करि कुल रीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ॥

वसिष्ठजीके साथ [जाते हुए] राजा दशरथजी कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे देवगुरु

बृहस्पतिजीके साथ इन्द्र हों। वेदकी ।ग्ने-अपने मनकी पसंदके अनुसार सुहावने उत्तम करके तथा सबको सब प्रकारसे सजे देखकर ्कल नित्य नये सुखोंको देखकर सभी

सुमिरि रामु गुर आयसु पाई। चले म

हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन निसान।

श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके, गुरुकी आज्ञा पाकर पृथ्वीपति दश॥ ३०४॥ बजाकर चले। बारात देखकर देवता हर्षित हुए और सुन्दर मङ्गलदायक फूलोंक। ्कर करने लगे॥ २॥

भयउ कोलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे॥
सुर नर नारि सुमंगल गाईं। सरस राग बाजहिं सहनाईं॥

बड़ा शोर मच गया, घोड़े और हाथी गरजने लगे। आकाशमें और बारातमें [दोनों जगह] बाजे बजने लगे। देवाङ्गनाएँ और मनुष्योंकी स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गलगान करने लगीं और रसीले रागसे शहनाइयाँ बजने लगीं॥ ॥

घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरव करहिं पाइक फहराहीं॥
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥

घंटे-घंटियोंकी ध्वनिका वर्णन नहीं हो सकता। पैदल चलनेवाले सेवकगण अथवा पट्टेबाज कसरतके खेल कर रहे हैं और फहरा रहे हैं (आकाशमें ऊँचे उछलते हुए जा रहे हैं)। हँसी करनेमें निपुण और सुन्दर गानेमें चतुर विदूषक (मसखरे) तरह-तरहके तमाशे कर रहे हैं॥ ४॥

दो०— तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥ ३०२॥

सुन्दर राजकुमार मृदङ्ग और नगाड़ेके शब्द सुनकर घोड़ोंको उन्हींके अनुसार इस प्रकार नचा रहे हैं कि वे तालके बंधानसे जरा भी डिगते नहीं हैं। चतुर नट चकित होकर यह देख रहे हैं॥ ३०२॥

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥

बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुन्दर शुभदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकंठ पक्षी बायीं ओर चारा ले रहा है, मानो सम्पूर्ण मङ्गलोंकी सूचना दे रहा हो॥ १॥

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥

दाहिनी ओर कौआ सुन्दर खेतमें शोभा पा रहा है। नेवलेका दर्शन भी सब किसीने पाया। तीनों प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्धित) हवा अनुकूल दिशामें चल रही है।

श्रेष्ठ (सुहागिनी) स्त्रियाँ भरे हुए घड़े और गोदमें बालक लिये आ रही हैं॥ २॥

लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥

लोमड़ी फिर-फिरकर (बार-बार) दिखायी दे जाती है। गायें सामने खड़ी बछड़ोंको दूध पिलाती हैं। हरिनोंकी टोली [बायीं ओरसे] घूमकर दाहिनी ओरको आयी, मानो सभी मङ्गलोंका समूह दिखायी दिया॥ ३॥

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥

क्षेमकरी (सफेद सिरवाली चील) विशेष रूपसे क्षेम (कल्याण) कह रही है। श्यामा बायीं ओर सुन्दर पेड़पर दिखायी पड़ी। दही, मछली और दो विद्वान् ब्राह्मण हाथमें पुस्तक लिये हुए सामने आये॥ ४॥

दो०— मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार॥ ३०३॥

सभी मङ्गलमय, कल्याणमय और मनोवाञ्छित फल देनेवाले शकुन मानो सच्चे होनेके लिये एक ही साथ हो गये॥ ३०३॥

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥
राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥

स्वयं सगुण ब्रह्म जिसके सुन्दर पुत्र हैं, उसके लिये सब मङ्गल शकुन सुलभ हैं। जहाँ श्रीरामचन्द्रजी-सरीखे दूल्हा और सीताजी-जैसी दुलहिन हैं तथा दशरथजी और जनकजी-जैसे पवित्र समधी हैं,॥ १॥

सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥

ऐसा ब्याह सुनकर मानो सभी शकुन नाच उठे [और कहने लगे—] अब ब्रह्माजीने हमको सच्चा कर दिया। इस तरह बारातने प्रस्थान किया। घोड़े, हाथी गरज रहे हैं और नगाड़ोंपर चोट लग रही है॥ २॥

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच बीच बर बास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥

सूर्यवंशके पताकास्वरूप दशरथजीको आते हुए जानकर जनकजीने नदियोंपर पुल बँधवा दिये। बीच-बीचमें ठहरनेके लिये सुन्दर घर (पड़ाव) बनवा दिये, जिनमें देवलोकके समान सम्पदा छायी है,॥ ३॥

असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥

और जहाँ बारातके सब लोग अपने-अपने मनकी पसँदके अनुसार सुहावने उत्तम भोजन, बिस्तर और वस्त्र पाते हैं। मनके अनुकूल नित्य नये सुखोंको देखकर सभी बरातियोंको अपने घर भूल गये॥ ४॥

दो०— आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥ ३०४॥

बड़े जोरसे बजते हुए नगाड़ोंकी आवाज सुनकर श्रेष्ठ बारातको आती हुई जानकर अगवानी करनेवाले हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर बारात लेने चले॥ ३०४॥

मासपारायण, दसवाँ विश्राम

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने॥

[दूध, शर्बत, ठंढाई, जल आदिसे] भरकर सोनेके कलश तथा जिनका वर्णन नहीं हो सकता ऐसे अमृतके समान भाँति-भाँतिके सब पकवानोंसे भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकारके सुन्दर बर्तन,॥ १॥

फल अनेक बर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना॥

उत्तम फल तथा और भी अनेकों सुन्दर वस्तुएँ राजाने हर्षित होकर भेंटके लिये भेजीं। गहने, कपड़े, नाना प्रकारकी मूल्यवान् मणियाँ (रत्न), पक्षी, पशु, घोड़े, हाथी और बहुत तरहकी सवारियाँ,॥ २॥

मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥

तथा बहुत प्रकारके सुगन्धित एवं सुहावने मङ्गल-द्रव्य और सगुनके पदार्थ राजाने भेजे। दही, चिउड़ा और अगणित उपहारकी चीजें काँवरोंमें भर-भरकर कहार चले॥ ३॥

अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना॥

अगवानी करनेवालोंको जब बारात दिखायी दी, तब उनके हृदयमें आनन्द छा गया और शरीर रोमाञ्चसे भर गया। अगवानोंको सज-धजके साथ देखकर बरातियोंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये॥ ४॥

दो०— हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥ ३०५॥

[बराती तथा अगवानोंमेंसे] कुछ लोग परस्पर मिलनेके लिये हर्षके मारे बाग छोड़कर (सरपट) दौड़ चले, और ऐसे मिले मानो आनन्दके दो समुद्र मर्यादा छोड़कर मिलते हों॥ ३०५॥

बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभीं बजावहिं॥
बस्तु सकल राखीं नृप आगें। बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें॥

देवसुन्दरियाँ फूल बरसाकर गीत गा रही हैं, और देवता आनन्दित होकर नगाड़े बजा रहे हैं। [अगवानीमें आये हुए] उन लोगोंने सब चीजें दशरथजीके आगे रख दीं और अत्यन्त प्रेमसे विनती की॥ १॥

प्रेम समेत रायँ सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लवाई॥

राजा दशरथजीने प्रेमसहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनकी बख्शीशें होने लगीं और वे याचकोंको दे दी गयीं। तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग उनको जनवासेकी ओर लिवा ले चले॥ २॥

बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा॥

विलक्षण वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धनका अभिमान छोड़ देते हैं। बड़ा सुन्दर जनवासा दिया गया, जहाँ सबको सब प्रकारका सुभीता था॥ ३॥

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥

सीताजीने बारात जनकपुरमें आयी जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी। हृदयमें स्मरणकर सब सिद्धियोंको बुलाया और उन्हें राजा दशरथजीकी मेहमानी करनेके लिये भेजा॥ ४॥

दो०— सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥ ३०६॥

सीताजीकी आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था वहाँ सारी सम्पदा, सुख और इन्द्रपुरीके भोग-विलासको लिये हुए गयीं॥ ३०६॥

निज निज बास बिलोकि बराती। सुरसुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥

बरातियोंने अपने-अपने ठहरनेके स्थान देखे तो वहाँ देवताओंके सब सुखोंको सब प्रकारसे सुलभ पाया। इस ऐश्वर्यका कुछ भी भेद कोई जान न सका। सब जनकजीकी बड़ाई कर रहे हैं॥ १॥

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥
पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदयँ न अति आनंदु अमाई॥

श्रीरघुनाथजी यह सब सीताजीकी महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर हृदयमें हर्षित हुए। पिता दशरथजीके आनेका समाचार सुनकर दोनों भाइयोंके हृदयमें महान् आनन्द समाता न था॥ २॥

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मन माहीं॥
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥

संकोचवश वे गुरु विश्वामित्रजीसे कह नहीं सकते थे; परन्तु मनमें पिताजीके दर्शनोंकी लालसा थी। विश्वामित्रजीने उनकी बड़ी नम्रता देखी, तो उनके हृदयमें बहुत सन्तोष उत्पन्न हुआ॥ ३॥

हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥
चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे॥

प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयोंको हृदयसे लगा लिया। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें (प्रेमाश्रुओंका) जल भर आया। वे उस जनवासेको चले, जहाँ दशरथजी थे। मानो सरोवर प्यासेकी ओर लक्ष्य करके चला हो॥ ४॥

दो०— भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥ ३०७॥

जब राजा दशरथजीने पुत्रोंसहित मुनिको आते देखा, तब वे हर्षित होकर उठे और सुखके समुद्रमें थाह-सी लेते हुए चले॥ ३०७॥

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥

पृथ्वीपति दशरथजीने मुनिकी चरणधूलिको बारंबार सिरपर चढ़ाकर उनको दण्डवत्-प्रणाम किया। विश्वामित्रजीने राजाको उठाकर हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछी॥ १॥

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥
सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥

फिर दोनों भाइयोंको दण्डवत्-प्रणाम करते देखकर राजाके हृदयमें सुख समाया नहीं। पुत्रोंको [उठाकर] हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने [वियोगजनित] दुःसह दुःखको मिटाया। मानो मृतक शरीरको प्राण मिल गये हों॥ २॥

पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥
बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाई। मनभावती असीसें पाईं॥

फिर उन्होंने वसिष्ठजीके चरणोंमें सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठने प्रेमके आनन्दमें उन्हें हृदयसे लगा लिया। दोनों भाइयोंने सब ब्राह्मणोंकी वन्दना की और मनभाये आशीर्वाद पाये॥ ३॥

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥

भरतजीने छोटे भाई शत्रुघ्नसहित श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। श्रीरामजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंको देखकर हर्षित हुए और प्रेमसे परिपूर्ण हुए शरीरसे उनसे मिले॥ ४॥

दो०— पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत॥ ३०८॥

तदनन्तर परम कृपालु और विनयी श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, जातिके लोगों, याचकों, मन्त्रियों और मित्रों—सभीसे यथायोग्य मिले॥ ३०८॥

रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर बारात शीतल हुई (रामके वियोगमें सबके हृदयमें जो आग जल रही थी, वह शान्त हो गयी)। प्रीतिकी रीतिका बखान नहीं हो सकता। राजाके पास चारों पुत्र ऐसी शोभा पा रहे हैं मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किये हुए हों॥ १॥

सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी॥
सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटीं नाचहिं करि गाना॥

पुत्रोंसहित दशरथजीको देखकर नगरके स्त्री-पुरुष बहुत ही प्रसन्न हो रहे हैं। [आकाशमें] देवता फूलोंकी वर्षा करके नगाड़े बजा रहे हैं और अप्सराएँ गा-गाकर नाच रही हैं॥ २॥

सतानंद अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मागि फिरे अगवाना॥

अगवानीमें आये हुए शतानन्दजी, अन्य ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, विद्वान् और भाटोंने बारातसहित राजा दशरथजीका आदर-सत्कार किया। फिर आज्ञा लेकर वे वापस लौटे॥ ३॥

प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई॥
ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं। बढ़हुँ दिवस निसि बिधि सन कहहीं॥

बारात लग्नके दिनसे पहले आ गयी है, इससे जनकपुरमें अधिक आनन्द छा रहा है। सब लोग ब्रह्मानन्द प्राप्त कर रहे हैं और विधातासे मनाकर कहते हैं कि दिन-रात बढ़ जायँ (बड़े हो जायँ)॥ ४॥

दो०— रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज॥ ३०९॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी सुन्दरताकी सीमा हैं और दोनों राजा पुण्यकी सीमा हैं, जहाँ-तहाँ जनकपुरवासी स्त्री-पुरुषोंके समूह इकट्ठे हो-होकर यही कह रहे हैं॥ ३०९॥

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥
इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे। काहुँ न इन्ह समान फल लाधे॥

जनकजीके सुकृत (पुण्य) की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथजीके सुकृत देह

धारण किये हुए श्रीरामजी हैं। इन [दोनों राजाओं] के समान किसीने शिवजीकी आराधना नहीं की; और न इनके समान किसीने फल ही पाये॥ १॥

इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी॥

इनके समान जगत्‌में न कोई हुआ, न कहीं है, न होनेका ही है। हम सब भी सम्पूर्ण पुण्योंकी राशि हैं, जो जगत्‌में जन्म लेकर जनकपुरके निवासी हुए, ॥ २॥

जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी॥
पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥

और जिन्होंने जानकीजी और श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखी है। हमारे-सरीखा विशेष पुण्यात्मा कौन होगा! और अब हम श्रीरघुनाथजीका विवाह देखेंगे और भलीभाँति नेत्रोंका लाभ लेंगे॥ ३॥

कहहिं परसपर कोकिलबयनीं। एहि बिआहँ बड़ लाभु सुनयनीं॥
बड़ें भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई॥

कोयलके समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं कि हे सुन्दर नेत्रोंवाली! इस विवाहमें बड़ा लाभ है। बड़े भाग्यसे विधाताने सब बात बना दी है, ये दोनों भाई हमारे नेत्रोंके अतिथि हुआ करेंगे॥ ४॥

दो०— बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय॥ ३१०॥

जनकजी स्नेहवश बार-बार सीताजीको बुलावेंगे, और करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर दोनों भाई सीताजीको लेने (विदा कराने) आया करेंगे॥ ३१०॥

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥
तब तब राम लखनहि निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी॥

तब उनकी अनेकों प्रकारसे पहुनाई होगी। सखी! ऐसी ससुराल किसे प्यारी न होगी! तब-तब हम सब नगरनिवासी श्रीराम-लक्ष्मणको देख-देखकर सुखी होंगे॥ १॥

सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए॥

हे सखी! जैसा श्रीराम-लक्ष्मणका जोड़ा है, वैसे ही दो कुमार राजाके साथ और भी हैं। वे भी एक श्याम और दूसरे गौर वर्णके हैं, उनके भी सब अङ्ग बहुत सुन्दर हैं। जो लोग उन्हें देख आये हैं, वे सब यही कहते हैं॥ २॥

कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे॥
भरतु रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

एकने कहा—मैंने आज ही उन्हें देखा है; इतने सुन्दर हैं, मानो ब्रह्माजीने उन्हें

अपने हाथों सँवारा है। भरत तो श्रीरामचन्द्रजीकी ही शकल-सूरतके हैं। स्त्री-पुरुष उन्हें सहसा पहचान नहीं सकते॥ ३॥

लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥

लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनोंका एक रूप है। दोनोंके नखसे शिखातक सभी अङ्ग अनुपम हैं। मनको बड़े अच्छे लगते हैं, पर मुखसे उनका वर्णन नहीं हो सकता। उनकी उपमाके योग्य तीनों लोकोंमें कोई नहीं है॥ ४॥

छं०— उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

दास तुलसी कहता है कवि और कोविद (विद्वान्) कहते हैं, इनकी उपमा कहीं कोई नहीं है। बल, विनय, विद्या, शील और शोभाके समुद्र इनके समान ये ही हैं। जनकपुरकी सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाताको यह वचन (विनती) सुनाती हैं कि चारों भाइयोंका विवाह इसी नगरमें हो और हम सब सुन्दर मङ्गल गावें।

सो०— कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥ ३११॥

नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भरकर पुलकित शरीरसे स्त्रियाँ आपसमें कह रही हैं कि हे सखी! दोनों राजा पुण्यके समुद्र हैं, त्रिपुरारि शिवजी सब मनोरथ पूर्ण करेंगे॥ ३११॥

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं॥
जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए॥

इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं और हृदयको उमँग-उमँगकर (उत्साहपूर्वक) आनन्दसे भर रही हैं। सीताजीके स्वयंवरमें जो राजा आये थे, उन्होंने भी चारों भाइयोंको देखकर सुख पाया॥ १॥

कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन गए महिपाला॥
गए बीति कछु दिन एहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥

श्रीरामचन्द्रजीका निर्मल और महान् यश कहते हुए राजा लोग अपने-अपने घर गये। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। जनकपुरनिवासी और बराती सभी बड़े आनन्दित हैं॥ २॥

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥

मङ्गलोंका मूल लगनका दिन आ गया। हेमन्त ऋतु और सुहावना अगहनका

महीना था। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वार श्रेष्ठ थे। लग्न (मुहूर्त) शोधकर ब्रह्माजीने उसपर विचार किया,॥ ३॥

पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता॥

और उस (लग्नपत्रिका) को नारदजीके हाथ [जनकजीके यहाँ] भेज दिया। जनकजीके ज्योतिषियोंने भी वही गणना कर रखी थी। जब सब लोगोंने यह बात सुनी तब वे कहने लगे—यहाँके ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं॥ ४॥

दो०— धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥ ३१२॥

निर्मल और सभी सुन्दर मङ्गलोंकी मूल गोधूलिकी पवित्र वेला आ गयी और अनुकूल शकुन होने लगे, यह जानकर ब्राह्मणोंने जनकजीसे कहा॥ ३१२॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए॥

तब राजा जनकने पुरोहित शतानन्दजीसे कहा कि अब देरका क्या कारण है। तब शतानन्दजीने मन्त्रियोंको बुलाया। वे सब मङ्गलका सामान सजाकर ले आये॥ १॥

संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥

शङ्ख, नगाड़े, ढोल और बहुत-से बाजे बजने लगे तथा मङ्गल-कलश और शुभ शकुनकी वस्तुएँ (दधि, दूर्वा आदि) सजायी गयीं। सुन्दर सुहागिन स्त्रियाँ गीत गा रही हैं और पवित्र ब्राह्मण वेदकी ध्वनि कर रहे हैं॥ २॥

लेन चले सादर एहि भाँती। गए जहाँ जनवास बराती॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥

सब लोग इस प्रकार आदरपूर्वक बारातको लेने चले और जहाँ बरातियोंका जनवासा था, वहाँ गये। अवधपति दशरथजीका समाज (वैभव) देखकर उनको देवराज इन्द्र भी बहुत ही तुच्छ लगने लगे॥ ३॥

भयउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहिं घाऊ॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥

[उन्होंने जाकर विनती की—] समय हो गया, अब पधारिये। यह सुनते ही नगाड़ोंपर चोट पड़ी। गुरु वसिष्ठजीसे पूछकर और कुलकी सब रीतियोंको करके राजा दशरथजी मुनियों और साधुओंके समाजको साथ लेकर चले॥ ४॥

दो०— भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि॥ ३१३॥

अवधनरेश दशरथजीका भाग्य और वैभव देखकर और अपना जन्म व्यर्थ समझकर, ब्रह्माजी आदि देवता हजारों मुखोंसे उसकी सराहना करने लगे॥ ३१३॥

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना॥
सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥

देवगण सुन्दर मङ्गलका अवसर जानकर, नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं। शिवजी, ब्रह्माजी आदि देववृन्द यूथ (टोलियाँ) बना-बनाकर विमानोंपर जा चढ़े॥ १॥

प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥

और प्रेमसे पुलकित-शरीर हो तथा हृदयमें उत्साह भरकर श्रीरामचन्द्रजीका विवाह देखने चले। जनकपुरको देखकर देवता इतने अनुरक्त हो गये कि उन सबको अपने-अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे॥ २॥

चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥

विचित्र मण्डपको तथा नाना प्रकारकी सब अलौकिक रचनाओंको वे चकित होकर देख रहे हैं। नगरके स्त्री-पुरुष रूपके भण्डार, सुघड़, श्रेष्ठ धर्मात्मा, सुशील और सुजान हैं॥ ३॥

तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारीं। भए नखत जनु बिधु उजिआरीं॥
बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥

उन्हें देखकर सब देवता और देवाङ्गनाएँ ऐसे प्रभाहीन हो गये जैसे चन्द्रमाके उजियालेमें तारागण फीके पड़ जाते हैं। ब्रह्माजीको विशेष आश्चर्य हुआ; क्योंकि वहाँ उन्होंने अपनी कोई करनी (रचना) तो कहीं देखी ही नहीं॥ ४॥

दो०— सिवँ समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥ ३१४॥

तब शिवजीने सब देवताओंको समझाया कि तुमलोग आश्चर्यमें मत भूलो। हृदयमें धीरज धरकर विचार तो करो कि यह [भगवान्‌की महामहिमामयी निजशक्ति] श्रीसीताजीका और [अखिल ब्रह्माण्डोंके परम ईश्वर साक्षात् भगवान्] श्रीरामचन्द्रजीका विवाह है॥ ३१४॥

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

जिनका नाम लेते ही जगत्‌में सारे अमङ्गलोंकी जड़ कट जाती है और चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मुट्ठीमें आ जाते हैं, ये वही [जगत्‌के माता-पिता] श्रीसीतारामजी हैं; कामके शत्रु शिवजीने ऐसा कहा॥ १॥

एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगें बर बसह चलावा॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता॥

इस प्रकार शिवजीने देवताओंको समझाया और फिर अपने श्रेष्ठ बैल नन्दीश्वरको आगे बढ़ाया। देवताओंने देखा कि दशरथजी मनमें बड़े ही प्रसन्न और शरीरसे पुलकित हुए चले जा रहे हैं॥ २॥

साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी॥

उनके साथ [परम हर्षयुक्त] साधुओं और ब्राह्मणोंकी मण्डली ऐसी शोभा दे रही है, मानो समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हों। चारों सुन्दर पुत्र साथमें ऐसे सुशोभित हैं, मानो सम्पूर्ण मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) शरीर धारण किये हुए हों॥ ३॥

मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥
पुनि रामहि बिलोकि हियँ हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥

मरकतमणि और सुवर्णके रंगकी सुन्दर जोड़ियोंको देखकर देवताओंको कम प्रीति नहीं हुई (अर्थात् बहुत ही प्रीति हुई)। फिर श्रीरामचन्द्रजीको देखकर वे हृदयमें (अत्यन्त) हर्षित हुए और राजाकी सराहना करके उन्होंने फूल बरसाये॥ ४॥

दो०— राम रूपु नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥ ३१५॥

नखसे शिखातक श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर रूपको बार-बार देखते हुए पार्वतीजी-सहित श्रीशिवजीका शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्र [प्रेमाश्रुओंके] जलसे भर गये॥ ३१५॥

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा। तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा॥
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए। मंगल सब सब भाँति सुहाए॥

रामजीका मोरके कण्ठकी-सी कान्तिवाला [हरिताभ] श्याम शरीर है। बिजलीका अत्यन्त निरादर करनेवाले प्रकाशमय सुन्दर [पीत] रंगके वस्त्र हैं। सब मङ्गलरूप और सब प्रकारसे सुन्दर भाँति-भाँतिके विवाहके आभूषण शरीरपर सजाये हुए हैं॥ १॥

सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन॥
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनहीं मन भाई॥

उनका सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाके समान और [मनोहर] नेत्र नवीन कमलको लजानेवाले हैं। सारी सुन्दरता अलौकिक है। (मायाकी बनी नहीं है, दिव्य सच्चिदानन्दमयी है) वह कही नहीं जा सकती, मन-ही-मन बहुत प्रिय लगती है॥ २॥

बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा॥
राजकुअँर बर बाजि देखावहिं। बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं॥

साथमें मनोहर भाई शोभित हैं, जो चञ्चल घोड़ोंको नचाते हुए चले जा रहे हैं। राजकुमार श्रेष्ठ घोड़ोंको (उनकी चालको) दिखला रहे हैं और वंशकी प्रशंसा करनेवाले (मागध-भाट) विरुदावली सुना रहे हैं॥ ३॥

जेहि तुरंग पर रामु बिराजे। गति बिलोकि खगनायकु लाजे॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेषु जनु काम बनावा॥

जिस घोड़ेपर श्रीरामजी विराजमान हैं, उसकी [तेज] चाल देखकर गरुड़ भी लजा जाते हैं। उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह सब प्रकारसे सुन्दर है। मानो कामदेवने ही घोड़ेका वेष धारण कर लिया हो॥ ४॥

छं०— जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई।
आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

मानो श्रीरामचन्द्रजीके लिये कामदेव घोड़ेका वेष बनाकर अत्यन्त शोभित हो रहा है। वह अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चालसे समस्त लोकोंको मोहित कर रहा है। सुन्दर मोती, मणि और माणिक्य लगी हुई जड़ाऊ जीन ज्योतिसे जगमगा रहा है। उसकी सुन्दर घुँघरू लगी ललित लगामको देखकर देवता, मनुष्य और मुनि सभी ठगे जाते हैं।

दो०— प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव॥ ३१६॥

प्रभुकी इच्छामें अपने मनको लीन किये चलता हुआ वह घोड़ा बड़ी शोभा पा रहा है। मानो तारागण तथा बिजलीसे अलङ्कृत मेघ सुन्दर मोरको नचा रहा हो॥ ३१६॥

जेहिं बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥

जिस श्रेष्ठ घोड़ेपर श्रीरामचन्द्रजी सवार हैं, उसका वर्णन सरस्वतीजी भी नहीं कर सकतीं। शङ्करजी श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्हें अपने पंद्रह नेत्र इस समय बहुत ही प्यारे लगने लगे॥ १॥

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥

भगवान् विष्णुने जब प्रेमसहित श्रीरामको देखा, तब वे [रमणीयताकी मूर्ति] श्रीलक्ष्मीजीके पति श्रीलक्ष्मीजीसहित मोहित हो गये। श्रीरामचन्द्रजीकी शोभा देखकर

ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए, पर अपने आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे॥ २॥

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥

देवताओंके सेनापति स्वामिकार्तिकके हृदयमें बड़ा उत्साह है, क्योंकि वे ब्रह्माजीसे ड्योढ़े अर्थात् बारह नेत्रोंसे रामदर्शनका सुन्दर लाभ उठा रहे हैं। सुजान इन्द्र [अपने हजार नेत्रोंसे] श्रीरामचन्द्रजीको देख रहे हैं और गौतमजीके शापको अपने लिये परम हितकर मान रहे हैं॥ ३॥

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥
मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहुँ हरषु बिसेषी॥

सभी देवता देवराज इन्द्रसे ईर्ष्या कर रहे हैं [और कह रहे हैं] कि आज इन्द्रके समान भाग्यवान् दूसरा कोई नहीं है। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर देवगण प्रसन्न हैं और दोनों राजाओंके समाजमें विशेष हर्ष छा रहा है॥ ४॥

छं०— अति हरषु राजसमाज दुहु दिसि दुंदुभीं बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहीं॥

दोनों ओरसे राजसमाजमें अत्यन्त हर्ष है और बड़े जोरसे नगाड़े बज रहे हैं। देवता प्रसन्न होकर और 'रघुकुलमणि श्रीरामकी जय हो, जय हो, जय हो' कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस प्रकार बारातको आती हुई जानकर बहुत प्रकारके बाजे बजने लगे और रानी सुहागिन स्त्रियोंको बुलाकर परछनके लिये मङ्गलद्रव्य सजाने लगीं।

दो०— सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि॥ ३१७॥

अनेक प्रकारसे आरती सजकर और समस्त मङ्गलद्रव्योंको यथायोग्य सजाकर गजगामिनी (हाथीकी-सी चालवाली) उत्तम स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक परछनके लिये चलीं॥ ३१७॥

बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मदु मोचनि॥
पहिरें बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजें सरीरा॥

सभी स्त्रियाँ चन्द्रमुखी (चन्द्रमाके समान मुखवाली) और सभी मृगलोचनी (हरिणकी-सी आँखोंवाली) हैं और सभी अपने शरीरकी शोभासे रतिके गर्वको छुड़ानेवाली हैं। रंग-रंगकी सुन्दर साड़ियाँ पहने हैं और शरीरपर सब आभूषण सजे हुए हैं॥ १॥

सकल सुमंगल अंग बनाएँ। करहिं गान कलकंठि लजाएँ॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं॥

समस्त अङ्गोंको सुन्दर मङ्गल पदार्थोंसे सजाये हुए वे कोयलको भी लजाती हुई [मधुर स्वरसे] गान कर रही हैं। कंगन, करधनी और नूपुर बज रहे हैं। स्त्रियोंकी चाल देखकर कामदेवके हाथी भी लजा जाते हैं॥ २॥

बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥

अनेक प्रकारके बाजे बज रहे हैं, आकाश और नगर दोनों स्थानोंमें सुन्दर मङ्गलाचार हो रहे हैं। शची (इन्द्राणी), सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और जो स्वभावसे ही पवित्र और सयानी देवाङ्गनाएँ थीं, ॥ ३॥

कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥
करहिं गान कल मंगल बानीं। हरष बिबस सब काहुँ न जानीं॥

वे सब कपटसे सुन्दर स्त्रीका वेष बनाकर रनिवासमें जा मिलीं और मनोहर वाणीसे मङ्गलगान करने लगीं। सब कोई हर्षके विशेष वश थे, अतः किसीने उन्हें पहचाना नहीं॥ ४॥

छं०— को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछन चली।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकल हियँ हरषित भई।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई॥

कौन किसे जाने-पहिचाने! आनन्दके वश हुई सब दूलह बने हुए ब्रह्मका परछन करने चलीं। मनोहर गान हो रहा है। मधुर-मधुर नगाड़े बज रहे हैं, देवता फूल बरसा रहे हैं, बड़ी अच्छी शोभा है। आनन्दकन्द दूलहको देखकर सब स्त्रियाँ हृदयमें हर्षित हुईं। उनके कमल-सरीखे नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल उमड़ आया और सुन्दर अङ्गोंमें पुलकावली छा गयी।

दो०— जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥ ३१८॥

श्रीरामचन्द्रजीका वरवेष देखकर सीताजीकी माता सुनयनाजीके मनमें जो सुख हुआ, उसे हजारों सरस्वती और शेषजी सौ कल्पोंमें भी नहीं कह सकते [अथवा लाखों सरस्वती और शेष लाखों कल्पोंमें भी नहीं कह सकते]॥ ३१८॥

नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥

मङ्गल-अवसर जानकर नेत्रोंके जलको रोके हुए रानी प्रसन्न मनसे परछन कर रही हैं। वेदोंमें कहे हुए तथा कुलाचारके अनुसार सभी व्यवहार रानीने भलीभाँति किये॥ १॥

पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥

पञ्चशब्द (तन्त्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही—इन पाँच प्रकारके बाजोंके शब्द), पञ्चध्वनि (वेदध्वनि, वन्दिध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और हुलूध्वनि) और मङ्गलगान हो रहे हैं। नाना प्रकारके वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने (रानीने) आरती करके अर्घ्य दिया, तब श्रीरामजीने मण्डपमें गमन किया॥ २॥

दसरथु सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे॥
समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥

दशरथजी अपनी मण्डलीसहित विराजमान हुए। उनके वैभवको देखकर लोकपाल भी लजा गये। समय-समयपर देवता फूल बरसाते हैं और भूदेव ब्राह्मण समयानुकूल शान्ति-पाठ करते हैं॥ ३॥

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनइ न कोई॥
एहि बिधि रामु मंडपहिं आए। अरघु देइ आसन बैठाए॥

आकाश और नगरमें शोर मच रहा है। अपनी-परायी कोई कुछ भी नहीं सुनता। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी मण्डपमें आये और अर्घ्य देकर आसनपर बैठाये गये॥ ४॥

छं०— बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं॥

आसनपर बैठाकर, आरती करके दूलहको देखकर स्त्रियाँ सुख पा रही हैं। वे ढेर-के-ढेर मणि, वस्त्र और गहने निछावर करके मङ्गल गा रही हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मणका वेष बनाकर कौतुक देख रहे हैं। वे रघुकुलरूपी कमलके प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखकर अपना जीवन सफल जान रहे हैं।

दो०— नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ॥ ३१९॥

नाई, बारी, भाट और नट श्रीरामचन्द्रजीकी निछावर पाकर आनन्दित हो सिर नवाकर आशिष देते हैं; उनके हृदयमें हर्ष समाता नहीं है॥ ३१९॥

मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं। करि बैदिक लौकिक सब रीतीं॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे॥

वैदिक और लौकिक सब रीतियाँ करके जनकजी और दशरथजी बड़े प्रेमसे मिले। दोनों महाराज मिलते हुए बड़े ही शोभित हुए, कवि उनके लिये उपमा खोज-खोजकर लजा गये॥ १॥

लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥

जब कहीं भी उपमा नहीं मिली, तब हृदयमें हार मानकर उन्होंने मनमें यही उपमा निश्चित की कि इनके समान ये ही हैं। समधियोंका मिलाप या परस्पर सम्बन्ध देखकर देवता अनुरक्त हो गये और फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे॥ २॥

जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥
सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥

[वे कहने लगे—] जबसे ब्रह्माजीने जगत्‌को उत्पन्न किया, तबसे हमने बहुत विवाह देखे-सुने; परन्तु सब प्रकारसे समान साज-समाज और बराबरीके (पूर्ण समतायुक्त) समधी तो आज ही देखे॥ ३॥

देव गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहु दिसि माची॥
देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥

देवताओंकी सुन्दर सत्यवाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छा गयी। सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए जनकजी दशरथजीको आदरपूर्वक मण्डपमें ले आये॥ ४॥

छं०—मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

मण्डपको देखकर उसकी विचित्र रचना और सुन्दरतासे मुनियोंके मन भी हरे गये (मोहित हो गये)। सुजान जनकजीने अपने हाथोंसे ला-लाकर सबके लिये सिंहासन रखे। उन्होंने अपने कुलके इष्टदेवताके समान वसिष्ठजीकी पूजा की और विनय करके आशीर्वाद प्राप्त किया। विश्वामित्रजीकी पूजा करते समयकी परम प्रीतिकी रीति तो कहते ही नहीं बनती।

दो०—बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।
दिए दिब्य आसन सबहि सब सन लही असीस॥ ३२०॥

राजाने वामदेव आदि ऋषियोंकी प्रसन्न मनसे पूजा की। सभीको दिव्य आसन दिये और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया॥ ३२०॥

बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई॥

फिर उन्होंने कोसलाधीश राजा दशरथजीकी पूजा उन्हें ईश (महादेवजी) के समान जानकर की, कोई दूसरा भाव न था। तदनन्तर [उनके सम्बन्धसे] अपने भाग्य और वैभवके विस्तारकी सराहना करके हाथ जोड़कर विनती और बड़ाई की॥ १॥

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥
आसन उचित दिए सब काहू। कहौं काह मुख एक उछाहू॥

राजा जनकजीने सब बरातियोंका समधी दशरथजीके समान ही सब प्रकारसे आदरपूर्वक पूजन किया और सब किसीको उचित आसन दिये। मैं एक मुखसे उस उत्साहका क्या वर्णन करूँ॥ २॥

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥

राजा जनकने दान, मान-सम्मान, विनय और उत्तम वाणीसे सारी बारातका सम्मान किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो श्रीरघुनाथजीका प्रभाव जानते हैं,॥ ३॥

कपट बिप्र बर बेष बनाएँ। कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ॥
पूजे जनक देव सम जानें। दिए सुआसन बिनु पहिचानें॥

वे कपटसे ब्राह्मणोंका सुन्दर वेष बनाये बहुत ही सुख पाते हुए सब लीला देख रहे थे। जनकजीने उनको देवताओंके समान जानकर उनका पूजन किया और बिना पहचाने भी उन्हें सुन्दर आसन दिये॥ ४॥

छं०— पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥

कौन किसको जाने-पहिचाने! सबको अपनी ही सुध भूली हुई है। आनन्दकन्द दूलहको देखकर दोनों ओर आनन्दमयी स्थिति हो रही है। सुजान (सर्वज्ञ) श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंको पहचान लिया और उनकी मानसिक पूजा करके उन्हें मानसिक आसन दिये। प्रभुका शील-स्वभाव देखकर देवगण मनमें बहुत आनन्दित हुए।

दो०— रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥ ३२१॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखरूपी चन्द्रमाकी छबिको सभीके सुन्दर नेत्ररूपी चकोर आदरपूर्वक पान कर रहे हैं; प्रेम और आनन्द कम नहीं है (अर्थात् बहुत है)॥ ३२१॥

समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु सुनि आए॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥

समय देखकर वसिष्ठजीने शतानन्दजीको आदरपूर्वक बुलाया। वे सुनकर आदरके साथ आये। वसिष्ठजीने कहा—अब जाकर राजकुमारीको शीघ्र ले आइये। मुनिकी आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले॥ १॥

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥
बिप्र बधू कुलबृद्ध बोलाईं। करि कुलरीति सुमंगल गाईं॥

बुद्धिमती रानी पुरोहितकी वाणी सुनकर सखियोंसमेत बड़ी प्रसन्न हुईं। ब्राह्मणोंकी स्त्रियों और कुलकी बूढ़ी स्त्रियोंको बुलाकर उन्होंने कुलरीति करके सुन्दर मङ्गलगीत गाये॥ २॥

नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभायँ सुंदरी स्यामा॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारीं। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं॥

श्रेष्ठ देवाङ्गनाएँ, जो सुन्दर मनुष्य-स्त्रियोंके वेषमें हैं, सभी स्वभावसे ही सुन्दरी और श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली) हैं। उनको देखकर रनिवासकी स्त्रियाँ सुख पाती हैं और बिना पहचानके ही वे सबको प्राणोंसे भी प्यारी हो रही हैं॥ ३॥

बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लवाई॥

उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वतीके समान जानकर रानी बार-बार उनका सम्मान करती हैं। [रनिवासकी स्त्रियाँ और सखियाँ] सीताजीका शृंगार करके, मण्डली बनाकर, प्रसन्न होकर उन्हें मण्डपमें लिवा चलीं॥ ४॥

छं०— चलि ल्याइ सीतहि सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजें सुंदरीं सब मत्त कुंजर गामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

सुन्दर मङ्गलका साज सजकर [रनिवासकी] स्त्रियाँ और सखियाँ आदरसहित सीताजीको लिवा चलीं। सभी सुन्दरियाँ सोलहों शृंगार किये हुए मतवाले हाथियोंकी चालसे चलनेवाली हैं। उनके मनोहर गानको सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेवकी कोयलें भी लजा जाती हैं। पायजेब, पैंजनी और सुन्दर कंकण तालकी गतिपर बड़े सुन्दर बज रहे हैं।

दो०— सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥ ३२२॥

सहज ही सुन्दरी सीताजी स्त्रियोंके समूहमें इस प्रकार शोभा पा रही हैं, मानो छबिरूपी ललनाओंके समूहके बीच साक्षात् परम मनोहर शोभारूपी स्त्री सुशोभित हो॥ ३२२॥

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥

सीताजीकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूपकी राशि और सब प्रकारसे पवित्र सीताजीको बरातियोंने आते देखा॥ १॥

सबहि मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥

सभीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृतकृत्य) हो गये। राजा दशरथजी पुत्रोंसहित हर्षित हुए। उनके हृदयमें जितना आनन्द था, वह कहा नहीं जा सकता॥ २॥

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥

देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मङ्गलोंकी मूल मुनियोंके आशीर्वादोंकी ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ोंके शब्दसे बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनन्दमें मग्न हैं॥ ३॥

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥

इस प्रकार सीताजी मण्डपमें आयीं। मुनिराज बहुत ही आनन्दित होकर शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं। उस अवसरकी सब रीति, व्यवहार और कुलाचार दोनों कुलगुरुओंने किये॥ ४॥

छं०— आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥
मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं॥

कुलाचार करके गुरुजी प्रसन्न होकर गौरीजी, गणेशजी और ब्राह्मणोंकी पूजा करा रहे हैं [अथवा ब्राह्मणोंके द्वारा गौरी और गणेशकी पूजा करवा रहे हैं]। देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, आशीर्वाद देते हैं और अत्यन्त सुख पा रहे हैं। मधुपर्क आदि जिस किसी भी माङ्गलिक पदार्थकी मुनि जिस समय भी मनमें चाहमात्र करते हैं, सेवकगण उसी समय सोनेकी परातोंमें और कलशोंमें भरकर उन पदार्थोंको लिये तैयार रहते हैं॥ १॥

कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहुँ न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै॥

स्वयं सूर्यदेव प्रेमसहित अपने कुलकी सब रीतियाँ बता देते हैं और वे सब आदरपूर्वक की जा रही हैं। इस प्रकार देवताओंकी पूजा कराके मुनियोंने सीताजीको सुंदर सिंहासन दिया। श्रीसीताजी और श्रीरामजीका आपसमें एक-दूसरेको देखना तथा

उनका परस्परका प्रेम किसीको लख नहीं पड़ रहा है। जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और वाणीसे भी परे है, उसे कवि क्योंकर प्रकट करे ?॥ २॥

दो०— होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥ ३२३॥

हवनके समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुखसे आहुति ग्रहण करते हैं और सारे वेद ब्राह्मणका वेष धरकर विवाहकी विधियाँ बताये देते हैं॥ ३२३॥

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई॥

जनकजीकी जगद्विख्यात पटरानी और सीताजीकी माताका बखान तो हो ही कैसे सकता है। सुयश, सुकृत (पुण्य), सुख और सुन्दरता सबको बटोरकर विधाताने उन्हें सँवारकर तैयार किया है॥ १॥

समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं। सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥

समय जानकर श्रेष्ठ मुनियोंने उनको बुलवाया। यह सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक ले आयीं। सुनयनाजी (जनकजीकी पटरानी) जनकजीकी बायीं ओर ऐसी सोह रही हैं, मानो हिमाचलके साथ मैनाजी शोभित हों॥ २॥

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥
निज कर मुदित रायँ अरु रानी। धरे राम के आगें आनी॥

पवित्र, सुगन्धित और मङ्गल जलसे भरे सोनेके कलश और मणियोंकी सुन्दर परातें राजा और रानीने आनन्दित होकर अपने हाथोंसे लाकर श्रीरामचन्द्रजीके आगे रखीं॥ ३॥

पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥

मुनि मङ्गलवाणीसे वेद पढ़ रहे हैं। सुअवसर जानकर आकाशसे फूलोंकी झड़ी लग गयी है। दूलहको देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गये और उनके पवित्र चरणोंको पखारने लगे॥ ४॥

छं०— लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं॥

वे श्रीरामजीके चरणकमलोंको पखारने लगे, प्रेमसे उनके शरीरमें पुलकावली छा रही है। आकाश और नगरमें होनेवाली गान, नगाड़े और जय-जयकारकी ध्वनि मानो चारों दिशाओंमें उमड़ चली। जो चरणकमल कामदेवके शत्रु श्रीशिवजीके

हृदयरूपी सरोवरमें सदा ही विराजते हैं, जिनका एक बार भी स्मरण करनेसे मनमें निर्मलता आ जाती है और कलियुगके सारे पाप भाग जाते हैं, ॥ १ ॥

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥

जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनिकी स्त्री अहल्याने, जो पापमयी थी, परमगति पायी, जिन चरणकमलोंका मकरन्दरस (गङ्गाजी) शिवजीके मस्तकपर विराजमान है, जिसको देवता पवित्रताकी सीमा बताते हैं; मुनि और योगीजन अपने मनको भौंरा बनाकर जिन चरणकमलोंका सेवन करके मनोवाञ्छित गति प्राप्त करते हैं; उन्हीं चरणोंको भाग्यके पात्र (बड़भागी) जनकजी धो रहे हैं; यह देखकर सब जय-जयकार कर रहे हैं ॥ २ ॥

बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥

दोनों कुलोंके गुरु वर और कन्याकी हथेलियोंको मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनन्दमें भर गये। सुखके मूल दूलहको देखकर राजा-रानीका शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनन्दसे उमँग उठा। राजाओंके अलङ्कारस्वरूप महाराज जनकजीने लोक और वेदकी रीतिको करके कन्यादान किया ॥ ३ ॥

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरीं।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरीं॥

जैसे हिमवान्‌ने शिवजीको पार्वतीजी और सागरने भगवान् विष्णुको लक्ष्मीजी दी थीं, वैसे ही जनकजीने श्रीरामचन्द्रजीको सीताजी समर्पित कीं, जिससे विश्वमें सुन्दर नवीन कीर्ति छा गयी। विदेह (जनकजी) कैसे विनती करें! उस साँवली मूर्तिने तो उन्हें सचमुच विदेह (देहकी सुध-बुधसे रहित) ही कर दिया। विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गयी और भाँवरें होने लगीं ॥ ४ ॥

दो०— जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥ ३२४॥

जयध्वनि, वन्दीध्वनि, वेदध्वनि, मङ्गलगान और नगाड़ोंकी ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं और कल्पवृक्षके फूलोंको बरसा रहे हैं॥ ३२४॥

कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥

वर और कन्या सुन्दर भाँवरें दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक [उन्हें देखकर] नेत्रोंका परम लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी॥ १॥

राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥

श्रीरामजी और श्रीसीताजीकी सुन्दर परछाहीं मणियोंके खम्भोंमें जगमगा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत-से रूप धारण करके श्रीरामजीके अनुपम विवाहको देख रहे हैं॥ २॥

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥

उन्हें (कामदेव और रतिको) दर्शनकी लालसा और संकोच दोनों ही कम नहीं हैं (अर्थात् बहुत हैं); इसीलिये वे मानो बार-बार प्रकट होते और छिपते हैं। सब देखनेवाले आनन्दमग्न हो गये और जनकजीकी भाँति सभी अपनी सुध भूल गये॥ ३॥

प्रमुदित मुनिन्ह भावँरीं फेरीं। नेगसहित सब रीति निबेरीं॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥

मुनियोंने आनन्दपूर्वक भाँवरें फिरायीं और नेगसहित सब रीतियोंको पूरा किया। श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके सिरमें सिंदूर दे रहे हैं; यह शोभा किसी प्रकार भी कही नहीं जाती॥ ४॥

अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥

मानो कमलको लाल परागसे अच्छी तरह भरकर अमृतके लोभसे साँप चन्द्रमाको भूषित कर रहा है। [यहाँ श्रीरामके हाथको कमलकी, सेंदुरको परागकी, श्रीरामकी श्याम भुजाको साँपकी और सीताजीके मुखको चन्द्रमाकी उपमा दी गयी है] फिर वसिष्ठजीने आज्ञा दी, तब दूलह और दुलहिन एक आसनपर बैठे॥ ५॥

छं०— बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु फल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥

श्रीरामजी और जानकीजी श्रेष्ठ आसनपर बैठे; उन्हें देखकर दशरथजी मनमें बहुत आनन्दित हुए। अपने सुकृतरूपी कल्पवृक्षमें नये फल [आये] देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है। चौदहों भुवनोंमें उत्साह भर गया; सबने कहा कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हो गया। जीभ एक है और यह मङ्गल महान् है; फिर भला, वह वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है!॥ १॥

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥

तब वसिष्ठजीकी आज्ञा पाकर जनकजीने विवाहका सामान सजाकर माण्डवीजी, श्रुतकीर्तिजी और उर्मिलाजी—इन तीनों राजकुमारियोंको बुला लिया। कुशध्वजकी बड़ी कन्या माण्डवीजीको, जो गुण, शील, सुख और शोभाकी रूप ही थीं, राजा जनकने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरतजीको ब्याह दिया॥ २॥

जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥

जानकीजीकी छोटी बहिन उर्मिलाजीको सब सुन्दरियोंमें शिरोमणि जानकर उस कन्याको सब प्रकारसे सम्मान करके, लक्ष्मणजीको ब्याह दिया; और जिनका नाम श्रुतकीर्ति है और जो सुन्दर नेत्रोंवाली, सुन्दर मुखवाली, सब गुणोंकी खान और रूप तथा शीलमें उजागर हैं, उनको राजाने शत्रुघ्नको ब्याह दिया॥ ३॥

अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥
सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

दूलह और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ीको देखकर सकुचते हुए हृदयमें हर्षित हो रही हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुन्दरताकी सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब सुन्दरी दुलहिनें सुन्दर दूल्होंके साथ एक ही मण्डपमें ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो जीवके हृदयमें चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म) सहित विराजमान हों॥ ४॥

दो०— मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥ ३२५॥

सब पुत्रोंको बहुओंसहित देखकर अवधनरेश दशरथजी ऐसे आनन्दित हैं मानो वे राजाओंके शिरोमणि क्रियाओं (यज्ञक्रिया, श्रद्धाक्रिया, योगक्रिया और ज्ञानक्रिया) सहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा गये हों॥ ३२५॥

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी॥

श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी जैसी विधि वर्णन की गयी, उसी रीतिसे सब राजकुमार विवाहे गये। दहेजकी अधिकता कुछ कही नहीं जाती; सारा मंडप सोने और मणियोंसे भर गया॥ १॥

कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी॥

बहुत-से कम्बल, वस्त्र और भाँति-भाँतिके विचित्र रेशमी कपड़े, जो थोड़ी कीमतके न थे (अर्थात् बहुमूल्य थे) तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियाँ और गहनोंसे सजी हुई कामधेनु-सरीखी गायें— ॥ २॥

बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने॥

[आदि] अनेकों वस्तुएँ हैं, जिनकी गिनती कैसे की जाय। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिन्होंने देखा है वही जानते हैं। उन्हें देखकर लोकपाल भी सिहा गये। अवधराज दशरथजीने सुख मानकर प्रसन्नचित्तसे सब कुछ ग्रहण किया॥ ३॥

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥

उन्होंने वह दहेजका सामान याचकोंको, जो जिसे अच्छा लगा, दे दिया। जो बच रहा, वह जनवासेमें चला आया। तब जनकजी हाथ जोड़कर सारी बारातका सम्मान करते हुए कोमल वाणीसे बोले॥ ४॥

छं०— सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥
सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ।
सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ॥

आदर, दान, विनय और बड़ाईके द्वारा सारी बारातका सम्मान कर राजा जनकने महान् आनन्दके साथ प्रेमपूर्वक लड़ाकर (लाड़ करके) मुनियोंके समूहकी पूजा एवं वन्दना की। सिर नवाकर, देवताओंको मनाकर, राजा हाथ जोड़कर सबसे कहने

लगे कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं (वे प्रेमसे ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महानुभावोंको कोई कुछ देकर कैसे सन्तुष्ट कर सकता है); क्या एक अञ्जलि जल देनेसे कहीं समुद्र सन्तुष्ट हो सकता है॥ १॥

कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥

फिर जनकजी भाईसहित हाथ जोड़कर कोसलाधीश दशरथजीसे स्नेह, शील और सुन्दर प्रेममें सानकर मनोहर वचन बोले—हे राजन्! आपके साथ सम्बन्ध हो जानेसे अब हम सब प्रकारसे बड़े हो गये। इस राज-पाटसहित हम दोनोंको आप बिना दामके लिये हुए सेवक ही समझियेगा॥ २॥

ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥

इन लड़कियोंको टहलनी मानकर, नयी-नयी दया करके पालन कीजियेगा। मैंने बड़ी ढिठाई की कि आपको यहाँ बुला भेजा, अपराध क्षमा कीजियेगा। फिर सूर्यकुलके भूषण दशरथजीने समधी जनकजीको सम्पूर्ण सम्मानका निधि कर दिया (इतना सम्मान किया कि वे सम्मानके भण्डार ही हो गये)। उनकी परस्परकी विनय कही नहीं जाती, दोनोंके हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हैं॥ ३॥

बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

देवतागण फूल बरसा रहे हैं; राजा जनवासेको चले। नगाड़ेकी ध्वनि, जयध्वनि और वेदकी ध्वनि हो रही है; आकाश और नगर दोनोंमें खूब कौतूहल हो रहा है (आनन्द छा रहा है), तब मुनीश्वरकी आज्ञा पाकर सुन्दरी सखियाँ मङ्गलगान करती हुई दुलहिनोंसहित दूल्होंको लिवाकर कोहबरको चलीं॥ ४॥

दो०— पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन॥ ३२६॥

सीताजी बार-बार रामजीको देखती हैं और सकुचा जाती हैं; पर उनका मन

नहीं सकुचाता। प्रेमके प्यासे उनके नेत्र सुन्दर मछलियोंकी छबिको हर रहे हैं॥ ३२६॥

मासपारायण, ग्यारहवाँ विश्राम

स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥

श्रीरामचन्द्रजीका साँवला शरीर स्वभावसे ही सुन्दर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाली है। महावरसे युक्त चरणकमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिनपर मुनियोंके मनरूपी भौंरे सदा छाये रहते हैं॥ १॥

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥

पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रातःकालके सूर्य और बिजलीकी ज्योतिको हरे लेती है। कमरमें सुन्दर किंकिणी और कटिसूत्र हैं। विशाल भुजाओंमें सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं॥ २॥

पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे॥

पीला जनेऊ महान् शोभा दे रहा है। हाथकी अँगूठी चित्तको चुरा लेती है। ब्याहके सब साज सजे हुए वे शोभा पा रहे हैं। चौड़ी छातीपर हृदयपर पहननेके सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं॥ ३॥

पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥

पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊकी तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरोंपर मणि और मोती लगे हैं। कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं, कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं और मुख तो सारी सुन्दरताका खजाना ही है॥ ४॥

सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे॥

सुन्दर भौंहें और मनोहर नासिका है। ललाटपर तिलक तो सुन्दरताका घर ही है। जिसमें मङ्गलमय मोती और मणि गुँथे हुए हैं, ऐसा मनोहर मौर माथेपर सोह रहा है॥ ५॥

छं०— गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर नारि सुर सुंदरीं बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं॥
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं॥

सुन्दर मौरमें बहुमूल्य मणियाँ गुँथी हुई हैं, सभी अङ्ग चित्तको चुराये लेते हैं।

सब नगरकी स्त्रियाँ और देवसुन्दरियाँ दूलहको देखकर तिनका तोड़ रही हैं (उनकी बलैयाँ ले रही हैं) और मणि, वस्त्र तथा आभूषण निछावर करके आरती उतार रही और मङ्गलगान कर रही हैं। देवता फूल बरसा रहे हैं और सूत, मागध तथा भाट सुयश सुना रहे हैं॥ १॥

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥

सुहागिनी स्त्रियाँ सुख पाकर कुँअर और कुमारियोंको कोहबर (कुलदेवताके स्थान) में लायीं और अत्यन्त प्रेमसे मङ्गलगीत गा-गाकर लौकिक रीति करने लगीं। पार्वतीजी श्रीरामचन्द्रजीको लहकौर (वर-वधूका परस्पर ग्रास देना) सिखाती हैं और सरस्वतीजी सीताजीको सिखाती हैं। रनिवास हास-विलासके आनन्दमें मग्न है, [श्रीरामजी और सीताजीको देख-देखकर] सभी जन्मका परम फल प्राप्त कर रही हैं॥ २॥

निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।
बर कुअँरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं॥

अपने हाथकी मणियोंमें सुन्दर रूपके भण्डार श्रीरामचन्द्रजीकी परछाहीं दीख रही है। यह देखकर जानकीजी दर्शनमें वियोग होनेके भयसे बाहुरूपी लताको और दृष्टिको हिलाती-डुलाती नहीं हैं। उस समयके हँसी-खेल और विनोदका आनन्द और प्रेम कहा नहीं जा सकता, उसे सखियाँ ही जानती हैं। तदनन्तर वर-कन्याओंको सब सुन्दर सखियाँ जनवासेको लिवा चलीं॥ ३॥

तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँदु महा।
चिरु जिअहुँ जोरीं चारु चार्‌यो मुदित मन सबहीं कहा॥
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी॥

उस समय नगर और आकाशमें जहाँ सुनिये, वहीं आशीर्वादकी ध्वनि सुनायी दे रही है और महान् आनन्द छाया है। सभीने प्रसन्न मनसे कहा कि सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी हों। योगिराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखकर दुन्दुभी बजायी और हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा करते हुए तथा 'जय हो, जय हो,जय हो' कहते हुए वे अपने-अपने लोकको चले॥ ४॥

दो०— सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास॥ ३२७॥

तब सब (चारों) कुमार बहुओंसहित पिताजीके पास आये। ऐसा मालूम होता था मानो शोभा, मङ्गल और आनन्दसे भरकर जनवासा उमड़ पड़ा हो॥ ३२७॥

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥

फिर बहुत प्रकारकी रसोई बनी। जनकजीने बरातियोंको बुला भेजा। राजा दशरथजीने पुत्रोंसहित गमन किया। अनुपम वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ते जाते हैं॥ १॥

सादर सब के पाय पखारे। जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे॥
धोए जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥

आदरके साथ सबके चरण धोये और सबको यथायोग्य पीढ़ोंपर बैठाया। तब जनकजीने अवधपति दशरथजीके चरण धोये। उनका शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥ २॥

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको धोया, जो श्रीशिवजीके हृदय-कमलमें छिपे रहते हैं। तीनों भाइयोंको श्रीरामचन्द्रजीके ही समान जानकर जनकजीने उनके भी चरण अपने हाथोंसे धोये॥ ३॥

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे॥

राजा जनकजीने सभीको उचित आसन दिये और सब परसनेवालोंको बुला लिया। आदरके साथ पत्तलें पड़ने लगीं, जो मणियोंके पत्तोंसे सोनेकी कील लगाकर बनायी गयी थीं॥ ४॥

दो०— सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सब कें परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥ ३२८॥

चतुर और विनीत रसोइये सुन्दर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात और गायका [सुगन्धित] घी क्षणभरमें सबके सामने परस गये॥ ३२८॥

पंच कवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥

सब लोग पंचकौर करके (अर्थात् 'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा' इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पहले पाँच ग्रास लेकर) भोजन करने लगे। गालीका गाना सुनकर वे अत्यन्त प्रेममग्न

हो गये। अनेकों तरहके अमृतके समान (स्वादिष्ट) पकवान परसे गये, जिनका बखान नहीं हो सकता॥ १॥

परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना॥
चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥

चतुर रसोइये नाना प्रकारके व्यञ्जन परसने लगे, उनका नाम कौन जानता है। चार प्रकारके (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय अर्थात् चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीकर खानेयोग्य) भोजनकी विधि कही गयी है, उनमेंसे एक-एक विधिके इतने पदार्थ बने थे कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ २॥

छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥
जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥

छहों रसोंके बहुत तरहके सुन्दर (स्वादिष्ट) व्यञ्जन हैं। एक-एक रसके अनगिनती प्रकारके बने हैं। भोजन करते समय पुरुष और स्त्रियोंके नाम ले-लेकर स्त्रियाँ मधुर ध्वनिसे गाली दे रही हैं (गाली गा रही हैं)॥ ३॥

समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥
एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥

समयकी सुहावनी गाली शोभित हो रही है। उसे सुनकर समाजसहित राजा दशरथजी हँस रहे हैं। इस रीतिसे सभीने भोजन किया और तब सबको आदरसहित आचमन (हाथ-मुँह धोनेके लिये जल) दिया गया॥ ४॥

दो०— देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज॥ ३२९॥

फिर पान देकर जनकजीने समाजसहित दशरथजीका पूजन किया। सब राजाओंके सिरमौर (चक्रवर्ती) श्रीदशरथजी प्रसन्न होकर जनवासेको चले॥ ३२९॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे॥

जनकपुरमें नित्य नये मङ्गल हो रहे हैं। दिन और रात पलके समान बीत जाते हैं। बड़े सबेरे राजाओंके मुकुटमणि दशरथजी जागे। याचक उनके गुणसमूहका गान करने लगे॥ १॥

देखि कुअँर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाहीं। महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥

चारों कुमारोंको सुन्दर वधुओंसहित देखकर उनके मनमें जितना आनन्द है, वह किस प्रकार कहा जा सकता है? वे प्रातःक्रिया करके गुरु वसिष्ठजीके पास गये। उनके मनमें महान् आनन्द और प्रेम भरा है॥ २॥

करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअँ जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा। भयउँ आजु मैं पूरन काजा॥

राजा प्रणाम और पूजन करके, फिर हाथ जोड़कर मानो अमृतमें डुबोयी हुई वाणी बोले—हे मुनिराज! सुनिये, आपकी कृपासे आज मैं पूर्णकाम हो गया॥ ३॥

अब सब बिप्र बोलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाईं॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनिबृंद बोलाई॥

हे स्वामिन्! अब सब ब्राह्मणोंको बुलाकर उनको सब तरह [गहनों-कपड़ों] से सजी हुई गायें दीजिये। यह सुनकर गुरुजीने राजाकी बड़ाई करके फिर मुनिगणोंको बुलवा भेजा॥ ४॥

दो०— बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥ ३३०॥

तब वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियोंके समूह-के-समूह आये॥ ३३०॥

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मगाईं। काम सुरभि सम सील सुहाईं॥

राजाने सबको दण्डवत्-प्रणाम किया और प्रेमसहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिये। चार लाख उत्तम गायें मँगवायीं, जो कामधेनुके समान अच्छे स्वभाववाली और सुहावनी थीं॥ १॥

सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥
करत बिनय बहु बिधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥

उन सबको सब प्रकारसे [गहनों-कपड़ोंसे] सजाकर राजाने प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणोंको दिया। राजा बहुत तरहसे विनती कर रहे हैं कि जगत्‌में मैंने आज ही जीनेका लाभ पाया॥ २॥

पाइ असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा॥
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रुचि रबिकुलनंदन॥

[ब्राह्मणोंसे] आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। फिर याचकोंके समूहोंको बुलवा लिया और सबको उनकी रुचि पूछकर सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ (जिसने जो चाहा सो) सूर्यकुलको आनन्दित करनेवाले दशरथजीने दिये॥ ३॥

चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥
एहि बिधि राम बिआह उछाहू। सकइ न बरनि सहस मुख जाहू॥

वे सब गुणानुवाद गाते और 'सूर्यकुलके स्वामीकी जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए चले। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका उत्सव हुआ। जिन्हें सहस्र

मुख हैं वे शेषजी भी उसका वर्णन नहीं कर सकते॥ ४॥

दो०— बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ॥ ३३१॥

बार-बार विश्वामित्रजीके चरणोंमें सिर नवाकर राजा कहते हैं—हे मुनिराज! यह सब सुख आपके ही कृपाकटाक्षका प्रसाद है॥ ३३१॥

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृपु सब भाँति सराह बिभूती॥
दिन उठि बिदा अवधपति मागा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥

राजा दशरथजी जनकजीके स्नेह, शील, करनी और ऐश्वर्यकी सब प्रकारसे सराहना करते हैं। प्रतिदिन [सबेरे] उठकर अयोध्यानरेश विदा माँगते हैं। पर जनकजी उन्हें प्रेमसे रख लेते हैं॥ १॥

नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर अनंद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू॥

आदर नित्य नया बढ़ता जाता है। प्रतिदिन हजारों प्रकारसे मेहमानी होती है। नगरमें नित्य नया आनन्द और उत्साह रहता है, दशरथजीका जाना किसीको नहीं सुहाता॥ २॥

बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥
कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥

इस प्रकार बहुत दिन बीत गये, मानो बराती स्नेहकी रस्सीसे बँध गये हैं। तब विश्वामित्रजी और शतानन्दजीने जाकर राजा जनकको समझाकर कहा—॥ ३॥

अब दसरथ कहँ आयसु देहू। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥

यद्यपि आप स्नेह [वश उन्हें] नहीं छोड़ सकते, तो भी अब दशरथजीको आज्ञा दीजिये। 'हे नाथ! बहुत अच्छा' कहकर जनकजीने मन्त्रियोंको बुलवाया। वे आये और 'जय जीव' कहकर उन्होंने मस्तक नवाया॥ ४॥

दो०— अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥ ३३२॥

[जनकजीने कहा—] अयोध्यानाथ चलना चाहते हैं, भीतर (रनिवासमें) खबर कर दो। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा जनक भी प्रेमके वश हो गये॥ ३३२॥

पुरबासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परस्पर बाता॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥

जनकपुरवासियोंने सुना कि बारात जायगी, तब वे व्याकुल होकर एक-दूसरेसे बात पूछने लगे। जाना सत्य है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गये मानो सन्ध्याके समय कमल सकुचा गये हों॥ १॥

जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना॥

आते समय जहाँ-जहाँ बराती ठहरे थे, वहाँ-वहाँ बहुत प्रकारका सीधा (रसोईका सामान) भेजा गया। अनेकों प्रकारके मेवे, पकवान और भोजनकी सामग्री जो बखानी नहीं जा सकती—॥ २॥

भरि भरि बसहँ अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा॥

अनगिनत बैलों और कहारोंपर भर-भरकर (लाद-लादकर) भेजी गयी। साथ ही जनकजीने अनेकों सुन्दर शय्याएँ (पलँग) भेजीं। एक लाख घोड़े और पचीस हजार रथ सब नखसे शिखातक (ऊपरसे नीचेतक) सजाये हुए, ॥ ३॥

मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना॥

दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओंके हाथी भी लजा जाते हैं, गाड़ियोंमें भर-भरकर सोना, वस्त्र और रत्न (जवाहिरात) और भैंस, गाय तथा और भी नाना प्रकारकी चीजें दीं॥ ४॥

दो०— दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि॥ ३३३॥

[इस प्रकार] जनकजीने फिरसे अपरिमित दहेज दिया, जो कहा नहीं जा सकता और जिसे देखकर लोकपालोंके लोकोंकी सम्पदा भी थोड़ी जान पड़ती थी॥ ३३३॥

सबु समाजु एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥
चलिहि बरात सुनत सब रानीं। बिकल मीनगन जनु लघु पानीं॥

इस प्रकार सब सामान सजाकर राजा जनकने अयोध्यापुरीको भेज दिया। बारात चलेगी, यह सुनते ही सब रानियाँ ऐसी विकल हो गयीं, मानो थोड़े जलमें मछलियाँ छटपटा रही हों॥ १॥

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं॥
होएहु संतत पियहि पिआरी। चिरु अहिबात असीस हमारी॥

वे बार-बार सीताजीको गोद कर लेती हैं और आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं—तुम सदा अपने पतिकी प्यारी होओ, तुम्हारा सोहाग अचल हो; हमारी यही आशिष है॥ २॥

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखीं सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी॥

सास, ससुर और गुरुकी सेवा करना। पतिका रुख देखकर उनकी आज्ञाका पालन करना। सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेहके वश कोमल वाणीसे स्त्रियोंके धर्म सिखलाती हैं॥ ३॥

सादर सकल कुअँरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाईं॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारीं॥

आदरके साथ सब पुत्रियोंको [स्त्रियोंके धर्म] समझाकर रानियोंने बार-बार उन्हें हृदयसे लगाया। माताएँ फिर-फिर भेंटती और कहती हैं कि ब्रह्माने स्त्रीजातिको क्यों रचा॥ ४॥

दो०— तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानु कुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥ ३३४॥

उसी समय सूर्यवंशके पताकास्वरूप श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंसहित प्रसन्न होकर विदा करानेके लिये जनकजीके महलको चले॥ ३३४॥

चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥
कोउ कह चलन चहत हहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू॥

स्वभावसे ही सुन्दर चारों भाइयोंको देखनेके लिये नगरके स्त्री-पुरुष दौड़े। कोई कहता है—आज ये जाना चाहते हैं। विदेहने विदाईका सब सामान तैयार कर लिया है॥ १॥

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥
को जानै केहिं सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी॥

राजाके चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानोंके [मनोहर] रूपको नेत्र भरकर देख लो। हे सयानी! कौन जाने, किस पुण्यसे विधाताने इन्हें यहाँ लाकर हमारे नेत्रोंका अतिथि किया है॥ २॥

मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥
पाव नारकी हरिपदु जैसें। इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसें॥

मरनेवाला जिस तरह अमृत पा जाय, जन्मका भूखा कल्पवृक्ष पा जाय और नरकमें रहनेवाला (या नरकके योग्य) जीव जैसे भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हो जाय, हमारे लिये इनके दर्शन वैसे ही हैं॥ ३॥

निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू॥
एहि बिधि सबहि नयन फलु देता। गए कुअँर सब राज निकेता॥

श्रीरामचन्द्रजीकी शोभाको निरखकर हृदयमें धर लो। अपने मनको साँप और इनकी मूर्तिको मणि बना लो। इस प्रकार सबको नेत्रोंका फल देते हुए सब राजकुमार राजमहलमें गये॥ ४॥

दो०— रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु॥ ३३५॥

रूपके समुद्र सब भाइयोंको देखकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। सासुएँ महान् प्रसन्न मनसे निछावर और आरती करती हैं॥ ३३५॥

देखि राम छबि अति अनुरागीं। प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥

श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखकर वे प्रेममें अत्यन्त मग्न हो गयीं और प्रेमके विशेष वश होकर बार-बार चरणों लगीं। हृदयमें प्रीति छा गयी, इससे लज्जा नहीं रह गयी। उनके स्वाभाविक स्नेहका वर्णन किस तरह किया जा सकता है॥ १॥

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेवाँए॥
बोले रामु सुअवसरु जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥

उन्होंने भाइयोंसहित श्रीरामजीको उबटन करके स्नान कराया और बड़े प्रेमसे षट्‌रस भोजन कराया। सुअवसर जानकर श्रीरामचन्द्रजी शील, स्नेह और संकोचभरी वाणी बोले— ॥ २॥

राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए॥
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥

महाराज अयोध्यापुरीको चलना चाहते हैं, उन्होंने हमें विदा होनेके लिये यहाँ भेजा है। हे माता! प्रसन्न मनसे आज्ञा दीजिये और हमें अपने बालक जानकर सदा स्नेह बनाये रखियेगा॥ ३॥

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥
हृदयँ लगाइ कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही॥

इन वचनोंको सुनते ही रनिवास उदास हो गया। सासुएँ प्रेमवश बोल नहीं सकतीं। उन्होंने सब कुमारियोंको हृदयसे लगा लिया और उनके पतियोंको सौंपकर बहुत विनती की॥ ४॥

छं०— करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥

विनती करके उन्होंने सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहा—हे तात! हे सुजान! मैं बलि जाती हूँ, तुमको सबकी गति (हाल) मालूम है। परिवारको, पुरवासियोंको, मुझको और राजाको सीता प्राणोंके समान प्रिय है, ऐसा जानियेगा। हे तुलसीके स्वामी! इसके शील और स्नेहको देखकर इसे अपनी दासी करके मानियेगा।

सो०— तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन॥ ३३६॥

तुम पूर्णकाम हो, सुजानशिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें प्रेम प्यारा है)। हे राम! तुम भक्तोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाले, दोषोंको नाश करनेवाले और दयाके धाम हो॥ ३३६॥

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी॥
सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुबिधि राम सासु सनमानी॥

ऐसा कहकर रानी चरणोंको पकड़कर [चुप] रह गयीं। मानो उनकी वाणी प्रेमरूपी दलदलमें समा गयी हो। स्नेहसे सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सासका बहुत प्रकारसे सम्मान किया॥ १॥

राम बिदा मागत कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बार-बार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर और फिर सिर नवाकर भाइयोंसहित श्रीरघुनाथजी चले॥ २॥

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी॥
पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारीं। बार बार भेटहिं महतारीं॥

श्रीरामजीकी सुन्दर मधुर मूर्तिको हृदयमें लाकर सब रानियाँ स्नेहसे शिथिल हो गयीं। फिर धीरज धारण करके कुमारियोंको बुलाकर माताएँ बारंबार उन्हें [गले लगाकर] भेंटने लगीं॥ ३॥

पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥

पुत्रियोंको पहुँचाती हैं, फिर लौटकर मिलती हैं। परस्परमें कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बढ़ी (अर्थात् बहुत प्रीति बढ़ी)। बार-बार मिलती हुई माताओंको सखियोंने अलग कर दिया। जैसे हालकी ब्यायी हुई गायको कोई उसके बालक बछड़े [या बछिया] से अलग कर दे॥ ४॥

दो०— प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु॥ ३३७॥

सब स्त्री-पुरुष और सखियोंसहित सारा रनिवास प्रेमके विशेष वश हो रहा है। [ऐसा लगता है] मानो जनकपुरमें करुणा और विरहने डेरा डाल दिया है॥ ३३७॥

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥

जानकीने जिन तोता और मैनाको पाल-पोसकर बड़ा किया था और सोनेके पिंजड़ोंमें रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कह रहे हैं—वैदेही कहाँ हैं। उनके ऐसे वचनोंको सुनकर धीरज किसको नहीं त्याग देगा (अर्थात् सबका धैर्य जाता रहा)॥ १॥

भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती॥
बंधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए॥

जब पक्षी और पशुतक इस तरह विकल हो गये, तब मनुष्योंकी दशा कैसे

कही जा सकती है! तब भाईसहित जनकजी वहाँ आये। प्रेमसे उमड़कर उनके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया॥ २॥

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥

वे परम वैराग्यवान् कहलाते थे; पर सीताजीको देखकर उनका भी धीरज भाग गया। राजाने जानकीजीको हृदयसे लगा लिया। [प्रेमके प्रभावसे] ज्ञानकी महान् मर्यादा मिट गयी (ज्ञानका बाँध टूट गया)॥ ३॥

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु न अवसर जाने॥
बारहिं बार सुता उर लाईं। सजि सुंदर पालकीं मगाईं॥

सब बुद्धिमान् मन्त्री उन्हें समझाते हैं। तब राजाने विषाद करनेका समय न जानकर विचार किया। बारंबार पुत्रियोंको हृदयसे लगाकर सुन्दर सजी हुई पालकियाँ मँगवायी॥ ४॥

दो०— प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस॥ ३३८॥

सारा परिवार प्रेममें विवश है। राजाने सुन्दर मुहूर्त जानकर सिद्धिसहित गणेशजीका स्मरण करके कन्याओंको पालकियोंपर चढ़ाया॥ ३३८॥

बहुबिधि भूप सुता समुझाईं। नारिधरमु कुलरीति सिखाईं॥
दासीं दास दिए बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे॥

राजाने पुत्रियोंको बहुत प्रकारसे समझाया और उन्हें स्त्रियोंका धर्म और कुलकी रीति सिखायी। बहुत-से दासी-दास दिये, जो सीताजीके प्रिय और विश्वासपात्र सेवक थे॥ १॥

सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा॥

सीताजीके चलते समय जनकपुरवासी व्याकुल हो गये। मङ्गलकी राशि शुभ शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण और मन्त्रियोंके समाजसहित राजा जनकजी उन्हें पहुँचानेके लिये साथ चले॥ २॥

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे॥

समय देखकर बाजे बजने लगे। बरातियोंने रथ, हाथी और घोड़े सजाये। दशरथजीने सब ब्राह्मणोंको बुला लिया और उन्हें दान और सम्मानसे परिपूर्ण कर दिया॥ ३॥

चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भए नाना॥

उनके चरणकमलोंकी धूलि सिरपर धरकर और आशिष पाकर राजा आनन्दित

हुए और गणेशजीका स्मरण करके उन्होंने प्रस्थान किया। मङ्गलोंके मूल अनेकों शकुन हुए॥ ४॥

दो०— सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान॥ ३३९॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही हैं। अवधपति दशरथजी नगाड़े बजाकर आनन्दपूर्वक अयोध्यापुरीको चले॥ ३३९॥

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे॥

राजा दशरथजीने विनती करके प्रतिष्ठित जनोंको लौटाया और आदरके साथ सब मंगनोंको बुलवाया। उनको गहने-कपड़े, घोड़े-हाथी दिये और प्रेमसे पुष्ट करके सबको सम्पन्न अर्थात् बलयुक्त कर दिया॥ १॥

बार बार बिरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेमबस फिरै न चहहीं॥

वे सब बारंबार विरुदावली (कुलकीर्ति) बखानकर और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर लौटे। कोसलाधीश दशरथजी बार-बार लौटनेको कहते हैं, परन्तु जनकजी प्रेमवश लौटना नहीं चाहते॥ २॥

पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए॥
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥

दशरथजीने फिर सुहावने वचन कहे—हे राजन्! बहुत दूर आ गये, अब लौटिये। फिर राजा दशरथजी रथसे उतरकर खड़े हो गये। उनके नेत्रोंमें प्रेमका प्रवाह बढ़ आया (प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली)॥ ३॥

तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधाँ जनु बोरी॥
करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥

तब जनकजी हाथ जोड़कर मानो स्नेहरूपी अमृतमें डुबोकर वचन बोले—मैं किस तरह बनाकर (किन शब्दोंमें) विनती करूँ। हे महाराज! आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी है॥ ४॥

दो०— कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ समाति॥ ३४०॥

अयोध्यानाथ दशरथजीने अपने स्वजन समधीका सब प्रकारसे सम्मान किया। उनके आपसके मिलनेमें अत्यन्त विनय थी और इतनी प्रीति थी जो हृदयमें समाती न थी॥ ३४०॥

मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप सील गुन निधि सब भ्राता॥

जनकजीने मुनिमण्डलीको सिर नवाया और सभीसे आशीर्वाद पाया। फिर आदरके

साथ वे रूप, शील और गुणोंके निधान सब भाइयोंसे—अपने दामादोंसे मिले;॥ १॥

जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए॥
राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥

और सुन्दर कमलके समान हाथोंको जोड़कर ऐसे वचन बोले जो मानो प्रेमसे ही जन्मे हों। हे रामजी! मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ! आप मुनियों और महादेवजीके मनरूपी मानसरोवरके हंस हैं॥ २॥

करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥

योगी लोग जिनके लिये क्रोध, मोह, ममता और मदको त्यागकर योगसाधन करते हैं, जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणोंकी राशि हैं,॥ ३॥

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥

जिनको मनसहित वाणी नहीं जानती और सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोई तर्कना नहीं कर सकते; जिनकी महिमाको वेद 'नेति' कहकर वर्णन करता है और जो [सच्चिदानन्द] तीनों कालोंमें एकरस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं;॥ ४॥

दो०— नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल॥ ३४१॥

वे ही समस्त सुखोंके मूल [आप] मेरे नेत्रोंके विषय हुए। ईश्वरके अनुकूल होनेपर जगत्‌में जीवको सब लाभ-ही-लाभ है॥ ३४१॥

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥

आपने मुझे सभी प्रकारसे बड़ाई दी और अपना जन जानकर अपना लिया। यदि दस हजार सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पोंतक गणना करते रहें॥ १॥

मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें॥

तो भी हे रघुनाथजी! सुनिये, मेरे सौभाग्य और आपके गुणोंकी कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बलपर कि आप अत्यन्त थोड़े प्रेमसे प्रसन्न हो जाते हैं॥ २॥

बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम रामु परितोषे॥

मैं बार-बार हाथ जोड़कर यह माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके

चरणोंको न छोड़े। जनकजीके श्रेष्ठ वचनोंको सुनकर, जो मानो प्रेमसे पुष्ट किये हुए थे, पूर्णकाम श्रीरामचन्द्रजी सन्तुष्ट हुए॥ ३॥

करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने॥
बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेमु पुनि आसिष दीन्ही॥

उन्होंने सुन्दर विनती करके पिता दशरथजी, गुरु विश्वामित्रजी और कुलगुरु वसिष्ठजीके समान जानकर ससुर जनकजीका सम्मान किया। फिर जनकजीने भरतजीसे विनती की और प्रेमके साथ मिलकर फिर उन्हें आशीर्वाद दिया॥ ४॥

दो०— मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस॥ ३४२॥

फिर राजाने लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजीसे मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया। वे परस्पर प्रेमके वश होकर बार-बार आपसमें सिर नवाने लगे॥ ३४२॥

बार बार करि बिनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्ह लाई॥

जनकजीकी बार-बार विनती और बड़ाई करके श्रीरघुनाथजी सब भाइयोंके साथ चले। जनकजीने जाकर विश्वामित्रजीके चरण पकड़ लिये और उनके चरणोंकी रजको सिर और नेत्रोंमें लगाया॥ १॥

सुनु मुनीस बर दरसन तोरें। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें॥
जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥

[उन्होंने कहा—] हे मुनीश्वर! सुनिये, आपके सुन्दर दर्शनसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मनमें ऐसा विश्वास है। जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं; परन्तु [असम्भव समझकर] जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं, ॥ २॥

सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥

हे स्वामी! वही सुख और सुयश मुझे सुलभ हो गया; सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनोंकी अनुगामिनी अर्थात् पीछे-पीछे चलनेवाली हैं। इस प्रकार बार-बार विनती की और सिर नवाकर तथा उनसे आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौटे॥ ३॥

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥

डंका बजाकर बारात चली। छोटे-बड़े सभी समुदाय प्रसन्न हैं [रास्तेके] गाँवोंके स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजीको देखकर नेत्रोंका फल पाकर सुखी होते हैं॥ ४॥

दो०— बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥ ३४३॥

बीच-बीचमें सुन्दर मुकाम करती हुई तथा मार्गके लोगोंको सुख देती हुई वह बारात पवित्र दिनमें अयोध्यापुरीके समीप आ पहुँची ॥ ३४३ ॥

हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे॥
झाँझि बिरव डिंडिमीं सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥

नगाड़ोंपर चोटें पड़ने लगीं; सुन्दर ढोल बजने लगे। भेरी और शङ्खकी बड़ी आवाज हो रही है; हाथी-घोड़े गरज रहे हैं। विशेष शब्द करनेवाली झाँझें, सुहावनी डफलियाँ तथा रसीले रागसे शहनाइयाँ बज रही हैं॥ १॥

पुर जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥

बारातको आती हुई सुनकर नगरनिवासी प्रसन्न हो गये। सबके शरीरोंपर पुलकावली छा गयी। सबने अपने-अपने सुन्दर घरों, बाजारों, गलियों, चौराहों और नगरके द्वारोंको सजाया॥ २॥

गलीं सकल अरगजाँ सिंचाईं। जहँ तहँ चौकें चारु पुराईं॥
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥

सारी गलियाँ अरगजेसे सिंचायी गयीं, जहाँ-तहाँ सुन्दर चौक पुराये गये। तोरणों, ध्वजा-पताकाओं और मण्डपोंसे बाजार ऐसा सजा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ३॥

सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी॥

फलसहित सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदम्ब और तमालके वृक्ष लगाये गये। वे लगे हुए सुन्दर वृक्ष [फलोंके भारसे] पृथ्वीको छू रहे हैं। उनके मणियोंके थाले बड़ी सुन्दर कारीगरीसे बनाये गये हैं॥ ४॥

दो०— बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबर पुरी निहारि॥ ३४४॥

अनेक प्रकारके मङ्गल-कलश घर-घर सजाकर बनाये गये हैं। श्रीरघुनाथजीकी पुरी (अयोध्या) को देखकर ब्रह्मा आदि सब देवता सिहाते हैं॥ ३४४॥

भूप भवनु तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मनु मोहा॥
मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥

उस समय राजमहल [अत्यन्त] शोभित हो रहा था। उसकी रचना देखकर कामदेवका भी मन मोहित हो जाता था। मङ्गल शकुन, मनोहरता, ऋद्धि-सिद्धि, सुख, सुहावनी सम्पत्ति॥ १॥

जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृहँ छाए॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही॥

और सब प्रकारके उत्साह (आनन्द) मानो सहज सुन्दर शरीर धर-धरकर दशरथजीके घरमें छा गये हैं। श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके दर्शनोंके लिये भला कहिये, किसे लालसा न होगी॥ २॥

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि॥
सकल सुमंगल सजें आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती॥

सुहागिनी स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं, जो अपनी छबिसे कामदेवकी स्त्री रतिका भी निरादर कर रही हैं। सभी सुन्दर मङ्गलद्रव्य एवं आरती सजाये हुए गा रही हैं, मानो सरस्वतीजी ही बहुत-से वेष धारण किये गा रही हों॥ ३॥

भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुखु सोई॥
कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेमबिबस तन दसा बिसारीं॥

राजमहलमें [आनन्दके मारे] शोर मच रहा है। उस समयका और सुखका वर्णन नहीं किया जा सकता। कौसल्याजी आदि श्रीरामचन्द्रजीकी सब माताएँ प्रेमके विशेष वश होनेसे शरीरकी सुध भूल गयीं॥ ४॥

दो०— दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि॥ ३४५॥

गणेशजी और त्रिपुरारि शिवजीका पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत-सा दान दिया। वे ऐसी परम प्रसन्न हुईं, मानो अत्यन्त दरिद्री चारों पदार्थ पा गया हो॥ ३४५॥

मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता॥
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साजु सजन सब लागीं॥

सुख और महान् आनन्दसे विवश होनेके कारण सब माताओंके शरीर शिथिल हो गये हैं, उनके चरण चलते नहीं हैं। श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंके लिये वे अत्यन्त अनुरागमें भरकर परछनका सब सामान सजाने लगीं॥ १॥

बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्राँ साजे॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥

अनेकों प्रकारके बाजे बजते थे। सुमित्राजीने आनन्दपूर्वक मङ्गल साज सजाये। हल्दी, दूब, दही, पत्ते, फूल, पान और सुपारी आदि मङ्गलकी मूल वस्तुएँ,॥ २॥

अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए॥

तथा अक्षत (चावल), अँखुए, गोरोचन, लावा और तुलसीकी सुन्दर मंजरियाँ सुशोभित हैं। नाना रंगोंसे चित्रित किये हुए सहज सुहावने सुवर्णके कलश ऐसे मालूम होते हैं, मानो कामदेवके पक्षियोंने घोंसले बनाये हों॥ ३॥

सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी॥
रचीं आरतीं बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥

शकुनकी सुगन्धित वस्तुएँ बखानी नहीं जा सकतीं। सब रानियाँ सम्पूर्ण मङ्गल साज सज रही हैं। बहुत प्रकारकी आरती बनाकर वे आनन्दित हुईं सुन्दर मङ्गलगान कर रही हैं॥ ४॥

दो०— कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात।
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात॥ ३४६॥

सोनेके थालोंको माङ्गलिक वस्तुओंसे भरकर अपने कमलके समान (कोमल) हाथोंमें लिये हुए माताएँ आनन्दित होकर परछन करने चलीं। उनके शरीर पुलकावलीसे छा गये हैं॥ ३४६॥

धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमंडु जनु ठयऊ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं॥

धूपके धूएँसे आकाश ऐसा काला हो गया है मानो सावनके बादल घुमड़-घुमड़कर छा गये हों। देवता कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाएँ बरसा रहे हैं। वे ऐसी लगती हैं मानो बगुलोंकी पाँति मनको [अपनी ओर] खींच रही हो॥ १॥

मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि॥

सुन्दर मणियोंसे बने बंदनवार ऐसे मालूम होते हैं मानो इन्द्रधनुष सजाये हों। अटारियोंपर सुन्दर और चपल स्त्रियाँ प्रकट होती और छिप जाती हैं (आती-जाती हैं); वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो बिजलियाँ चमक रही हों॥ २॥

दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥

नगाड़ोंकी ध्वनि मानो बादलोंकी घोर गर्जना है। याचकगण पपीहे, मेढक और मोर हैं। देवता पवित्र सुगन्धरूपी जल बरसा रहे हैं, जिससे खेतीके समान नगरके सब स्त्री-पुरुष सुखी हो रहे हैं॥ ३॥

समउ जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥

[प्रवेशका] समय जानकर गुरु वसिष्ठजीने आज्ञा दी। तब रघुकुलमणि महाराज दशरथजीने शिवजी, पार्वतीजी और गणेशजीका स्मरण करके समाजसहित आनन्दित होकर नगरमें प्रवेश किया॥ ४॥

दो०— होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभीं बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ॥ ३४७॥

शकुन हो रहे हैं, देवता दुन्दुभी बजा-बजाकर फूल बरसा रहे हैं। देवताओंकी स्त्रियाँ आनन्दित होकर सुन्दर मङ्गलगीत गा-गाकर नाच रही हैं॥ ३४७॥

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जसु तिहु लोक उजागर॥
जय धुनि बिमल बेद बर बानी। दस दिसि सुनिअ सुमंगल सानी॥

मागध, सूत, भाट और चतुर नट तीनों लोकोंके उजागर (सबको प्रकाश देनेवाले, परम प्रकाशस्वरूप) श्रीरामचन्द्रजीका यश गा रहे हैं। जयध्वनि तथा वेदकी निर्मल श्रेष्ठ वाणी सुन्दर मङ्गलसे सनी हुई दसों दिशाओंमें सुनायी पड़ रही है॥ १॥

बिपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे॥
बने बराती बरनि न जाहीं। महा मुदित मन सुख न समाहीं॥

बहुत-से बाजे बजने लगे। आकाशमें देवता और नगरमें लोग सब प्रेममें मग्न हैं। बराती ऐसे बने-ठने हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। परम आनन्दित हैं, सुख उनके मनमें समाता नहीं है॥ २॥

पुरबासिन्ह तब राय जोहारे। देखत रामहि भए सुखारे॥
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा॥

तब अयोध्यावासियोंने राजाको जोहार (वन्दना) की। श्रीरामचन्द्रजीको देखते ही वे सुखी हो गये। सब मणियाँ और वस्त्र निछावर कर रहे हैं। नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भरा है और शरीर पुलकित हैं॥ ३॥

आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी॥
सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥

नगरकी स्त्रियाँ आनन्दित होकर आरती कर रही हैं और सुन्दर चारों कुमारोंको देखकर हर्षित हो रही हैं। पालकियोंके सुन्दर परदे हटा-हटाकर वे दुलहिनोंको देखकर सुखी होती हैं॥ ४॥

दो०— एहि बिधि सबही देत सुखु आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार॥ ३४८॥

इस प्रकार सबको सुख देते हुए राजद्वारपर आये। माताएँ आनन्दित होकर बहुओंसहित कुमारोंका परछन कर रही हैं॥ ३४८॥

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा॥
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥

वे बार-बार आरती कर रही हैं। उस प्रेम और महान् आनन्दको कौन कह सकता है! अनेकों प्रकारके आभूषण, रत्न और वस्त्र तथा अगणित प्रकारकी अन्य वस्तुएँ निछावर कर रही हैं॥ १॥

बधुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी॥
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी॥

बहुओंसहित चारों पुत्रोंको देखकर माताएँ परमानन्दमें मग्न हो गयीं। सीताजी और श्रीरामजीकी छबिको बार-बार देखकर वे जगत्‌में अपने जीवनको सफल मानकर आनन्दित हो रही हैं॥ २॥

सखीं सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा॥

सखियाँ सीताजीके मुखको बार-बार देखकर अपने पुण्योंकी सराहना करती हुई गान कर रही हैं। देवता क्षण-क्षणमें फूल बरसाते, नाचते, गाते तथा अपनी-अपनी सेवा समर्पण करते हैं॥ ३॥

देखि मनोहर चारिउ जोरीं। सारद उपमा सकल ढँढोरीं॥
देत न बनहिं निपट लघु लागीं। एकटक रहीं रूप अनुरागीं॥

चारों मनोहर जोड़ियोंको देखकर सरस्वतीने सारी उपमाओंको खोज डाला; पर कोई उपमा देते नहीं बनी, क्योंकि उन्हें सभी बिलकुल तुच्छ जान पड़ीं। तब हारकर वे भी श्रीरामजीके रूपमें अनुरक्त होकर एकटक देखती रह गयीं॥ ४॥

दो०— निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत॥ ३४९॥

वेदकी विधि और कुलकी रीति करके अर्घ्य-पाँवड़े देती हुई बहुओंसमेत सब पुत्रोंको परछन करके माताएँ महलमें लिवा चलीं॥ ३४९॥

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए॥
तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे॥

स्वाभाविक ही सुन्दर चार सिंहासन थे, जो मानो कामदेवने ही अपने हाथसे बनाये थे। उनपर माताओंने राजकुमारियों और राजकुमारोंको बैठाया और आदरके साथ उनके पवित्र चरण धोये॥ १॥

धूप दीप नैबेद बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगल निधि॥
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं॥

फिर वेदकी विधिके अनुसार मङ्गलोंके निधान दूलह और दुलहिनोंकी धूप, दीप और नैवेद्य आदिके द्वारा पूजा की। माताएँ बारंबार आरती कर रही हैं और वर-वधुओंके सिरोंपर सुन्दर पंखे तथा चँवर ढल रहे हैं॥ २॥

बस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं॥
पावा परम तत्व जनु जोगीं। अमृतु लहेउ जनु संतत रोगीं॥

अनेकों वस्तुएँ निछावर हो रही हैं; सभी माताएँ आनन्दसे भरी हुई ऐसी सुशोभित

हो रही हैं मानो योगीने परम तत्त्वको प्राप्त कर लिया। सदाके रोगीने मानो अमृत पा लिया,॥ ३॥

जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा॥
मूक बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई॥

जन्मका दरिद्री मानो पारस पा गया। अंधेको सुन्दर नेत्रोंका लाभ हुआ। गूँगेके मुखमें मानो सरस्वती आ विराजीं और शूरवीरने मानो युद्धमें विजय पा ली॥ ४॥

दो०— एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु॥ ३५०(क)॥

इन सुखोंसे भी सौ करोड़ गुना बढ़कर आनन्द माताएँ पा रही हैं। क्योंकि रघुकुलके चन्द्रमा श्रीरामजी विवाह करके भाइयोंसहित घर आये हैं॥ ३५० (क)॥

लोक रीति जननीं करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहिं मुसुकाहिं॥ ३५०(ख)॥

माताएँ लोकरीति करती हैं और दूलह-दुलहिनें सकुचाते हैं। इस महान् आनन्द और विनोदको देखकर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं॥ ३५० (ख)॥

देव पितर पूजे बिधि नीकी। पूजीं सकल बासना जी की॥
सबहि बंदि मागहिं बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना॥

मनकी सभी वासनाएँ पूरी हुई जानकर देवता और पितरोंका भलीभाँति पूजन किया। सबकी वन्दना करके माताएँ यही वरदान माँगती हैं कि भाइयोंसहित श्रीरामजीका कल्याण हो॥ १॥

अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥

देवता छिपे हुए [अन्तरिक्षसे] आशीर्वाद दे रहे हैं और माताएँ आनन्दित हो आँचल भरकर ले रही हैं। तदनन्तर राजाने बरातियोंको बुलवा लिया और उन्हें सवारियाँ, वस्त्र, मणि (रत्न) और आभूषणादि दिये॥ २॥

आयसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए॥

आज्ञा पाकर, श्रीरामजीको हृदयमें रखकर वे सब आनन्दित होकर अपने-अपने घर गये। नगरके समस्त स्त्री-पुरुषोंको राजाने कपड़े और गहने पहनाये। घर-घर बधावे बजने लगे॥ ३॥

जाचक जन जाचहिं जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई॥
सेवक सकल बजनिआ नाना। पूरन किए दान सनमाना॥

याचक लोग जो-जो माँगते हैं, विशेष प्रसन्न होकर राजा उन्हें वही-वही देते

हैं। सम्पूर्ण सेवकों और बाजेवालोंको राजाने नाना प्रकारके दान और सम्मानसे सन्तुष्ट किया॥ ४॥

दो०— देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ।
तब गुर भूसुर सहित गृहँ गवनु कीन्ह नरनाथ॥ ३५१॥

सब जोहार (वन्दन) करके आशिष देते हैं और गुणसमूहोंकी कथा गाते हैं। तब गुरु और ब्राह्मणोंसहित राजा दशरथजीने महलमें गमन किया॥ ३५१॥

जो बसिष्ट अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥

वसिष्ठजीने जो आज्ञा दी, उसे लोक और वेदकी विधिके अनुसार राजाने आदरपूर्वक किया। ब्राह्मणोंकी भीड़ देखकर अपना बड़ा भाग्य जानकर सब रानियाँ आदरके साथ उठीं॥ १॥

पाय पखारि सकल अन्हवाए। पूजि भली बिधि भूप जेवाँए॥
आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

चरण धोकर उन्होंने सबको स्नान कराया और राजाने भलीभाँति पूजन करके उन्हें भोजन कराया। आदर, दान और प्रेमसे पुष्ट हुए वे सन्तुष्ट मनसे आशीर्वाद देते हुए चले॥ २॥

बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा॥
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी॥

राजाने गाधि-पुत्र विश्वामित्रजीकी बहुत तरहसे पूजा की और कहा—हे नाथ! मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है। राजाने उनकी बहुत प्रशंसा की और रानियोंसहित उनकी चरणधूलिको ग्रहण किया॥ ३॥

भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृपु रनिवासू॥
पूजे गुर पद कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी॥

उन्हें महलके भीतर ठहरनेको उत्तम स्थान दिया, जिसमें राजा और सब रनिवास उनका मन जोहता रहे (अर्थात् जिसमें राजा और महलकी सारी रानियाँ स्वयं उनके इच्छानुसार उनके आरामकी ओर दृष्टि रख सकें), फिर राजाने गुरु वसिष्ठजीके चरणकमलोंकी पूजा और विनती की। उनके हृदयमें कम प्रीति न थी (अर्थात् बहुत प्रीति थी)॥ ४॥

दो०— बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु॥ ३५२॥

बहुओंसहित सब राजकुमार और सब रानियोंसमेत राजा बार-बार गुरुजीके चरणोंकी वन्दना करते हैं और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं॥ ३५२॥

बिनय कीन्हि उर अति अनुरागें। सुत संपदा राखि सब आगें॥
नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा॥

राजाने अत्यन्त प्रेमपूर्ण हृदयसे पुत्रोंको और सारी सम्पत्तिको सामने रखकर [उन्हें स्वीकार करनेके लिये] विनती की। परन्तु मुनिराजने [पुरोहितके नाते] केवल अपना नेग माँग लिया और बहुत तरहसे आशीर्वाद दिया॥ १॥

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥
बिप्रबधू सब भूप बोलाईं। चैल चारु भूषन पहिराईं॥

फिर सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर गुरु वसिष्ठजी हर्षित होकर अपने स्थानको गये। राजाने सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको बुलवाया और उन्हें सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहनाये॥ २॥

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं॥
नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं॥

फिर सब सुआसिनियोंको (नगरभरकी सौभाग्यवती बहिन, बेटी, भानजी आदिको) बुलवा लिया और उनकी रुचि समझकर [उसीके अनुसार] उन्हें पहिरावनी दी। नेगी लोग सब अपना-अपना नेग-जोग लेते और राजाओंके शिरोमणि दशरथजी उनकी इच्छाके अनुसार देते हैं॥ ३॥

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने॥
देव देखि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू॥

जिन मेहमानोंको प्रिय और पूजनीय जाना, उनका राजाने भलीभाँति सम्मान किया। देवगण श्रीरघुनाथजीका विवाह देखकर, उत्सवकी प्रशंसा करके फूल बरसाते हुए— ॥ ४॥

दो०— चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु प्रेम न हृदयँ समाइ॥ ३५३॥

नगाड़े बजाकर और [परम] सुख प्राप्त कर अपने-अपने लोकोंको चले। वे एक-दूसरेसे श्रीरामजीका यश कहते जाते हैं। हृदयमें प्रेम समाता नहीं है॥ ३५३॥

सब बिधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू॥
जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे। सहित बहूटिन्ह कुअँर निहारे॥

सब प्रकारसे सबका प्रेमपूर्वक भलीभाँति आदर-सत्कार कर लेनेपर राजा दशरथजीके हृदयमें पूर्ण उत्साह (आनन्द) भर गया। जहाँ रनिवास था, वे वहाँ पधारे और बहुओंसमेत उन्होंने कुमारोंको देखा॥ १॥

लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुखु जेता॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हियँ हरषि दुलारीं॥

राजाने आनन्दसहित पुत्रोंको गोदमें ले लिया। उस समय राजाको जितना सुख हुआ उसे कौन कह सकता है? फिर पुत्रवधुओंको प्रेमसहित गोदीमें बैठाकर, बार-बार हृदयमें हर्षित होकर उन्होंने उनका दुलार (लाड़-चाव) किया॥ २॥

देखि समाजु मुदित रनिवासू। सब कें उर अनंद कियो बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू॥

यह समाज (समारोह) देखकर रनिवास प्रसन्न हो गया। सबके हृदयमें आनन्दने निवास कर लिया। तब राजाने जिस तरह विवाह हुआ था वह सब कहा। उसे सुन-सुनकर सब किसीको हर्ष होता है॥ ३॥

जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानीं सब प्रमुदित सुनि करनी॥

राजा जनकके गुण, शील, महत्त्व, प्रीतिकी रीति और सुहावनी सम्पत्तिका वर्णन राजाने भाटकी तरह बहुत प्रकारसे किया। जनकजीकी करनी सुनकर सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं॥ ४॥

दो०— सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति।
भोजन कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति॥ ३५४॥

पुत्रोंसहित स्नान करके राजाने ब्राह्मण, गुरु और कुटुम्बियोंको बुलाकर अनेक प्रकारके भोजन किये। [यह सब करते-करते] पाँच घड़ी रात बीत गयी॥ ३५४॥

मंगलगान करहिं बर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥
अँचइ पान सब काहूँ पाए। स्रग सुगंध भूषित छबि छाए॥

सुन्दर स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। वह रात्रि सुखकी मूल और मनोहारिणी हो गयी। सबने आचमन करके पान खाये और फूलोंकी माला, सुगन्धित द्रव्य आदिसे विभूषित होकर सब शोभासे छा गये॥ १॥

रामहि देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥
प्रेम प्रमोदु बिनोदु बड़ाई। समउ समाजु मनोहरताई॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर और आज्ञा पाकर सब सिर नवाकर अपने-अपने घरको चले। वहाँके प्रेम, आनन्द, विनोद, महत्त्व, समय, समाज और मनोहरताको— ॥ २॥

कहि न सकहिं सत सारद सेसू। बेद बिरंचि महेस गनेसू॥
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी। भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी॥

सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेवजी और गणेशजी भी नहीं कह सकते। फिर भला मैं उसे किस प्रकारसे बखानकर कहूँ? कहीं केंचुआ भी धरतीको सिरपर ले सकता है!॥ ३॥

नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाईं रानी॥
बधू लरिकनीं पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥

राजाने सबका सब प्रकारसे सम्मान करके, कोमल वचन कहकर रानियोंको बुलाया और कहा—बहुएँ अभी बच्ची हैं, पराये घर आयी हैं। इनको इस तरहसे रखना जैसे नेत्रोंको पलकें रखती हैं (जैसे पलकें नेत्रोंकी सब प्रकारसे रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना) ॥ ४ ॥

दो०— लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृहँ राम चरन चितु लाइ॥ ३५५॥

लड़के थके हुए नींदके वश हो रहे हैं, इन्हें ले जाकर शयन कराओ। ऐसा कहकर राजा श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मन लगाकर विश्रामभवनमें चले गये॥ ३५५॥

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलँग डसाए॥
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना॥

राजाके स्वभावसे ही सुन्दर वचन सुनकर [रानियोंने] मणियोंसे जड़े सुवर्णके पलँग बिछवाये। [गद्दोंपर] गौके दूधके फेनके समान सुन्दर एवं कोमल अनेकों सफेद चादरें बिछायीं॥ १॥

उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥

सुन्दर तकियोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। मणियोंके मन्दिरमें फूलोंकी मालाएँ और सुगन्ध द्रव्य सजे हैं। सुन्दर रत्नोंके दीपकों और सुन्दर चँदोवेकी शोभा कहते नहीं बनती। जिसने उन्हें देखा हो, वही जान सकता है॥ २॥

सेज रुचिर रचि रामु उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए॥
अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥

इस प्रकार सुन्दर शय्या सजाकर [माताओंने] श्रीरामचन्द्रजीको उठाया और प्रेमसहित पलँगपर पौढ़ाया। श्रीरामजीने बार-बार भाइयोंको आज्ञा दी। तब वे भी अपनी-अपनी शय्याओंपर सो गये॥ ३॥

देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥

श्रीरामजीके साँवले सुन्दर कोमल अङ्गोंको देखकर सब माताएँ प्रेमसहित वचन कह रही हैं—हे तात! मार्गमें जाते हुए तुमने बड़ी भयावनी ताड़का राक्षसीको किस प्रकारसे मारा?॥ ४॥

दो०— घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥ ३५६॥

बड़े भयानक राक्षस, जो विकट योद्धा थे और जो युद्धमें किसीको कुछ नहीं गिनते थे, उन दुष्ट मारीच और सुबाहुको सहायकोंसहित तुमने कैसे मारा ? ॥ ३५६ ॥

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाईं। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाईं॥

हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, मुनिकी कृपासे ही ईश्वरने तुम्हारी बहुत-सी बलाओंको टाल दिया। दोनों भाइयोंने यज्ञकी रखवाली करके गुरुजीके प्रसादसे सब विद्याएँ पायीं॥ १॥

मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा॥

चरणोंकी धूलि लगते ही मुनि-पत्नी अहल्या तर गयी। विश्वभरमें यह कीर्ति पूर्णरीतिसे व्याप्त हो गयी। कच्छपकी पीठ, वज्र और पर्वतसे भी कठोर शिवजीके धनुषको राजाओंके समाजमें तुमने तोड़ दिया॥ २॥

बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपाँ सुधारे॥

विश्वविजयके यश और जानकीको पाया और सब भाइयोंको ब्याहकर घर आये। तुम्हारे सभी कर्म अमानुषी हैं (मनुष्यकी शक्तिके बाहर हैं), जिन्हें केवल विश्वामित्रजीकी कृपाने सुधारा है (सम्पन्न किया है)॥ ३॥

आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधुबदन तुम्हारा॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें॥

हे तात! तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर आज हमारा जगत्में जन्म लेना सफल हुआ। तुमको बिना देखे जो दिन बीते हैं, उनको ब्रह्मा गिनतीमें न लावें (हमारी आयुमें शामिल न करें)॥ ४॥

दो०— राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नीदबस नैन॥ ३५७॥

विनयभरे उत्तम वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजीने सब माताओंको संतुष्ट किया। फिर शिवजी, गुरु और ब्राह्मणोंके चरणोंका स्मरण कर नेत्रोंको नींदके वश किया (अर्थात् वे सो रहे)॥ ३५७॥

नीदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहिं जागरन नारीं। देहिं परसपर मंगल गारीं॥

नींदमें भी उनका अत्यन्त सलोना मुखड़ा ऐसा सोह रहा था, मानो सन्ध्याके समयका लाल कमल सोह रहा हो। स्त्रियाँ घर-घर जागरण कर रही हैं और आपसमें (एक-दूसरीको) मङ्गलमयी गालियाँ दे रही हैं॥ १॥

पुरी बिराजति राजति रजनी। रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी॥
सुंदर बधुन्ह सासु लै सोईं। फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोईं॥

रानियाँ कहती हैं—हे सजनी! देखो, [आज] रात्रिकी कैसी शोभा है, जिससे अयोध्यापुरी विशेष शोभित हो रही है! [यों कहती हुई] सासुएँ सुन्दर बहुओंको लेकर सो गयीं, मानो सर्पोंने अपने सिरकी मणियोंको हृदयमें छिपा लिया है॥ २॥

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥
बंदि मागधन्हि गुनगन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए॥

प्रात:काल पवित्र ब्राह्ममुहूर्तमें प्रभु जागे। मुर्गे सुन्दर बोलने लगे। भाट और मागधोंने गुणोंका गान किया तथा नगरके लोग द्वारपर जोहार करनेको आये॥ ३॥

बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे॥

ब्राह्मणों, देवताओं, गुरु, पिता और माताओंकी वन्दना करके आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओंने आदरके साथ उनके मुखोंको देखा। फिर वे राजाके साथ दरवाजे (बाहर) पधारे॥ ४॥

दो०— **कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।**
प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥ ३५८॥

स्वभावसे ही पवित्र चारों भाइयोंने सब शौचादिसे निवृत्त होकर पवित्र सरयू नदीमें स्नान किया और प्रात:क्रिया (सन्ध्या-वन्दनादि) करके वे पिताके पास आये॥ ३५८॥

नवाह्नपारायण, तीसरा विश्राम

भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥

राजाने देखते ही उन्हें हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर वे आज्ञा पाकर हर्षित होकर बैठ गये। श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकर और नेत्रोंके लाभकी बस यही सीमा है, ऐसा अनुमानकर सारी सभा शीतल हो गयी (अर्थात् सबके तीनों प्रकारके ताप सदाके लिये मिट गये)॥ १॥

पुनि बसिष्टु मुनि कौसिकु आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे॥

फिर मुनि वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये। राजाने उनको सुन्दर आसनोंपर बैठाया और पुत्रोंसमेत उनकी पूजा करके उनके चरणों लगे। दोनों गुरु श्रीरामजीको देखकर प्रेममें मुग्ध हो गये॥ २॥

कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥

वसिष्ठजी धर्मके इतिहास कह रहे हैं और राजा रनिवाससहित सुन रहे हैं। जो मुनियोंके मनको भी अगम्य है, ऐसी विश्वामित्रजीकी करनीको वसिष्ठजीने आनन्दित होकर बहुत प्रकारसे वर्णन किया॥ ३॥

बोले बामदेउ सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माची॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू॥

वामदेवजी बोले—ये सब बातें सत्य हैं। विश्वामित्रजीकी सुन्दर कीर्ति तीनों लोकोंमें छायी हुई है। यह सुनकर सब किसीको आनन्द हुआ। श्रीराम-लक्ष्मणके हृदयमें अधिक उत्साह (आनन्द) हुआ॥ ४॥

दो०— मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति॥ ३५९॥

नित्य ही मङ्गल, आनन्द और उत्सव होते हैं; इस तरह आनन्दमें दिन बीतते जाते हैं। अयोध्या आनन्दसे भरकर उमड़ पड़ी, आनन्दकी अधिकता अधिक-अधिक बढ़ती ही जा रही है॥ ३५९॥

सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥
नित नव सुखु सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं॥

अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधकर सुन्दर कङ्कण खोले गये। मङ्गल, आनन्द और विनोद कुछ कम नहीं हुए (अर्थात् बहुत हुए)। इस प्रकार नित्य नये सुखको देखकर देवता सिहाते हैं और अयोध्यामें जन्म पानेके लिये ब्रह्माजीसे याचना करते हैं॥ १॥

बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥

विश्वामित्रजी नित्य ही चलना (अपने आश्रम जाना) चाहते हैं, पर रामचन्द्रजीके स्नेह और विनयवश रह जाते हैं। दिनों-दिन राजाका सौगुना भाव (प्रेम) देखकर महामुनिराज विश्वामित्रजी उनकी सराहना करते हैं॥ २॥

मागत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी॥

अन्तमें जब विश्वामित्रजीने विदा माँगी, तब राजा प्रेममग्न हो गये और पुत्रोंसहित आगे खड़े हो गये। [वे बोले—] हे नाथ! यह सारी सम्पदा आपकी है। मैं तो स्त्री-पुत्रोंसहित आपका सेवक हूँ॥ ३॥

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥

हे मुनि! लड़कोंपर सदा स्नेह करते रहियेगा और मुझे भी दर्शन देते रहियेगा। ऐसा कहकर पुत्रों और रानियोंसहित राजा दशरथजी विश्वामित्रजीके चरणोंपर गिर

पड़े, [प्रेमविह्वल हो जानेके कारण] उनके मुँहसे बात नहीं निकलती॥ ४॥

दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
रामु सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥

ब्राह्मण विश्वामित्रजीने बहुत प्रकारसे आशीर्वाद दिये और वे चल पड़े, प्रीतिकी रीति कही नहीं जाती। सब भाइयोंको साथ लेकर श्रीरामजी प्रेमके साथ उन्हें पहुँचाकर और आज्ञा पाकर लौटे॥ ५॥

दो०— राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंदु॥ ३६०॥

गाधिकुलके चन्द्रमा विश्वामित्रजी बड़े हर्षके साथ श्रीरामचन्द्रजीके रूप, राजा दशरथजीकी भक्ति, [चारों भाइयोंके] विवाह और [सबके] उत्साह और आनन्दको मन-ही-मन सराहते जाते हैं॥ ३६०॥

बामदेव रघुकुल गुर ग्यानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी॥
सुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ॥

वामदेवजी और रघुकुलके गुरु ज्ञानी वसिष्ठजीने फिर विश्वामित्रजीकी कथा बखानकर कही। मुनिका सुन्दर यश सुनकर राजा मन-ही-मन अपने पुण्योंके प्रभावका बखान करने लगे॥ १॥

बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृहँ गयऊ॥
जहँ तहँ राम ब्याहु सबु गावा। सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा॥

आज्ञा हुई तब सब लोग [अपने-अपने घरोंको] लौटे। राजा दशरथजी भी पुत्रोंसहित महलमें गये। जहाँ-तहाँ सब श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी गाथाएँ गा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीका पवित्र सुयश तीनों लोकोंमें छा गया॥ २॥

आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद अवध सब तब तें॥
प्रभु बिबाहँ जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥

जबसे श्रीरामचन्द्रजी विवाह करके घर आये, तबसे सब प्रकारका आनन्द अयोध्यामें आकर बसने लगा। प्रभुके विवाहमें जैसा आनन्द-उत्साह हुआ, उसे सरस्वती और सर्पोंके राजा शेषजी भी नहीं कह सकते॥ ३॥

कबिकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥

श्रीसीतारामजीके यशको कविकुलके जीवनको पवित्र करनेवाला और मङ्गलोंकी खान जानकर, इससे मैंने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये कुछ (थोड़ा-सा) बखानकर कहा है॥ ४॥

छं०— निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसीं कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो॥
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥

अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये तुलसीने रामका यश कहा है। [नहीं तो] श्रीरघुनाथजीका चरित्र अपार समुद्र है, किस कविने उसका पार पाया है? जो लोग यज्ञोपवीत और विवाहके मङ्गलमय उत्सवका वर्णन आदरके साथ सुनकर गावेंगे, वे लोग श्रीजानकीजी और श्रीरामजीकी कृपासे सदा सुख पावेंगे।

सो०— सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥ ३६१॥

श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजीके विवाह-प्रसङ्गको जो लोग प्रेमपूर्वक गायें-सुनेंगे, उनके लिये सदा उत्साह (आनन्द)-ही-उत्साह है; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीका यश मङ्गलका धाम है॥ ३६१॥

मासपारायण, बारहवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका
यह पहला सोपान समाप्त हुआ॥

(बालकाण्ड समाप्त)